श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

नित्यकृत्यप्रकरणम्

(श्रीहरिभक्तिविलासीय—एकादशोविलासः)

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

नित्यकृत्यप्रकरणम्

(श्रीहरिभक्तिविलासीय—एकादशोविलासः)

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,
काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा
सम्पादितम् ।

प्रकाशक :—
श्रीहरिदास शास्त्री
चैतन्यसंस्कृतिसंस्था
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो०—वृन्दावन, जिला—मथुरा (उ० प्र०)
पिन—२८११२१

❊ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयतेताम् ❊

विज्ञप्तिः

प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्रीहरिभक्तिविलास' स्मृतिग्रन्थ के एकादशविलास है। इस विलास का नाम 'नित्य-कृत्य समापन' है। अर्थात् मानव को सायन्तन काल से आरम्भ कर अहोरात्रकाल, किस रीति से अति-वाहित करना चाहिये उसका विशेष विवरण इस ग्रन्थांश में है।

अनुशासित मानव जीवन ही अभ्युदय का एकमात्र हेतु है, अनुशासन के अभाव से मानव जीवन अतीव अशिव होता है। यहाँ तक कि, अनुशासनहीन एक मानव ही पृथिवी का भारस्वरूप होता तो है ही, समस्त प्राणियों के लिये भी वह उद्वेगकर होता है।

शास्त्रीय भक्ति धर्म सुनीति पूर्ण है, इसमें ही प्राणिमात्र के प्रति अभय प्रदान करने की एकमात्र नीति है। सर्वादि सर्वनिरपेक्ष सर्वहितकर सर्वजन सेव्य ही भक्ति धर्म है। भगवान् श्रीकृष्ण इस भक्ति धर्म का नित्य प्रचारक हैं, उन्होंने भा० ११।१४। में कहा—

"कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेद संज्ञिता।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मोयस्यां मदात्मकः।
तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा
ततो भृग्वादयोऽगृह्णन् सप्तब्रह्ममहर्षयः।
तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानव गुह्यकाः।
मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधर चारणाः॥
किन्देवाः किन्नरा नागा रक्षः किम्पूरुषादयः।
बहवस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्व तमोभुवः।
याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानांमतयस्तथा।
यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्रवन्ति हि॥
एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्ते मतयोनृणाम्।
पारम्पर्य्येण केषाञ्चित् पाषण्डमतयोऽपरे।
मन्माया मोहित धियः पुरुषाःपुरुषर्षभ।
श्रेयोवदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि॥
धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम्।
अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्य्यं त्यागभोजनम्॥
केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान् यमान्।
आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्म्मिताः।
दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः॥
मर्य्यर्पितात्मनः सम्य! निरपेक्षस्य सर्वतः।
मयात्मना सुखं यत् तत् कुतःस्याद्विषयात्मनाम्।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाःसुखमया दिशः ।
न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ।
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रज्याम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ।
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियःसताम् ।
भक्तिःपुनातिमन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।।
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनातिहि ।।"

समस्त ज्ञानधाराओं में महाफलप्रद होने के कारण भक्ति ही मुख्य है, अपर जितने ही ज्ञानधारा श्रेयः साधनरूप में सुप्रचलित हैं, वे सब ही स्व-स्व प्रकृत्यनुसार मनुष्य कर्त्तृक उद्भावित हैं, तथा अति तुच्छ फलद भी हैं। किन्तु यह वेद संज्ञिता भक्ति की वार्त्ता प्रलय के समय लुप्त हो गई थी। मेरा हृदय-स्वरूप उस भक्तिरूप ज्ञानधारा का अध्ययन मैंने सर्वप्रथम ब्रह्मा को कराया था। उसके बाद ब्रह्मा से भृगु प्रभृति सप्तर्षि एवं उनके पुत्र वर्ग– देव, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, किन्देव, नाग, राक्षस, किम्पूरुषो प्रभृतियों ने रजः सत्व, तमः रूप निज-निज प्रकृति के अनुसार ज्ञानधारा का अध्ययन किया। किन्तु यथाकर्म एवं यथारुचि को देखकर उपदेश प्रदान, मधुर वाणी से करना पड़ा। उससे प्रकृति वैचित्री के कारण भिन्न-भिन्न मति मनुष्यों की हो गईं। कुछ लोक, शास्त्र अध्ययन को छोड़कर उपदेश परम्परा को महत्व देने लग गये, तो, कतिपय व्यक्ति, शास्त्र ईश्वर को न मानने के पक्षपाती हो गए। यह सब ही मेरी माया से मुग्ध होकर जनता में तोषणनीति से अनेक प्रकार प्रवचन परायण हो गये। इससे नित्य नैमित्तिक कर्मरूप धर्म, काव्यालङ्कार अनुशीलन प्रभृति से ख्याति प्राप्त करना, वात्स्यायन प्रणीत कामतन्त्र, सत्य, इन्द्रियनिग्रह, योगाङ्गानुष्ठान, दण्डनीति, ऐश्वर्य्य, स्वार्थ, त्याग, भोजन कराना, यज्ञ, तप, दान प्रभृति का प्रचार जनता में हुआ। किन्तु यह सब अति दुःखद, क्षुद्रानन्दद, एवं शोक मोहप्रद हैं। परन्तु भक्ति, परमानन्दद तो है ही, सबको सुतृप्त करने वाली भी है। कारण, इससे मानव, अर्पितात्मा होता है, और व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्त्ति हेतु ब्रह्मपद, महेन्द्रपद, सार्वभौमत्व, पृथिवी का आधिपत्य, योग सिद्धि एवं मुक्ति को भी नहीं चाहता है, केवल मेरा उपदेश पालन में रत होता है। इससे मानव, निरपेक्ष, मुनि, शान्त, निर्वैर, एवं समदर्शन होता है, मैं तो निजान्तर्वर्त्ती समस्त ब्रह्माण्ड को पवित्र करने की लालसा से उक्त आदेश पालनरत व्यक्ति की चरणधूलि, नित्य ग्रहण करता रहता हूँ। मैं सज्जनप्रिय हूँ, एवं भक्ति के द्वारा ही लभ्य हूँ। भक्ति, सबको पवित्र करती है, किन्तु सत्य, दया, तपस्यायुक्त विद्या, भक्तिहीन व्यक्ति को पवित्र नहीं करती है।

इस प्रकार श्रीहरिभक्ति के आचरणीय अङ्गसमूह का वर्णन श्रीहरिभक्तिविलास ग्रन्थ में है। एकादश विलास में प्रतिदिन आचरणीय कृत्यसमूह का वर्णन है। विशेषकर श्रीहरिनाम की असमोर्द्ध्व महिमा एवं पत्राङ्क ११९ से १३४ पर्य्यन्त वर्णित मनुष्योचित सदाचार समूह अवलोकनीय हैं।

हरिदास शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

श्रीश्रीगदाधरगौराङ्गौ जयतः

श्रीश्रीहरिभक्तिविलासः

द्वितीयो भागः

एकादश-विलासः

श्रीचैतन्यं प्रपद्ये तं महाश्चर्य्यप्रभावकम् । प्रसादे यस्य दुष्टोऽपि भगवद्भक्तिमान् भवेत् ॥१॥
ततो दिनान्त्यभागेषु वाह्येषु सुरसद्मसु । यात्रां कृत्वा द्विजः सन्ध्यामुपासीत यथाविधि ॥२॥

अथ सायन्तन-कृत्यानि

श्रीविष्णुपुराणे और्व्वसगर-संवादे—

दिनान्तसन्ध्यां सूर्य्येण पूर्व्वामृक्षैर्युतां बुधः । उपतिष्ठेद्यथान्यायं सम्यगाचम्य पार्थिव ॥३॥
सर्व्वकालमुपस्थानं सन्ध्यायाः पार्थिवेष्यते । अन्यत्र सूतिकाशौच-विभ्रमातुरभीतितः ॥४॥
उपतिष्ठन्ति वै सन्ध्यां ये न पूर्व्वां न पश्चिमाम् ।
व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ॥५॥ इति ।

श्रीमच्चैतन्यदेवं तं वन्दे यस्य प्रभावतः ।
जड़ोऽपि भगवद्भक्ति नित्यकृत्यं समापयेत् ।

नित्यकृत्यसाङ्गाशेषभगवद्भक्तिप्रचारलिखनं परमगुरोर्भगवतः प्रभावेणैव सम्पद्यत इत्याशयेन तं शरणं याति—श्रीचैतन्यमिति । महाश्चर्य्यः परमाद्भुतः प्रभावः शक्तिर्यस्य तं, अभिव्यञ्जयति—यस्य प्रसादे सतीति ॥१

वाह्येषु वहिःस्थितेषु, देवालयेषु ॥२॥

दिनान्तसन्ध्यामित्यत्र स्मृतिः—'प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि । सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यां पर्य्यस्तमितभास्करः ॥' इति ॥३॥

सूचकं पुत्रजन्मादि, अशौचं शावञ्च, विभ्रमः उन्मादादिवैचित्त्यम्, आतुरं रोगावस्था भीतिश्च ॥४॥

जिनके प्रसन्नताबल से जड़ व्यक्ति भी अर्थात् मूर्ख व्यक्ति भी भगवद्भक्ति परायण होता है, अर्थात् नित्य कृत्य समापन करता है, उन परमाद्भुत प्रभाव सम्पन्न श्रीचैतन्यदेव की वन्दना करता हूँ ॥१॥

अनन्तर दिवस के अन्त्य भाग में अर्थात् सायंकाल में द्विज, वहिःस्थित देवालय समूह में गमन पूर्वक यथाविधि सन्ध्योपासना करें ॥२॥

अथ सायन्तन-कृत्यानि

श्रीविष्णुपुराण के और्व-सगर-संवाद में वर्णित है—हे राजन् ! विवेकी मनुष्य आचमन पूर्वक सूर्य्ययुक्ता सायं सन्ध्या एवं तारकायुक्ता प्रातः सन्ध्या की उपासना करें, अर्थात् सूर्य्य के अर्द्धास्त काल में सायं सन्ध्या एवं सूर्य्योदय के पूर्व नक्षत्र युक्त समय में प्रातःसन्ध्या अनुष्ठान का प्रशस्त काल है। हे पार्थिव ! सकल काल में सन्ध्या की उपासना हो सकती है। जनना शौच, मरणाशौच, उन्मत्त, पीड़ित एवं भीत–यह सब अवस्था व्यतीत अन्य समय में सन्ध्योपासना का अनुष्ठान जो मनुष्य नहीं करते हैं, हे नृप ! वह सब दुरात्मा की गति तामिस्र नामक नरक में होती है ॥४-५॥

ततो यथाश्रमाचारं कर्म्म सायन्तनं कृती । निर्व्वर्त्त्य पूर्व्ववत् कुर्य्याद्‌भक्त्या भगवदर्च्चनम् ॥६॥
श्रीकृष्णभक्त्यासक्त्या तु सन्ध्योपास्यादिकं यदि । पतेत् कर्म्म न पातित्यदोषशङ्का कथञ्चन ॥७

अथ श्रीभगवद्भक्तानां कर्म्मपातित्यपरिहारः

पाद्मे श्रीभगवदुक्तौ—

मत्कर्म्म कुर्व्वतां पुंसां क्रियालोपो भवेद्यदि । तेषां कर्म्माणि कुर्व्वन्ति तिस्रः कोट्यो महर्षयः ॥८॥

आदिपुराणे च—

स्मरन्ति मम नामानि ये त्यक्त्वा कर्म्म चाखिलम् ।
तेषां कर्म्माणि कुर्व्वन्ति ऋषयो भगवत्पराः ॥९॥ इति ।

मृदुश्रद्धस्य भक्तस्य प्रौढ़तामनुपेयुषः । किञ्चित् कर्म्माधिकारित्वात् कर्म्मास्यैतत् प्रपञ्चितम् ॥१०
प्रौढ़श्रद्धस्य भक्तस्य कर्म्मस्वनधिकारतः । पातित्यं न भवत्येव लेखनीयं तदग्रतः ॥११॥

किञ्चिद्‌ध्यानादिभेदेन त्रिसन्ध्यञ्च पृथक् पृथक् ।
प्रोक्तः पूजाविधिः प्राज्ञैस्तत्तत्कामाशुसिद्धये ॥१२॥

अथ त्रिकालार्च्चन-विधिविशेषः

श्रीगौतमीयतन्त्रे—

आराधनविधिं वक्ष्ये प्रातःकाले विशेषतः । वरं वृन्दावनं ध्यायेत् पुण्यवृक्षादिसेवितम् ॥१३॥

ततोऽन्यत्र यथाश्रमाचारं यो यस्याश्रमस्तस्मिन् य आचारः कर्म्म तमनतिक्रम्य ; पूर्व्ववत् पूर्व्वलिखितानुसारेण शक्तश्चेत्तर्हि सन्ध्यायामपि कुर्य्यात् ॥६॥

सन्ध्योपासनादिकं निष्पाद्यैव पश्चाद्भगवन्तमर्च्चयेदिति लिखितम्, अधुना भगवत्पूजापरेण कदाचित् सन्ध्योपासनादि-कर्म्माण्युपेक्षणीयानीति लिखति—श्रीकृष्णेति । श्रीकृष्णभक्तौ आसक्तिस्तत्परता तया, पातित्यरूपदोषशङ्कापि कथञ्चिदपि नास्ति ॥७॥

मम कर्म्म पूजादि, अग्रतः भक्ति-माहात्म्ये तावत्कर्म्माणीत्यादिना लेख्यम् ।८॥

अनन्तर कृती व्यक्ति, आश्रमाचार विहित सायन्तन कृत्य समापनपूर्वक पूर्वोल्लिखित के अनुसार भक्तिभाव से भगवान् की आराधना करें। श्रीकृष्ण के भक्तियोग में आसक्त चित्त होने के कारण यदि सन्ध्योपासना कमानुष्ठान नहीं होता है, तो तज्जनित प्रत्यवाय रूप दोषाशङ्का नहीं है ॥६-७॥

अथ श्रीभगवद्भक्तानां कर्म्मपातित्यपरिहारः

पद्मपुराण में भगवदुक्ति इस प्रकार है—मेरा कर्म करते करते यदि सन्ध्योपासनादि अनुष्ठित नहीं होते हैं, तो, उन सब श्रीकृष्ण सेवापरायण व्यक्तियों के समस्त अनुष्ठान, तीन कोटि महर्षिवृन्द सम्पन्न करते हैं ॥८

आदिपुराण में भी कथित है—जो मनुष्य, अखिल कर्म वर्जनपूर्वक मेरा नाम स्मरण करते हैं, भगवत् परायण ऋषिवृन्द उनके कर्म सम्पन्न करते रहते हैं ॥९॥

कोमल श्रद्धान्वित व्यक्ति की यावत् पर्य्यन्त गाढ़ श्रद्धा नहीं होती है, तावत् पर्य्यन्त किञ्चित् कर्माधिकार हेतु उनके सम्बन्ध में कर्म विवरण प्रस्तुत हुआ है। गाढ़ श्रद्धाविशिष्ट व्यक्ति के पक्ष में कर्माचरण में अनधिकार हेतु, कर्मानुष्ठान न होने पर पातित्यदोष नहीं होता है। इस विषय का वर्णन अग्रिम ग्रन्थ में होगा। जिन्होंने ध्यानादि भेद के कारण किञ्चित् प्राज्ञता प्राप्त की है, उनकी कामना पूर्त्ति हेतु त्रिसन्ध्या में पृथक् पृथक् सन्ध्या विधि का वर्णन हुआ है ॥१०-१२॥

अथ त्रिकालार्च्चन-विधिविशेषः

श्रीगौतमीयतन्त्र में लिखित है—विशेषकर प्रातःकाल में आराधना करे। पुन्नाग, नाग, पनस, काञ्चन,

पुन्नागैर्नागवृक्षैश्च पनसैश्चैव काञ्चनैः। वकुलैश्चैव विल्वैश्च वन्यैः कुरवकैरपि ॥१४॥
सर्व्वर्तुकुसुमोपेतैः पुष्पावनत-शाखिभिः। तन्मध्ये पुलिनं ध्यायेद्बहुपुष्पकचम्पकम् ॥१५॥
धूपदीपैर्वितानेन पुष्पमालाविभूषितम्। मुक्तादामपताकाभिर्वन्यपुष्पैरलङ्कृतम् ॥१६॥
तन्मध्ये कल्पवृक्षस्य च्छायायां पङ्कजासने। सुस्थितं वेणुगीताढ्यं सर्व्वाभरणभूषितम् ॥१७॥
वनमालापरिवृतं गोपिकाशतवेष्टितम्। देवासुरैश्च सिद्धैश्च गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः ॥१८॥
यक्षैर्विद्याधरगणैर्विहगैर्भुवि संस्थितैः। ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानं कृष्णञ्चैव शुचिस्मितम् ॥१९॥
नानाविधैश्च गोपालैर्मृगपक्षिविभूषितम्। लेलिह्यमानं प्रणयात् पशूनां शतकोटिभिः ॥२०॥
इन्दीवरनिभं दिव्यं सुन्दरं त्विन्दिरालयम्। सम्पूर्णचन्द्रवदनं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥२१॥
पद्माभपाणिपादञ्च पद्मरागवराञ्चितम्। शरण्यं सर्व्वलोकानां गोपीनां प्राणवल्लभम् ॥२२॥
एवं ध्यात्वार्च्चयेन्नित्यं षोड़शेनोपचारतः। दुग्धञ्च दधिखण्डेन सहितं संनिवेदयेत् ॥२३॥
सौवर्णपात्रे गोपानां ग्रासं कांस्ये निवेदयेत्। एवं समर्च्चयेद्भक्त्या जपन्मन्त्रं समाहितः ॥२४॥
मध्याह्ने संप्रवक्ष्यामि पूजां सर्व्वार्थसिद्धिदाम्। सौवर्णपर्व्वते मूले धातुभिः समलङ्कृते ॥२५॥
पुण्यवृक्षसमाकीर्णे पुण्यपक्षिनिनादिते। पद्मोत्पलादिसङ्कीर्णे वापीभिः समलङ्कृते ॥२६॥
तस्मिन् सत्पुलिने रम्ये छायायां पङ्कजासने। सौवर्णमण्डपे सम्यग्वितानादिविभूषिते ॥२७॥
मालादिरचिते रम्ये मणिभिः पुष्पशोभितैः। सुवर्णरत्नसन्दोहैरन्तरान्तरशोभिते ॥२८॥

वकुल, विल्व, वन्य कुरवक एवं सर्वऋतु के पुष्प समन्वित पुष्पावनत शाखा विशिष्ट पुष्प वृक्षादि सेवित उत्कृष्ट वृन्दावन का ध्यान करे। पुन्नाग-केसर, नाग-पानवेल, कुरवक-लालकुरंदा है। उसके मध्य में विविध चम्पक पुष्प, धूप, दीप, शय्या तथा पुष्पमालिका विभूषित एवं मुक्तादाम पताकादि वन्य पुष्प से सुसज्जित पुलिन का ध्यान करे। तन्मध्य में कल्पवृक्षच्छाया में पद्मासन के ऊपर सुस्थित, वेणुगीतरत, सर्वाभरण-भूषित वनमाल्य परिवृत, गोपिकाशत वेष्टित, तथा देव, असुर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरोगण, यक्ष, विद्याधर, विहग एवं भूमि संस्थित ब्रह्मर्षिवृन्द कर्त्तृक, स्तूयमान ईषत् हास्ययुक्त श्रीकृष्ण का ध्यान करे ॥१३-१९॥

श्रीकृष्ण, विविध गोपवृन्द के द्वारा एवं मृग-पक्षिगण के द्वारा विभूषित हैं, प्रणयवशतः शत कोटि गवादिपशु उनका श्रीअङ्ग लेहन करते हैं। श्रीकृष्ण, इन्दीवर के समान दिव्य सुन्दर हैं, एवं शोभा का आश्रय हैं। पूर्णचन्द्र सदृश उनका वदन, पद्मपत्र के तुल्य नयन है श्रीकृष्ण, पद्मवर्ण हस्त एवं चरणयुक्त श्रेष्ठ पद्मराग मणि से शोभित हैं, एवं सर्व लोकों के शरण्य एवं गोपीवृन्द के प्राणवल्लभ हैं ॥२०-२२

इस प्रकार ध्यान करके षोड़शोपचार के द्वारा नित्य श्रीकृष्ण की पूजा करे। तत्पश्चात् सुवर्ण पात्र में खण्ड के सहित दुग्ध एवं दधि समर्पण करे। कांस्य पात्र में गोपगण को अन्न निवेदन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पूजा करके सावधानचित्त होकर मन्त्र करना चाहिये। कालत्रय की पूजा में अष्टोत्तर सहस्रवार जप करने का विधान है। असमर्थ पक्ष में अष्टोत्तरशत संख्यक मन्त्र का जप भी कर सकता है। अनन्तर मध्याह्नकालीन सर्वार्थ सिद्धिदायिनी पूजा का वर्णन करते हैं—पुण्य वृक्षसमूह के द्वारा आकीर्ण, पुण्य विहगकुल के द्वारा निनादित एवं धातुसमूह के द्वारा अलंकृत सुवर्ण पर्वत के मूलदेश में, पद्मोत्पलादि द्वारा सङ्कीर्ण वापीसमूह के द्वारा विभूषित रमणीय प्रशस्त पुलिन में छाया में स्थित पद्मासन में, विचित्र चन्द्रवत शोभित, मध्य मध्य में अनेक सुवर्ण द्वारा खचित सिंहासन में मुक्तामय मनोहर हारों से समलङ्कृत होकर श्रीकृष्ण विराजित हैं। सम्यक् प्रकार से विशुद्ध चित्त द्वारा ध्यान कर जाती पुष्प के द्वारा श्रीकृष्ण का

सिंहासने समासीनं विश्रान्तं कंससूदनम् । मुक्तामयैः सुरुचिरैर्हारैर्दामविभूषितम् ॥२९॥
ध्यात्वा सम्यग्विशुद्धात्मा जातीपुष्पैः समर्च्चयेत् । महारजतपात्रे तु नैवेद्यान्नं निवेदयेत् ॥३०॥
दद्याद्ग्रासं सखीनाञ्च गोपानां विजितेन्द्रियः । देवकीपरमानन्दमेवं ध्यायेत सुखासनम् ॥३१॥
रात्रिपूजाविधिं वक्ष्ये रुक्मिणीवल्लभस्य च । अधस्तात् कल्पवृक्षस्य सर्व्वपुष्पफलस्य वै ॥३२॥
रत्नमण्डपमध्यस्थं दिव्यपीताम्बरं हरिम् । दिव्यचन्दनलिप्ताङ्गं दिव्याभरणभूषितम् ॥३३॥
अनेकदिव्यमालाभिर्मण्डितं पङ्कजेक्षणम् । रत्नमण्डपमध्यस्थं सुन्दरं सुन्दरस्मितम् ॥३४॥
शोभयन्तं स्ववपुषा सर्व्वलोकान्निजश्रिया । गोपीजनानां हृदयवल्लभं प्रोक्तवर्च्चसम् ॥३५॥
सुगन्धिपुष्पैराराध्यं श्रीकृष्णं सर्व्वनायकम् । राजते तु पयः शुद्धं पक्वं पात्रे निवेदयेत् ॥३६॥
एवमभ्यर्च्चय मनसा जपेन्मन्त्रं समाहितः । कालत्रयार्च्चने चैव सहस्रं साष्टकं जपेत् ।
एष नित्यक्रमः प्रोक्तः कृष्णमन्त्रस्य सूरिभिः ॥३७॥

तत्रैवादौ संक्षिप्त-त्रिकालपूजोक्तयनन्तरम्—

मनसा वा समभ्यर्च्चय त्रिषु सन्ध्यासु संयमी । प्रत्यहन्तु जपेन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
असामर्थ्ये जपेन्मन्त्रं नित्यमष्टशतं तथा ॥३८॥ इति ।

अथ नक्तंकृत्यानि

ततो यथासम्प्रदायं होमं निष्पाद्य वैष्णवः । गीतनृत्यादिकं भक्त्या विधाय प्रार्थयेत् प्रभुम् ॥३९

तथा चोक्तम्—
बलीयसा पदा स्वामिन् पदवीमवधारय । आगच्छ शयनस्थानं प्रियाभिः सह केशव ॥४०॥ इति

प्रियाभिः श्रीराधिकादिभिः ॥४०॥

ध्यान करे, एवं जाती कुसुम के द्वारा पूजा करे। पश्चात् महारजत पात्र में अन्न निवेदन कर सखा गोपगण को प्रदान करे। जितेन्द्रिय मानव इस प्रकार सुखासीन देवकीनन्दन का ध्यान करे ॥२९-३१॥

रुक्मिणीवल्लभ की रात्रिकालीन पूजा-विधान को कहते हैं—सर्वविध पुष्प एवं फल समन्वित कल्पवृक्ष के मूलदेश में रत्नमण्डप मध्यस्थ दिव्य पीताम्बरधारी श्रीहरि दिव्यचन्दन से लिप्त देह, दिव्याभरण भूषित दिव्य माला सज्जित, पद्मलोचन, सुन्दर शोभन हास्यविशिष्ट, निजशरीर एवं शोभा के द्वारा लोकसमूह की शोभा विस्तारकारी एवं गोपीजनों के हृदयवल्लभ, तेजोरूप में कथित, सर्व नायक कृष्ण को सुगन्धित कुसुम द्वारा आराधना करके रजत पात्र में पवित्र पक्व दुग्ध अर्पण करे। इस रीति से पूजा करके स्थिर चित्त से मन्त्र जप करे। त्रैकालिक पूजा में अष्टोत्तर-सहस्र बार जप करना चाहिये। सूरिगण इस प्रकार श्रीकृष्ण मन्त्र वा नित्यक्रम का वर्णन किये हैं ॥३२-३७॥

प्रथमतः संक्षिप्त रूप में त्रिकाल पूजा कथन के पश्चात्, त्रिसन्ध्या मानस पूजा करके समाहित चित्त से एक सहस्र अष्ट बार मन्त्र जप करने की असामर्थ्य पक्ष में नित्य एकशतअष्ट बार जप करे ॥३८॥

अथ नक्तंकृत्यानि

तत्पश्चात् जिस प्रकार गुरुपरम्परा व्यवहार है, उस प्रकार वैष्णवजन तदनुरूप होम कर्म निष्पन्न करने के बाद भक्तिपूर्वक नृत्यादि करके श्रीकृष्ण के समीप में प्रार्थना करे ॥३९॥

प्रार्थना का वर्णन करते हैं—हे स्वामिन्! बलिष्ठ चरण द्वारा पदवी का अवधारण करें। हे केशव! प्रियावर्ग के सहित शयन स्थान में आगमन करें ॥४०॥

एवं प्रार्थ्य समर्प्यास्मै पादुके शयनालयम् । आनीय देवं तत्रत्यानुपचारान् प्रकल्पयेत् ।।४१।।
विशेषतोऽर्पयेत्तत्र घनं दुग्धं सशर्करम् । ताम्बूलञ्च सकर्पूरं दिव्यमाल्यानुलेपनम् ।।४२।।
इत्थं भक्त्या समाराध्य भगवन्तं स्वशक्तितः । तत्प्रीत्यै सर्व्वकर्म्माणि तत्फलं वार्पयेत् कृती ।।४३

अथाहोरात्राखिलकर्म्मार्पणविधिः

एकादशस्कन्धे (२।३६)—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात् ।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै, नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।४४।।

किञ्चात्र—

साधु वासाधु वा कर्म्म यद्यदाचरितं मया । तत् सर्व्वं भगवन् विष्णो गृहाणाराधनं परम् ।।४५।।

तत्रत्यान् शयनालये कृत्यान् ।।४१।।

आत्मना चित्तेनाहङ्कारेण वा अनुसृतो यः स्वभावस्तस्मात् । अयमर्थः—न केवलं विधितः कृतमेवेति नियमः स्वभावानुसारि-लौकिकमपीति । तथा च श्रीभगवद्गीतासु (९।२७)—'यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि' इत्यादि । यद्वा, ननु कायादीनामेव कर्म्म, नात्मन इत्याशङ्क्याह-अध्यासेनानुसृतात् ब्राह्मणत्वादि-स्वभावात् यद्यत् करोतीत्यर्थः । यद्वा, अनुसृतः आश्रितो यः स्वभावः वैष्णवत्वं, तस्माद्धेतोः कायादिना यद्यत् भगवदाराधनकर्म्मेत्यर्थः, तत् सकलं परस्मै परमेश्वराय नारायणाय समर्पयेत, इत्यनेन वचनेन कायेने-त्यादि नारायणायेत्यन्तपद्यमिदं पठित्वेत्यर्थः; यद्वा, नारायणप्रीत्यर्थं भवत्विति समर्पयेत ।।४४।।

कर्म्म भगवदाराधनलक्षणं, साधु सम्यक्तया, असाधु असम्यक्तया वा कृतमित्यर्थः । श्रीभगवति भक्तैर-सत्कर्म्मणामर्पणस्यायोग्यत्वात्, एवम् आराधनं परमाराधनत्वेन गृहाण स्वीकुरु ।।४५।।

इस प्रकार प्रार्थनाकरतः पादुका समर्पणकर श्रीकृष्ण को शयनस्थान में आनयनपूर्वक शयनस्थानोपयुक्त उपचार समूह की कल्पना करनी पड़ती है ।।४१।।

विशेषतः शयनस्थान में शर्करयुक्त घन दुग्ध, कर्पूरसमन्वित ताम्बूल, उत्कृष्ट माला एवं अनुलेपन अर्पण करना पड़ता है । इस प्रकार स्वीय शक्ति के अनुसार भक्तिपूर्वक भगवान् की आराधना कर कृती व्यक्ति भगवत् प्रीति के निमित्त समस्त कर्म एवं कर्मफलार्पण श्रीभगवान् को करें ।।४२-४३।।

अथाहोरात्राखिलकर्म्मार्पणविधिः

एकादश स्कन्ध में वर्णित है—विधिविहित रूप में देह द्वारा अनुष्ठित कर्म, वाक्य द्वारा अनुष्ठित कर्म, एवं मनो द्वारा अनुष्ठित भावनारूप कर्म, इन्द्रिय समूह के द्वारा आचरित कर्म, बुद्धि द्वारा अनुष्ठित कर्म, एवं "मैं कर रहा हूँ" इस प्रकार ज्ञानतः जो कुछ अनुष्ठित होता है, तत्समुदाय परमेश्वर श्रीनारायण को अर्पण करे । केवल विहित कर्ममात्रार्पण ही करे ऐसा नहीं अपितु ब्राह्मणत्वादि स्वभाववशतः जो जो आचरण होता है, तत्समुदाय भी परमेश्वर को अर्पण करे ।।४४।।

और भी कथित है—हे भगवन् ! हे विष्णो ! मैंने साधु अथवा असाधु जो सब कार्य्य किया है, वह सब आप परमाराधना विवेचना से ग्रहण करें । यहाँ कर्म शब्द से भगवदाराधनस्वरूप कर्म को ही जानना होगा, साधु शब्द का अर्थ प्रस्तुत प्रकरण में सम्यकतया है, एवं असाधु शब्द का अर्थ, असम्यकतया है । अर्थात् सम्पूर्णरूप से अथवा असम्पूर्णरूप से जो कुछ कर्म अनुष्ठित हुआ है । कारण—भक्तवृन्द के द्वारा श्रीभगवान् को असत् कर्म का अर्पण करना असमीचीन है, अतएव उक्त अनुष्ठित कर्म आराधन स्वरूप मानकर आप स्वीकार करें, यही प्रार्थना है ।।४५।।

किञ्च—

अपां समीपे शयनासने गृहे, दिवा च रात्रौ च यथा च गच्छता ।
यदस्ति किञ्चित् सुकृतं कृतं मया, जनार्द्दनस्तेन कृतेन तुष्यतु ॥४६॥

अतएवोक्तं तृतीयस्कन्धे ब्रह्माणं प्रति श्रीभगवता (९।४१)—

पूर्त्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगैः समाधिना । राद्धं निःश्रेयसं मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥४७॥ इति ।
इत्थमाराधयेन्नित्यं भगवन्तं यथाविधि । न्यायार्ज्जितात्मवित्तेन समग्रफलसिद्धये ॥४८॥

अथ पूजाफलसम्प्राप्त्युपायः

दशमस्कन्धे (८४।३७)—

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः । यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥४९॥

अगस्त्यसंहितायाञ्च—

न्यायार्ज्जितैः साधनैश्च दानहोमार्च्चनादिकम् ।
कुर्य्यान्न चेदधो याति भक्त्या कुर्व्वन्नपि द्विज ॥५०॥ इति ।

यत्नात् सिद्धैर्निजैः शुद्धैर्द्रव्यैर्धन्योऽर्च्चयेत् प्रभुम् । पूजाद्रव्याण्यशक्तश्चेद्दद्याद्वीक्षेत वार्च्चनम् ॥५१

न च मत्प्रीतेरधिकं किञ्चिदस्ति, इत्याह—पूर्त्तेनेति । पूर्त्तादिभी राद्धं सिद्धं यन्निःश्रेयसं फलं, मत्प्रीतिरेवेति तत्त्वविदां मतम् ॥४७॥

इत्थं लिखितप्रकारेण यथाविधि नित्यमाराधयेत् । तच्च न्यायार्ज्जितेन आत्मन एव वित्तेन धनेन, समग्रस्य सम्पूर्णस्य फलस्य सिद्धये, अन्यथा शास्त्रोक्तपूजाफलं सम्पूर्णं न सम्पद्यत इत्यर्थः ॥४८॥

स्वस्त्ययनं स्वस्ति, क्षेममयतेऽनेनेति तथा, श्रद्धया निष्कामतया भक्त्या वा, शुक्लेन शुद्धेन आप्तेन न्यायार्ज्जितेन वित्तेन पूरुष ईश्वर इज्येतेति यत् अयं पन्थाः ॥४९॥

नचेत् अन्यायार्ज्जितैर्यदि कुर्य्यात्तदेत्यर्थः । द्विज हे सुतक्षण ॥५०॥

यश्च श्रद्धाविशेषेण यत्नतो विशुद्धसाधनानि सम्पाद्य पूजामाचरेत्, स च परमभाग्यवानिति लिखति—यत्नादिति । अशक्तश्चेद्यदि तथार्च्चनेऽसमर्थस्तदा पूजाद्रव्याणि दद्यात्, तत्राशक्तौ च पूजादर्शनमपि कुर्य्यादित्यर्थः ॥५१॥

और भी लिखित है—जल के समीप में, शयन के समय, उपवेशन में, गृह में, दिवस में, रजनी में किंवा गमन करते करते मैंने जो कुछ पुण्य एकत्र किया है, उस कार्य्य के द्वारा जनार्दन ! आप सन्तुष्ट हों ॥४६॥

इसी प्रकार तृतीय स्कन्ध में ब्रह्मा के प्रति श्रीभगवान् ने कहा है– हे ब्रह्मन् ! मुझको सन्तुष्ट करना ही सबके परम मङ्गल का कारण है, इस प्रकार जानना चाहिये । इससे अतिरिक्त उत्तम फल मिलने की सम्भावना नहीं है । यद्यपि पूर्त्त अर्थात् वापी, कूप, तड़ागादि निर्म्माण, तपस्या, दान, योग एवं समाधि द्वारा मोक्षादि फल सिद्धि होती है, किन्तु एकमात्र मेरी प्रसन्नता से ही वह सिद्धि होती, यह कथन तत्त्वज्ञ पण्डितों का है ॥४७॥

न्यायार्जित धन के द्वारा समस्त फल सिद्धि के निमित्त, नित्य यथाविधि भगवदाराधना करनी चाहिये ॥४८

अथ पूजाफलसम्प्राप्त्युपायः

दशमस्कन्ध में वर्णित है—श्रद्धापूर्वक शुद्ध चित्त होकर न्यायार्जित वित्त द्वारा परमपुरुष की आराधना करना गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण के पक्ष में मङ्गलजनक प्रशस्त पथ है ॥४९॥

अगस्त्यसंहिता में वर्णित है—हे द्विज ! न्यायोपार्जित धन के द्वारा दान, होम एवं आराधनादि करे,

अथाशक्तस्य पूजाफलप्राप्त्युपायः

अगस्त्यसंहितायाम्—

आराधनासमर्थश्चेद्द्याद‍र्च्चनसाधनम् । यो दातुं नैव शक्नोति कुर्य्यादर्च्चन-दर्शनम् ।।५२।।
निस्ताराय तदेवालं भवाब्धेर्मुनिसत्तम । नैकञ्च यस्य विद्येत सोऽधो यात्येव नान्यथा । ५३।।

किञ्च तत्रैव—

यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं सम्पाद्य चाखिलम् । साधनं चार्च्चयेद्विद्वान् समग्रं लभते फलम् ।।५४
योऽर्च्चयेद्विधिवद्भक्त्या परानीतैश्च साधनैः । पूजाफलार्द्धमेव स्यान्न समग्रं फलं लभेत् ।।५५।।

किञ्च, पाद्मे श्रीकृष्णसत्यासंवादीय कार्त्तिकमाहात्म्ये—

धर्म्मोद्देशेन यो द्रव्यं परं याचयते नरः । तत्पुण्यकर्म्मजं तस्य धनदस्त्वाप्नुयात् फलम् ।।५६।।

अथ दर्शन-माहात्म्यम्

पाद्मे श्रीपुलस्त्यभगीरथ-संवादे—

पूजितं पूज्यमानञ्च ये पश्यन्ति जनार्द्दनम् । कपिलाशतदानस्य नित्यं भवति तत् फलम् ।।५७।।

एतदेवागस्त्याद्युक्त्या प्रमाणयन् आदौ पूजासाधनदातापि समग्रमेव फलं प्राप्नुयादिति लिखति—आराधनेति । अप्यर्थे एव-शब्दः, तत् अर्च्चनदर्शनमपि भवाब्धेः सकाशान्निस्ताराय अलं समर्थम् ।।५२-५३।।

फलभेदमाह—यस्त्विति द्वाभ्याम् ।।५४।।

स्वयन्तु पूजार्थं द्रव्यमन्यजनं नैव याचेतेत्यत्र पाद्मवचनं लिखति—धर्म्मेति । तस्य द्रव्ययाचकस्य ।।५६।।

अधुना स्वपरद्रव्यार्च्चनात् पूजादर्शने श्रीभगवतो दर्शनं स्यादिति प्रसङ्गात्तन्माहात्म्यं लिखति—पूजितमित्यादिना ।।५७।।

यदि ऐसा न किया जाय तो अन्यायोपार्जित धन के द्वारा भक्ति एवं देवपूजादि अनुष्ठान करने से पूजक की अधोगति होती है । जो मानव, सार्थक जन्मा है, वे अपने यत्नसञ्चित स्वकीय शुद्ध द्रव्य द्वारा श्रीभगवान् की पूजा करें । यदि इसमें असमर्थ हो तो पूजा का दर्शन मात्र करें एवं भगवद् उद्देश में पूजा द्रव्य समर्पण करें ।।५०-५१।।

अथाशक्तस्य पूजाफलप्राप्त्युपायः

अगस्त्य संहिता में वर्णित है—जो मानव, भगवदर्च्चना करने में अक्षम हैं, वे पूजन हेतु द्रव्यादि अर्पण करें, यदि इसमें असमर्थ हों तो पूजा दर्शन मात्र करें । हे मुनिसत्तम ! यह पूजा का दर्शन भी संसार समुद्र से पार उतरने का एकमात्र उपाय है । जिनके इन दोनों में से कुछ भी नहीं हैं, वे अधोगति को प्राप्त होते हैं । इस विषय में कुछ भी सन्देह नहीं है ।।५२-५३।।

उक्त ग्रन्थ में और भी वर्णित है—जो विद्वान् मानव, यत्न एवं भक्तिपूर्वक पूजन हेतु निखिल द्रव्य स्वयं संग्रह कर भगवान् को अर्पण करते हैं वे समग्र पूजा-फल लाभ करते हैं । जो मानव, अपर व्यक्ति के द्वारा आनीत पूजोपकरण द्वारा भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं, वे समग्र पूजाफल प्राप्त न कर अर्द्धांश प्राप्त करते हैं ।।५४-५५।।

पद्मपुराण के श्रीकृष्ण-सत्यभामा संवादीय कार्त्तिक-माहात्म्य में वर्णित है—जो मानव, पुण्य कार्य्य सम्पादन हेतु स्वीय दुरवस्था निबन्धन अपर के निकट द्रव्य प्रार्थना करते हैं, उक्त कार्य्य का फल लाभ धनदाता करते हैं ।।५६।।

अथ दर्शन-माहात्म्यम्

पद्मपुराण के श्रीपुलस्त्य-भगीरथ-संवाद में लिखित है—जो मानव, जनार्दन को पूजित अथवा उनकी

आग्नेये—

पूजितं पूज्यमानं वा यः पश्येद्भक्तितो हरिम् ।
श्रद्धया मोदयेद्यस्तु सोऽपि यागफलं लभेत् ।।५८।।
संपूज्यमानं विधिना यः पश्येत् श्रद्धया हरिम् ।
सोऽपि यागफलं कृत्स्नं प्राप्नुयात् नात्र संशयः ।।५९।।

दृष्ट्वा संपूजितं देवं नृत्यमानोऽनुमोदयेत् । असंशयमतिः शुद्धः परं ब्रह्माधिगच्छति ।।६०।।

अथ श्रीभगवन्मूर्त्तिदर्शन-नित्यता

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

तावद्भ्रमन्ति संसारे मनुष्या मन्दबुद्धयः । यावद्रूपं न पश्यन्ति केशवस्य महात्मनः ।।६१।।

पाद्मे च तत्रैव—

पूज्यमानं हृषीकेशं ये न पश्यन्ति वैष्णवाः । तेषां दत्तं हुतं जप्तं दैतेयायोपतिष्ठति ।।६२।।

किञ्च, तत्रैव नारायण-नारदसंवादे पूजाविधिकथने—

यत्र कुत्रापि प्रतिमां वेदधर्म्मसमन्विताम् । न पश्यन्ति जना गत्वा ते दण्ड्या यमकिङ्करैः ।।६३

मोदयेत् अनुमोदं कुर्य्यात् ।।५८।।

तथा सुप्रतिष्ठिताया भक्तैः पूज्यमानायाः सन्निहितायाः श्रीभगवन्मूर्त्तेः सन्दर्शनमवश्यं कार्य्यमिति लिखति—तावदित्यादिना । रूपं श्रीमूर्त्तिम् ।।६१।।

यत्र कुत्रापि दुर्गमे स्थाने सुगमे वेति ज्ञेयम्, वेदधर्म्मसमन्वितां वेदोक्तधर्म्मेण प्रतिष्ठादिपूर्व्वकं यथाविधि-पूज्यमानामित्यर्थः ।।६३।।

पूजा हो रही है देखते हैं, शत कपिला धेनु दान से जो फल होता है वह फल लाभ उनको नित्य ही होता है ।।५७।।

अग्निपुराण में लिखित है—जो व्यक्ति, भक्ति पूर्वक श्रीहरि की पूजा हुई है अथवा हो रही है, इस प्रकार दर्शन करते हैं, अथवा श्रद्धा पूर्वक अनुमोदन करते हैं, उनको भी याग का फल मिलता है । श्रद्धा पूर्वक एवं यथाविधि श्रीहरि की पूजा होरही है, जो इसको देखते हैं, वे भी याग फल प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देहावकाश नहीं है । जो मानव, सुपूजित श्रीहरि को देखकर नृत्य पूर्वक अनुमोदन करते हैं, असंशयमति युक्त पवित्र वह मानव परमब्रह्म को प्राप्त होते हैं ।।५८-६०।।

अथ श्रीभगवन्मूर्त्तिदर्शन-नित्यता

विष्णुधर्मोत्तर में लिखित हैं—जिस समय पर्य्यन्त भगवान् श्रीकेशव के कमनीय श्रीविग्रह का दर्शन नहीं होता है, उस समय पर्य्यन्त दुर्म्मति मनुष्य संसार समुद्र में भ्रमण करते हैं ।।६१।।

पद्मपुराण में लिखित है—जो वैष्णवजन, पूज्यमान हृषीकेश का दर्शन नहीं करते हैं, उनके दान, होम एवं जपादि समस्त ही देवोदिष्ट होकर भी दानवोदिष्ट होते हैं,अर्थात् दैत्यवृन्द उसके फलभागी होते हैं ।.६२

और भी उक्त स्थान में नारायण-नारद-संवाद के पूजाविधि कथन में लिखित है—सुगम अथवा दुर्गम जिस स्थान में हो, जो वेदोक्त क्रिया के द्वारा प्रतिष्ठित भगवन्मूर्त्ति का दर्शन नहीं करते हैं, वह सब यम-किङ्करवृन्द के द्वारा दण्डित होते हैं ।।६३।।

अथ भगवदर्थं द्रव्यदान-माहात्म्यम्

स्कान्दे —

विष्णुमुद्दिश्य यत्किञ्चिद्विष्णुभक्ताय दीयते । दानं तद्विमलं प्रोक्तं केवलं मोक्षसाधनम् ॥६४॥

कौर्म्मे —

यत्किञ्चिद्देयमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणाय च । प्रभवे विष्णवे चाथ तदनन्तफलं स्मृतम् ॥६५॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे —

अनुग्रहेण महता प्रेतस्य पतितस्य च । नारायणबलिः कार्य्यस्तेनास्यानुग्रहो भवेत् ॥६६॥
अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अक्षयः पुण्डरीकाक्षस्तत्र दत्तं न नश्यति ॥६७॥
यथा कथञ्चिद्यद्दत्तं देवदेवे जनार्द्दने । अविनाशि तु तद्विद्धि पात्रमेको जनार्द्दनः ॥६८॥

तत्रैव तृतीयकाण्डे—

सामान्यभक्त्या यद्दत्तं तद्धि पद्भ्यां प्रतीच्छति । एकान्तभावोपगमैर्मूर्द्धना द्विजवरोत्तमाः ॥६९
अनन्तो भगवान् विष्णुस्तस्य कामविवर्जितैः । यदेव दीयते किञ्चित्तदेवाक्षयमुच्यते ॥७०॥
पद्भ्यां प्रतीच्छते देवः सकामेन निवेदितम् । मूर्द्धना प्रतीच्छते दत्तमकामेन द्विजोत्तमाः ॥७१॥

तथैवोक्तं मोक्षधर्म्मे श्रीनारदेन—

ब्रह्मा यदृषयश्चैव स्वयं पशुपतिश्च यत् । अन्ये च विबुधश्रेष्ठा दैत्य-दानव-राक्षसाः ॥७२॥
नागाः सुपर्णा गन्धर्व्वाः सिद्धा राजर्षयस्तथा । हव्यं कव्यञ्च सततं विधियुक्तं प्रभुञ्जते ।
कृत्स्नन्तु तस्य देवस्य चरणावुपतिष्ठति ॥७३॥

पूजाद्रव्याणि वा दद्यादिति सम तपूजामाधनदानेनापि समग्रं पूजाफलं लभत इति लिखितं, तत्र श्रीभगवदर्थं किञ्चिदानेनापि महाफल सिध्येदित्याशयेन सामान्यतो लिखति—विष्णुमित्यादिना स्वयमित्यन्तेन ॥६४-७०॥ प्रतीच्छते स्वीकरोति ॥७१॥

यत् हव्यं देवेभ्यो देयं, कव्यञ्च पितृभ्यो देयं चरणौ प्रति; एकस्मिन्नेव भगवति अन्तं गता निष्ठां प्राप्ता

अथ भगवदर्थ-द्रव्यदान-माहात्म्यम्

स्कन्दपुराण में लिखित है—विष्णु के उद्देश में विष्णुभक्त को जो कुछ दिया जाय, वही दान निर्म्मल कहा गया है, एवं मोक्ष का साधक भी होता है ॥६४॥

कूर्म्मपुराण में लिखा है—भगवान् के निमित्त ब्राह्मण को जो कुछ अर्पण किया जाता है, भगवान् श्रीविष्णु उसको ग्रहण करते हैं, एवं वह अनन्त फलदायक रूप में कथित होता है ॥६५॥

विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है—जो मानव, अतिशय अनुग्रह की आशा से प्रेत एवं पतितगण के निमित्त श्रीनारायण को उपहार प्रदान करते हैं, उनके उस कार्य्य से नारायण का अनुग्रह होता है । जिनका आदि अथवा अन्त नहीं है, जो शङ्ख, चक्र, गदाधारी, अक्षय, पुण्डरीकाक्ष देवता हैं, उनके निमित्त जो सब कुछ वस्तु दी जाती हैं, वह कभी विनष्ट नहीं होती । अर्थात् उसको अक्षय दान कहते हैं । हे द्विजोत्तमवृन्द ! सकाम होकर जो लोक श्रीविष्णु के उद्देश में दान करते हैं, श्रीविष्णु उसको निज चरणप्रान्त में ग्रहण करते हैं । किन्तु निष्काम होकर प्रदान करने से उसको मस्तक में ग्रहण करते हैं ॥६६-७१॥

उक्त विषय का वर्णन मोक्षधर्म में श्रीनारद कर्त्तृक हुआ है—ब्रह्मा, ऋषिवृन्द, दैत्य, दानव, राक्षस, नाग, सुपर्ण, गन्धर्व, सिद्ध एवं राजर्षिवृन्द, जो सब हव्य कव्य भोजन करते हैं, वह सब वस्तु भगवान् के

याः क्रियाः संप्रयुक्तास्तु एकान्तगतबुद्धिभिः ।
ताः सर्व्वाः शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम् ॥७४॥

अथ दानविशेषफलम्

ब्रह्मवैवर्त्ते—

एकामपि नरो धेनुं सवत्सां विधिपूर्व्वकम् । दत्त्वोद्देशेन कृष्णस्य प्राप्नोत्येवाभिवाञ्छितम् ॥७५

नारसिंहे—

यो गां पयस्विनीं विष्णोः कृष्णवर्णां प्रयच्छति । अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्य हरिं व्रजेत् ॥७६॥
सर्व्वपापैर्विरहितः सर्व्वभूषणभूषितः । गवां सहस्रदानस्य प्राप्यं दिव्यं व्रजेत् ॥७७॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

गवां लोकमवाप्नोति धेनुं दत्त्वा पयस्विनीम् । दधिक्षीरघृतार्थाय वासुदेवस्य चालये ।
दत्त्वा गां मधुपर्काय महत् फलमवाप्नुयात् ॥७८॥
जलाशयं तथा कृत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥७९॥
सपुष्पैः सफलैर्वृक्षैर्युतं कृत्वा जलाशयम् । उद्यानैः पद्मिनीषण्डैराश्रमैश्च मनोहरैः ।
श्वेतद्वीपमवाप्नोति पुनर्नावर्त्तते ततः ॥८०॥
देवाग्रे कारयेद्यस्तु रम्यामापणवीथिकाम् । राजा भवति लोकेषु विजितारिर्महायशाः ॥८१॥

बुद्धिर्येषां तैः ॥७२-७४॥

अधुना द्रव्यविशेष-दानेन फल-विशेषं लिखति— एकामित्यादिना सुखं भवेदित्यन्तेन । यद्यपि गोदानादि-कमेतत् कादाचित्कत्वान्नित्यकर्म्ममध्येऽत्र लिखितुं नोपयुज्यते, तथापि तत्तद्दानेन नित्यपूजासिद्धेः, पूजा-

---

चरणयुगल में उपनीत होती हैं । किन्तु एकनिष्ठ भगवद् भक्त मनुष्यवृन्द जिस किसी क्रियानुष्ठान करते हैं, भगवान् स्वयं ही उन सबको निज मस्तक से ग्रहण करते हैं ॥७२-७४॥

अथ दानविशेषफलम्

ब्रह्मवैवर्त्त में लिखा है—मनुष्य जगत् में श्रीकृष्ण के उद्देश में केवल एकमात्र वत्स सहित धेनु का दान यथाविधि करने पर मनुष्य अभीप्सित फल लाभ करते हैं ॥७५॥

नृसिंहपुराण में उक्त है—जो मनुष्य, भगवान् श्रीविष्णु के उद्देश में कृष्णवर्णा पयस्विनी धेनु दान करते हैं, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर श्रीहरि के निकट गमन करते हैं । विशेष बात तो क्या कहें, वे मनुष्य, सर्व पाप रहित एवं सर्वाभरण भूषित होकर सहस्र गोदान का फल लाभ कर स्वर्गलोक में जाते हैं ॥७६-७७॥

विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है—वासुदेव मन्दिर में दधि, दुग्ध एवं घृत हेतु पयस्विनी धेनु दान करने से गोलोक में निवास होता है । एवं मधुपर्क के निमित्त गोदान करने से महाफल लाभ होता है । जो मनुष्य, भगवान् के निमित्त जलाशय उत्सृष्ट करते हैं, वे सर्व पाप मुक्त होते हैं । जो मानव, मनोहर आश्रम में जलाशय निर्माण कर उसको पुष्प फल समन्वित उद्यान से परिवृत एवं कमल कह्लार से सुशोभित कर देते हैं, उनका निवास श्वेत द्वीप में होता है । दूसरी बात क्या कहूँ, उनको पुनर्वार पुनर्जन्म क्लेश भोगना नहीं पड़ता है । जो मानव, श्रीहरि के सम्मुख में पवित्र निज वीथि विन्यस्त करते हैं, वे शत्रुविजयी एवं महायशस्वी होकर राजपद में अधिष्ठित होते हैं ॥७८-८१॥

नगरञ्च तथा कृत्वा साम्राज्यमधिगच्छति । शिबिकां ये प्रयच्छन्ति ते प्रयान्त्यमरावतीम् ॥८२॥
अश्वदाः स्वर्गलोकस्था राजन्ते दिवि सूर्य्यवत् । कवीन्द्रदानाच्छक्रस्य चिराल्लोकाच्युतो नरः ॥८३
राजा भवति धर्म्मात्मा पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥८४॥
विष्णोरायतने दत्वा तत्कथा-पुस्तकं नरः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति बहुकालस्थिरं द्विजाः ॥८५॥
पुस्तकांश्च तथैवान्यान् यः प्रदद्यान्नरस्त्विह । सारस्वतमवाप्नोति लोकं कालं तथा बहुम् ॥८६॥
स्वभृतं वाचकं कृत्वा देवागारे नरः सदा । विद्यादानफलं प्राप्य ब्रह्मलोके महीयते ॥८७॥
विष्णोः शङ्खप्रदानेन वारुणं लोकमश्नुते । मानुष्यमासाद्य तथा ख्यात-शब्दश्च जायते ॥८८॥
घण्टाप्रदानेन तथा महद्यश उपाश्नुते । कूटागारं तथा दत्वा नगराधिपतिर्भवेत् ॥८९॥
दत्वा तु देवकर्म्मार्थं नवां वेदीं दृढ़ां शुभाम् । पार्थिवत्वमवाप्नोदि वेदी हि पृथिवी यतः ॥९०॥
तोरणं कारयेद्यस्तु देवदेवालये नरः । लोकेषु तस्य द्वाराणि भवन्ति विवृतानि वै ॥९१॥
देववेश्मोपयोग्यानि शिल्पभाण्डानि यो नरः । दद्याद्वा वाद्यभाण्डानि गणेशत्वमवाप्नुयात् ॥९२॥

द्रव्यदानलिखनाच्च तत्तत्फलविशेषापेक्षया प्रसङ्गतोऽत्रैव लिखितमिति दिक् ॥७५-८३॥
तस्य विष्णोः कथायाः पुस्तकं श्रीभागवतादि ॥८५॥
इह विष्णवायतने ॥८६॥
स्वभृतं वेतनादिना स्वायत्तीकृतम् ॥८७॥
कूटागारं मञ्चगृहम् ॥८९॥
वेदीं भगवदग्रतः पूजोपकरण-स्थापनार्थमिष्टकादिनिर्म्मितं स्थानविशेषम् ॥९०॥
शिल्पभाण्डानि शिल्पनिर्म्माणरचितद्रव्यादीनि वाद्यादीनि च ॥९२॥

जो मानव, श्रीविष्णु के उद्देश में नगर पत्तन करते हैं, वे साम्राज्य प्राप्त करते हैं। श्रीनारायण के निमित्त शिबि का दान करने से अमरावती का अधिपति होता है. अश्वदान करने से स्वर्गवासी होकर सूर्य्य तुल्य शोभा मण्डित होते हैं, इस प्रकार हस्ती दान करने से वह धार्मिक व्यक्ति दीर्घकाल इन्द्रासन में अधिष्ठित होने के पश्चात् नरलोक में पृथिवीश्वर होते हैं ॥८२-८४॥

हे द्विजगण ! विष्णुमन्दिर में दीर्घकाल भगवत् कथा, पुस्तक भागवतादि दान करके मनुष्य ब्रह्मालय को प्राप्त करते हैं। एवं बहुकाल यावत् सारस्वत भवन में निवास करते हैं। जो मनुष्य देवालय में वेतन आदि द्वारा वाचक धर्मवक्ता नियोग करते हैं, वे विद्यादान का फल लाभ कर सम्मान के सहित ब्रह्मालय में निवास करते हैं ॥८५-८७॥

श्रीविष्णु के उद्देश में शङ्ख प्रदत्त होने से वरुण लोक प्राप्ति होती है, एवं अवशेष में पृथिवी में मनुष्य होकर जन्म लाभ कर विशेष ख्यात होते हैं। घण्टा प्रदान करने पर अतिशय महा ख्याति होती है। मञ्च-गृह प्रतिष्ठा करने से नगराधिपत्य लाभ होता है। देवकर्म के उद्देश में शुभकर सुदृढ़ इष्टकादि निर्मित नूतन वेदी प्रस्तुत करने से भूपति होते हैं। कारण, पृथिवी ही वेदी शब्द से अभिहित हैं। विष्णु-मन्दिर के समक्ष में तोरण निर्माण करने से समस्त लोकों में उनके निमित्त द्वार उद्घाटित होकर रहता है ॥८८-९१

जो मनुष्य, देवगृह के व्यवहारोपयोगि प्रयोजनीय शिल्पभाण्ड किंवा वाद्यभाण्ड प्रदान करते हैं, वे गणेशत्व लाभ करते हैं। देवकार्य्यार्थ मङ्गलकर नूतन कुम्भ प्रदान करने पर वरुणलोक में निवास होता है,

यः कुम्भं देवकर्म्मार्थं नरो दद्यान्नवं शुभम् । वारुणं लोकमाप्नोति सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥९३॥
चतुरः कलसान् दद्याद्यस्तु देवगृहे नरः । चतुःसमुद्रवलयां स हि भुङ्क्ते वसुन्धराम् ॥९४॥
दत्त्वैकमपि विप्रेन्द्राः कलसं सुसमाहितः । राजा भवति धर्म्मात्मा भूतले नात्र संशयः ॥९५॥
वारिधानीं तथा दत्त्वा वारुणं लोकमश्नुते । कमण्डलुप्रदानेन यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥९६॥
मात्रान्तु परिचर्य्यार्थं निवेद्य हरये तथा । सर्व्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥९७॥
तालवृन्तप्रदानेन निर्वृतिं प्राप्नुयात् पराम् । माल्याधारं तथा दत्त्वा धूपाधारं तथैव च ।
गन्धाधारं तथा पात्रं कामानां पात्रतां व्रजेत् ॥९८॥
समुद्रजानि पात्राणि दत्त्वा वै तैजसानि वा । पात्रं भवति कामानां विद्यानाञ्च धनस्य च ॥९९
शयनासनदानेन स्थितिं विन्दति शाश्वतीम् । उत्तरच्छददानेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ॥१००
नरः सुवर्णदानेन सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् । रूप्यदो रूपमाप्नोति विशेषाद्भुवि दुर्लभम् ॥१०१॥
रत्नदानेन लोकेषु प्रामाण्यमुपगच्छति । अनड्वाहप्रदानेन दशधेनुफलं लभेत् ॥१०२॥
अजाविमहिषोष्ट्राणां दानमश्वतरस्य च । सहस्रगुणितं दानात् पूर्व्वप्रोक्तात् प्रकीर्त्तितम् ॥१०३॥

शुभमुत्कृष्टद्रव्यनिर्म्मितं सुन्दरं वा ॥९३॥
वारिधानीं लघुघटम् ॥९६॥
मात्रां देवोपचारसामग्रीं तदाधारद्रव्यं वा ॥९७॥
कामानामैश्वर्य्यभोगानां पात्रतामाश्रयताम् ॥९९॥
रत्नानि मौक्तिक-हीरकगोमेदेन्द्रनील-पुष्परागवैदुर्य्य-विद्रुम-मरकत-पद्मरागादीनि ॥१०२॥
पूर्व्वप्रोक्तात् ब्राह्मणसम्प्रदानकाद्दानात् ॥१०३॥

एवं पाप विध्वंस होता है ॥९२-९३॥

जो मनुष्य, देवगृह में चार कलश दान करते हैं वे चतुःसमुद्र परिवेष्ठित वसुन्धरा को भोग करते हैं। हे विप्रश्रेष्ठगण ! सुसमाहित चित्त से श्रीहरि के उद्देश में एक मात्र कलश दान करने पर सुधार्मिक राजा होकर पृथिवी का आधिपत्य लाभ करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भगवद् उद्देश में क्षुद्र घट भी दान करने से वरुणलोक में निवास होता है, इस प्रकार कमण्डलु दान करने पर यज्ञीय फल लाभ होता है ॥९४-९६॥

देवोपचार सामग्री अथवा देवपरिचर्य्या के निमित्त उसका आधार प्रदान करने से सर्व काम समृद्ध यज्ञफल भागी होता है। तालवृन्त अर्पण करने से परम सुख सम्भोग लाभ होता है। माल्याधार, धूपाधार, गन्धाधार एवं अन्य पात्र प्रदान करने से निखिल ऐश्वर्य्य भोग होता है। समुद्रजात पात्रसमूह किंवा धातु-जात पात्रसमूह दान करने पर ऐश्वर्य्य, विद्या, अर्थ लाभ का अधिकारी होता है। शय्या एवं आसन दान करनें पर नित्यास्थिति होती है। स्वर्ण दान करने से कामना सुसिद्ध होती है। एवं रौप्यदानकारी व्यक्ति पृथिवी में सुदुर्लभ रूप लाभ करता है ॥९७-१०१॥

मणि हीरकादि प्रदान करने पर मनुष्य, प्रामाण्य लाभ करते हैं, एवं वृष दान करने से दश धेनु दान का फल प्राप्त होता है। छाग, मेष, महिष, उष्ट्र एवं अश्वतर दान करने से पूर्वोक्त दान की अपेक्षा सहस्र-गुण फल लाभ होता है। हे द्विजश्रेष्ठवृन्द ! छाग दान करने से वरुणलोक में निवास होता है, उस प्रकार मेष दान करने से भी वरुणलोक की प्राप्ति होती है। जो मानव, उष्ट्र, गर्दभ एवं पश्चिम देश प्रसिद्ध गोखर

वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वा वस्तुं द्विजोत्तमाः । अविप्रदानाच्च तथा तमेनं लोकमश्नुते ।।१०४।।

उष्ट्रं वा गर्द्दभं वापि खरं वा यः प्रयच्छति । अलकां स समासाद्य यक्षेन्द्रैः सह मोदते । १०५।।

आरण्यमृगजातीनां तथा दानाच्च पक्षिणाम् । अग्निष्टोमफलमाप्नोति सुभगश्च तथा भवेत् ।।१०६

दासं दत्त्वा सुखे लोके नेष्टभ्रष्टो विजायते ।

दासीं दत्त्वा तथा विप्रा नात्र कार्य्या विचारणा ।।१०७।।

गणिकां ये प्रयच्छन्ति नृत्यगीतविशारदाम् । सर्व्वदुःखविनिर्मुक्तास्ते प्रयान्त्यमरावतीम् ।।१०८

नृत्यं दत्त्वा तथाप्नोति रुद्रलोकमसंशयम् ।।१०९।।

प्रेक्षणीय-प्रदानेन शक्रलोके महीयते । गीतं दत्त्वा तथाप्नोति ब्रह्मलोकमसंशयम् ।।११०।।

दुन्दुभिं ये प्रयच्छन्ति कीर्त्तिमन्तो भवन्ति ते ।।१११।

दत्त्वा धान्यानि वीजानि शस्यानि विविधानि च ।

रूपकानि च तान्येव प्राप्नुयात् सुरपूज्यताम् ।।११२।।

दत्त्वा शाकानि रम्यानि विशोकस्त्वभिजायते । दत्त्वा च व्यञ्जनार्थाय तथोपकरणानि च ।।११३

पुष्पवृक्षं तथा दत्त्वा देशस्याधिपतिर्भवेत् । फलवृक्षं तथा दत्त्वा नगराधिपतिर्भवेत् ।।११४।।

तथा—

सुगन्धसाधनानीह पटवासानि यो नरः । ददाति देवदेवस्य सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।।११५।।

वस्तं छागं, अविर्मेषः, खरं गर्द्दभविशेषं पश्चिमदेशे गोखरेति प्रसिद्धम् ।।१०४-१०५।।

प्रेक्षणीयमिन्द्रजालादि, गीतं दत्त्वा गायनद्वारा गीतं गापयित्वा; वीजानि शाकादीनां वीजानि, वीज-रूपाणि धान्यानि वा; शस्यानि भोज्यानि यवादीनि, रूपकाणि अङ्कुरितानि ।।११०-११२।।

पुष्पवृक्षं पुष्पप्रधानकं वृक्षम् एवं फलवृक्षम् ।।११४।।

दान करते हैं, वे अलकापुरी में गमन कर यक्षेन्द्रगण के सहित आनन्द उपभोग करते हैं । अरण्य मृग एवं पक्षी दान करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल लाभ होता है एवं सौभाग्य श्री भी प्रकाशित होती है । हे विप्र-गण ! दास दान करने से सुन्दर लोक से इष्ट भोग वर्जन पूर्वक स्खलित नहीं होना पड़ता है । इस प्रकार दासी दान का फल भी दास दान के फल के समान ही है । इस विषय में विचारवाद का कुछ प्रयोजन नहीं है । जो मानव, नृत्य-गीत विचक्षणा (नाचने गाने में चतुरा) गणिका (वेश्या) दान करते हैं, वह सब प्रकार दुःखों से छूटकर अमरावती में गमन करते हैं । केवल मात्र नृत्य दान से रुद्रलोक में निवास होता है, इसमें संशय नहीं है ।।१०२-१०९।।

इन्द्रजाल प्रभृति दर्शनीय का अनुष्ठान करने से इन्द्रलोक में निवास होता है, गायक द्वारा गान कराने से ब्रह्मलोक गमन होता है, इसमें सन्देह नहीं है । जो मानव, देवता के निमित्त दुन्दुभि प्रदान करते हैं, वह संसार में कीर्त्ति समन्वित होते हैं ।।११०-१११।।

शाक वीज, धान्य वीज, यवादि शस्य वीज एवं अङ्कुरित वीजादि दान करने से सुरपूजित होता है, देवता के उद्देश में व्यञ्जनार्थ रम्य शाक अथवा उपकरण समूह अर्पित होते हैं, तो मानव को पुनर्वार शोक मग्न नहीं होना पड़ता है । तद्रूप पुष्पवृक्ष दान करने से देशाधिपत्ति एवं फलवृक्ष दान से नगराधिपति होता है ।।११२-११४।।

इसी प्रकार जो मानव, सुगन्ध साधन एवं पट्टवस्त्र समूह दान करते हैं, वह अश्वमेध यज्ञ का फल लाभ

कङ्कतस्य प्रदानेन विरोमस्त्वभिजायते । कूर्च्चप्रसाधनं कृत्वा परं मङ्गलमश्नुते ॥११६॥
विस्मापनीयं यत् किञ्चिद्दत्वात्यन्तं सुखं लभेत् ॥११७॥
वस्त्रालङ्करणादीनां कृष्णार्पणफलञ्च यत् । उपचारप्रयोगे प्राक् तत्र तत्र व्यलेखि तत् ॥११८
उपचाराश्च विविधाः श्रीमद्भगवदर्च्चने । शक्त्यशक्त्यादिभेदेन तान्त्रिकैर्वैष्णवैर्मताः ११९॥

अथ विविधोपचाराः

आगमे—
आसनस्वागते सार्घ्ये पाद्यमाचमनीयकम् । मधुपर्काचमस्नान-वसनाभरणानि च ॥१२०॥
सुगन्धसुमनोधूप-दीपनैवेद्यवन्दनम् । प्रयोजयेदर्च्चनायामुपचारांस्तु षोड़श ॥१२१॥
अर्घ्यञ्च पाद्याचमन-मधुपर्काचमान्यपि । गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥१२२
गन्धादिभिर्निवेद्यान्तैः पूजा पञ्चोपचारिकी ।
सपर्य्यास्त्रिविधाः प्रोक्तास्तासामेकां समाचरेत् ॥१२३॥

विस्मापनीय माश्चर्य्यावहम् ॥११७॥
अत्रालिखितोऽपि वस्त्रादिदानफलभेदः पूर्व्ववत् तदर्पण-प्रकरणे लिखितोऽत्रापि तथैव ज्ञेयः, इत्याशयेन लिखति—वस्त्रेति ॥११८॥
'पूर्व्ववत् कुर्य्यात् शक्तो भगवदर्च्चनम्' इति सायं पूजायां लिखितं, तत्र शक्तौ पूर्व्वलिखितैः सर्व्वैरेवोपचारैरर्च्चनं कार्य्यम्, अशक्तौसंक्षेपेण कतिभिश्चिदेव कर्त्तव्यमित्याशयेनोपचाराणां वहुविधत्वं लिखति—उपचाराश्चेति । शक्तेरशक्तेश्च भेदेन, आदि-शब्दात् कालदेशश्रद्धादिभेदेन च विविधा मताः ॥११९॥
सार्घ्ये अर्घ्य-सहिते, अर्घ्यञ्चैकमित्यर्थः, एवं षोड़श ॥१२०-१२१॥
अर्घ्यादीनि पञ्च, गन्धादयश्च पञ्च— इत्येवं दश ॥१२२॥
त्रिविधा उपचाराणां षोड़शादिना भेदत्रयेण त्रिप्रकाराः ॥१२३॥

करते हैं । कङ्कतक (कौंगा) दान करने से शरीर रोमशून्य होता है एवं कूर्च प्रसाधन (माथे में लगाने योग्य बेंदी) सिन्दूर प्रभृति प्रदान करने से परम मङ्गल लाभ होता है । चमत्कारमय द्रव्यजात अल्प परिमाण में अर्पण करने पर भी अतिशय सुख भोग होता है । श्रीकृष्ण के उद्देश में वसन भूषणादि अर्पण करने से जो फल लाभ होता है इति पूर्व में उपचारार्पण प्रसङ्ग में उसका वर्णन हुआ है । श्रीभगवान् की पूजा के सम्बन्ध में विविध उपचार दृष्ट होते हैं, तान्त्रिक वैष्णववृन्द काल देश श्रद्धादि भेद से एवं स्वीय शक्ति अशक्ति के भेद से उसके वैषम्य की व्यवस्था का निर्णय कर गये हैं ॥११५-११९॥

अथ विविधोपचाराः

आगम में वर्णित है—आसन, स्वागत, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, मधुपर्क, आचमन, स्नान, वस्त्र, भूषण, सुगन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य एवं वन्दना-यह षोड़श उपचार पूजा में प्रयोग करे । अर्घ्य, पाद्य, आचमन, मधुपर्क, पुनराचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, एवं नैवेद्य-यह दश विधि उपचार हैं । गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य पर्य्यन्त उपचार को पञ्चोपचार कहते हैं । पूजाविधि है षोड़शोपचार, दशोपचार एवं पञ्चोपचार इनमें जिस किसी प्रकार से एक उपचार ग्रहण कर पूजा करनी चाहिये ॥१२०-१२३॥

क्वचिच्च —

आसनावाहनञ्चैव पाद्यार्घ्याचमनीयकम् । स्नानं वासो भूषणञ्च गन्धः पुष्पञ्च धूपकः ॥१२४

प्रदीपश्चैव नैवेद्यं पुष्पाञ्जलिरतःपरम् । प्रदक्षिणं नमस्कारो विसर्गश्चैव षोड़श ॥१२५॥

केचिच्चाहुश्चतुःषष्टिमुपचारान्समार्च्चने । तेष्वनेकप्रकारेषु प्रकारैकोऽत्र लिख्यते ॥१२६॥

सुखसुप्तस्य कृष्णस्य प्रातरादौ प्रबोधनम् । वेदघोषणवीणादिवाद्यैर्वन्दिस्तवैरपि ॥१२७॥

जयशब्दा नमस्कारा मङ्गलारात्रिकं ततः । आसनं दन्तकाष्ठञ्च पाद्यार्घ्याचमनान्यपि ॥१२८

ततश्च मधुपर्काढ्याचमनं पादुकार्पणम् । अङ्गमार्ज्जनमभ्यङ्गोद्वर्त्तने स्नपनं जलैः ॥१२९॥

क्षीरेण दध्ना हविषा मधुना सितया तथा । मन्त्रपूतैः पुनर्वार्भिरङ्गवासोऽथ वाससी ॥१३०॥

उपवीतं पुनश्चाचमनीयं चानुलेपनम् । भूषणं कुसुमं धूपो दीपो दृष्ट्यपसारणम् ॥१३१॥

नैवेद्यं मुखवासस्तु ताम्बूलं शयनोत्तमम् । केशप्रसाधनं दिव्यवस्त्राणि मुकुटं महत् ॥१३२॥

दिव्यगन्धानुलेपश्च कौस्तुभादिविभूषणम् । विचित्रदिव्यपुष्पाणि मङ्गलारात्रिकं ततः ॥१३३॥

षोड़शस्यैव मतान्तरं लिखति—आसनेति । पुष्पस्य पुष्पाञ्जलेश्चैक्येन षोड़श ॥१२४-१२५॥

अनेके प्रकारा भेदा येषां तेषु चतुःषष्ट्युपचारेषु मध्ये एकः प्रकारोऽत्र ग्रन्थे लिख्यते ॥१२६॥

प्रबोधनमित्यादिभिः प्रथमान्तपदैरुपचाराः । तत्रैकवचनान्तेनैकः, द्वन्द्वसमासे द्विवचनान्तेन द्वौ, बहुवचनान्तेन च बहवः । तृतीयान्तेपदैश्च प्राय उपचारस्य साधनं क्वचिच्च तस्य भेदोऽपि ज्ञेयः । मधुपर्केणाढ्यं सहितमाचमनमिति तयोर्द्वित्वेऽपि मधुपर्कानन्तरमाचमनस्यावश्यापेक्षत्वादैक्याभिप्रायेणैक एवोपचारः । अङ्गमार्ज्जनं पर्य्युषितानुलेपनादिरूप-श्रीगात्रमलोत्तारणम्, अभ्यङ्गस्तैलाभ्यञ्जनं, तैलमर्द्दनमिति वा पाठः । अभ्यङ्गो विशेषतः तैलादिना श्रीमस्तकाभ्यञ्जनम्, उद्वर्त्तनञ्च तैलाद्यपसारणं, जलैः सुगन्धपुष्पोदकादिभिः,

---

किसी किसी स्थान में आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नान, वसन, आभरण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, कुसुमाञ्जलि, प्रदक्षिण, नमस्कार एवं विसर्जन– इन षोड़शोपचार का व्यवहार दृष्ट होता है । यहाँ सप्तदश संख्या हैं, किन्तु षोड़श होना चाहिये, अतः पुष्प एवं पुष्पाञ्जलि को एक मानना आवश्यक है १२४-१२५॥

कतिपय व्यक्ति श्रीहरि की पूजा में चतुःषष्टि उपचार की व्यवस्था प्रदान करते हैं । यद्यपि वह विविध प्रकारक हैं । तन्मध्य में एक प्रकार उपचार का विषय इस ग्रन्थ में लिखित हो रहा है । (१) सुखसुप्त भगवान् श्रीहरि के पुरोभाग में प्रत्यूष में वेदगान, वीणावादन एवं स्तुतिपाठकगण के स्तव के द्वारा प्रबोधन ही प्रथमोपचार है । (२) जय शब्द (३) नमस्कार (४) मङ्गलारात्रिक (५) आसन (६) दन्तकाष्ठ (७) पाद्य (८) अर्घ्य (९) आचमन (१०) मधुपर्क सह आचमन (११) पादुका सम्प्रदान (१२) अनुलेपनादि द्वारा शरीर मार्ज्जन (१३) अभ्यङ्ग (१४) तैलापसारण (१५) सुगन्धि पुष्पोदकादि स्नान (१६) सुगन्धि पुष्पोदक स्नान (१७) दुग्ध स्नान (१८) घृत स्नान (१९) मधु स्नान (२०) शर्करा स्नान (२१) समन्त्र जल स्नान (२२) अङ्गमार्जनार्थ वस्त्र (२३) सोत्तरीय परिधेय वसन (२४) यज्ञोपवीत (२५) पुनराचमन (२६) अनुलेपन (२७) अलङ्कार (२८) पुष्प (२९) धूप (३०) दीप (३१) दुष्ट लोक की दृष्टि का अपसारण (३२) नैवेद्य (३३) मुखवास (३४) ताम्बूल (३५) सुन्दरशय्या (३६) केशप्रसाधन (३७) सुन्दर वस्त्र (३८) उत्तम मुकुट (३९) दिव्य गन्धानुलेपन (४०) कौस्तुभादि विभूषण (४१) विचित्र दिव्य कुसुमसमूह (४२) मङ्गल-

आदर्शः सुखयानेन मण्डपागमनोत्सवः। सिंहासनोपवेशश्च पाद्याद्यैः पुनरर्च्चनम् ॥१३४॥
पुनर्धूपाद्यर्पणेन प्राग्वन्नैवेद्यमुत्तमम् । ततश्च दिव्यताम्बूल-महानीराजनं पुनः ॥१३५॥
चामरव्यजनच्छत्रं गीतं वाद्यञ्च नर्त्तनम् । प्रदक्षिणं नमस्कारः स्तुतिः श्रीचरणाब्जयो ॥१३६॥
तयोश्च स्थापनं मूर्ध्नि तीर्थनिर्म्माल्यधारणम् । उच्छिष्टभोजनं पादसेवोद्देशोपवेशनम् ॥१३७॥
नक्तं शय्याविनिर्म्माण दिव्यैर्विविधसाधनैः । हस्तप्रदानं शयनस्थानागम-महोत्सवः ॥१३८॥
शय्योपवेशनं श्रीमत्पादक्षालनपूर्व्वकम् । गन्धप्रसून-ताम्बूलार्पण-नीराजनोत्सवः ॥१३९॥
शेषपर्य्यङ्कशयन-पादसंवाहनादिकम् । क्रमेणैते चतुःषष्टिरुपचाराः प्रकीर्त्तिताः ॥१४०॥
सदाचारानुसारेण यद्यदाचर्य्यते स्वयम् । नित्यकर्म्मादिकं तत्तत् श्रीकृष्णस्यापि कारयेत् ॥१४१

स्नानस्यैकविधत्वेऽपि जलभेदेन क्षीरादिभेदेन च सप्तधा सप्तोपचारा इत्येव विशिष्ट-सम्प्रदायाचारोऽनुसर्त्तव्यः। अङ्गवासः श्रीमदङ्गजलमार्ज्जनार्थं वस्त्रं, वाससी परिधानोत्तरीये, दृष्टैः दुष्टलोकावलोकस्य अपसारणं, सर्षपादिभिर्निमञ्छनेनोत्तारणं, शयनोत्तमं दिव्यशय्या, महाराजोपचारान् लिखति— दिव्यवस्त्राणीत्यादिना आदर्श इत्यन्तेन। दिव्यानि विचित्राणि कञ्चुकोष्णीषादिरूपाणि बहूनि वस्त्राणि, मण्डपे बहिःप्रासादे आगमनमेवोत्सवः, विशेषतोऽत्रोत्सवप्रयोगेण गीतवाद्यादिपूर्व्वकता सूचिता। पाद्यादीनां पृथक्त्वेन पुनर्युगपदर्पणादैक्येनैवैक एवोपचारः, क्वचिच्च नित्यसाहचर्य्याभावात् पृथगुपचारनिर्द्देश इति दिक् ॥१२७-१३६॥

पादयोः श्रीचरणाब्जयोः या सेवा संवाहनादिरूपा तदुद्देशेनोपवेशनमुपवेशः, विविधैः सुगन्धिचूर्णादि-सुवासितकोमलवस्त्रान्तःपुष्पविरचनादिभिः साधनैः, हस्तप्रदानं शयनस्थाने शुभागमनार्थं हस्तयोजनम्, शय्यायामुपवेशनं, श्रीमत्पादयोः क्षालनं पूर्व्वमादौ यस्य तादृशं, गन्धाद्यर्पणेन नीराजनरूपोत्सवः ॥१३७-१३९

तत्र तत्रानुक्तमप्युपचारादिकं शिष्टाचारदृष्ट्या लिखति— सदाचारेति द्वाभ्याम्। यद्यन्नित्यकर्म्म, आदि-शब्दाज्जन्मादिकृत्यञ्च, तथा तत्र तत्र काल-देशादिभेदेन यद्यथा स्वयं क्रियते, तच्च सर्व्वम् ॥१४१॥

आरति (४३) दर्पण (४४) सुन्दर यान में आरोहण कराकर मण्डप में आगमनोत्सव (४५) सिंहासनोपरि उपवेशन (४६) पाद्य प्रभृति के द्वारा पुनर्वार पुजा (४७) पुनर्वार धूप प्रदान एवं पूर्ववत् नैवेद्यादि अर्पण (४८) पश्चात् पुनर्वार ताम्बूल निवेदन कर महानीराजन (४९) चामर व्यजन (५०) गीत (५१) वाद्य (५२) नृत्य (५३) प्रदक्षिण (५४) नमस्कार (५५) श्रीपादपद्मयुगल के समीप में स्तुति (५६) श्रीकृष्ण के श्रीचरण-कमल युगल को मस्तक में धारण (५७) शिरोभाग में निर्माल्य धारण (५८) उच्छिष्ट ग्रहण (५९) पाद-सेवनोद्देश में उपवेशन (६०) निशा काल में सुन्दर सुगन्ध चूर्णादि सुवासित कोमल वस्त्रान्तर में कुसुम प्रकीर्ण करके शय्या रचना (६१) शय्या स्थान में शुभ गमन के निमित्त हस्त संयोजन (६२) शय्या स्थान में आगमनार्थ महोत्सव (६३) श्रीभगवान् के चरण प्रक्षालन पूर्वक शय्या में उपवेशन कराना, गन्ध पुष्प एवं ताम्बूलादि अर्पण पूर्वक नीराजन (६४) पर्य्यङ्क में शयन कराना एवं पाद सम्वाहनादि क्रमानुसार यह चौंसठ उपचार का विषय वर्णित हुआ ॥१२९-१४०॥

इस ग्रन्थ में जिस जिस उपचार का नामोल्लेख नहीं हुआ है, शिष्टाचारानुसार उसका पालन करना चाहिये। वास्तविक भगवान् श्रीकृष्ण के जो सब नित्य कर्म– यथा स्नान के समय प्रथम केश सम्हालना, स्नान के पश्चात् धौत वस्त्र पहराना, भोजन के समय, पीठादि समर्पण, जलगण्डूषार्पण, भोजन के पश्चात् ताम्बूल प्रदानादि, एवं जन्मदिन कृत्य, तिलस्नान, नवान्न प्राशनादि शिष्टजन, स्वयं ही करते अथवा कराते हैं। सदाचार के वशवर्त्ती होकर स्वयं उनका पालन करना उचित है। यहाँ पर जिन उपचारों का उल्लेख

अतोऽत्रालिखितं यद्यदुपचारादिकं परम् । सर्व्वं तत्तच्च जानीयाल्लोकरीत्यनुसारतः ।।१४२।।
उक्तानाञ्चोपचाराणामभावे भगवान् सदा । भक्तेनाच्चर्यो यथालब्धैस्तैरन्तर्भावितैरपि ।।१४३

अथालब्ध-समाधानम्

तन्त्रे—

उपचारोक्त-वस्तूनामुपसंग्रहणे विधिः । द्रव्याणामप्यभावे तु पुष्पाक्षतयवैः क्रियाः ।।१४४।।
अर्च्चोपचारवस्तूनामभावे समुपस्थिते । निर्म्मलेनोदकेनैव द्रव्यसम्पूर्णता भवेत् ।।१४५।।
उपचारेषु द्रव्येषु यत्किञ्चिद्दुष्करं बुधः । तत् सर्व्वं मनसा बुद्धया पुष्पक्षेपेण कल्पयेत् ।।१४६।।
एतेषु चोपचारेषु वित्तशाठ्यविवर्ज्जितम् । यदसम्पन्नमेतेषां मनसा तु प्रकल्पयेत् ।।१४७।।

अतोऽस्माद्धेतोः परमन्यदुपचारादिम्, अत्र ग्रन्थे यद्यल्लिखितं नास्ति, तच्च स्नानात् पूर्व्वं केशप्रसाधनं, स्नानार्थञ्च धौतवस्त्रपरिधापनं, भोजने चादौ पीठाद्यर्पणं, भोजनान्ते च जलगण्डूषार्पणं, सुगन्धि-ताम्बूल-मित्येवमादिकं नित्यकर्म्म, तथा जन्मदिने तिलस्नानादि, तथा नवान्नादिकाले नवान्नप्राशनादिकं चेत्येवमादिकं मासादिकृत्यं जानीयात् । तच्च लोकस्य रीतेर्व्यवहारक्रमस्यानुसारतः । शीतकाले उष्णद्रव्यं, शीतनिवारणार्थं तद्योग्यवस्त्रं ज्वलदङ्गारस्थाल्यादिकमुष्णकाले च शीतलं द्रव्यं हिमादिकञ्च समर्पयेत् । भोजनानन्तरं क्षणं सुखविश्रामार्थं शय्याविस्तारणादि-विविक्ततापादनं तत्रापि च शीतकालेऽल्पकालं, ग्रीष्मे च बहुकाल-मुत्थापनानन्तरञ्च पाद्याचमनीयादिकं किञ्चिद्भक्ष्यपेयादिकञ्चार्प्यमित्यादि-शिष्टाचाराद्बोद्धव्यमित्यर्थः ।।१४२

ननु पञ्चस्वप्युपचारेषु यदि कश्चिन्न सिध्येत्तर्हि किं कार्य्यम् ? इत्यपेक्षायां लिखति—उक्तानामिति, शास्त्रप्रतिपादितानाम्, तैरुपचारैः यथालब्धैः, येऽनायासतः प्राप्तास्तैर्ये चालब्धास्तैरन्तर्भावितैर्मानसिकै-रित्यर्थः ।।१४३।

उपसंग्रहणे समाधाने विधिरयं, तमेवाह—द्रव्याणामिति । पुष्पादिभिरपि क्रियाः पूजाकर्म्माणि भवन्ति, तत्तद्द्रव्यस्थाने पुष्पादिनैवार्च्चयेदित्यर्थः ।।१४४।।

पुष्पाद्यभावे च जलेनैव सिध्यन्तीत्याह – अर्च्चेति ।।१४५।।

जलाभावे च तत्तद्ध्यानेनैव सिध्यन्तीत्याह— उपचारेष्विति । मनसा या बुद्धिर्भावना तया; यद्वा, बुद्धया यत् पुष्पं, तस्य मनसैव प्रक्षेपणं कल्पयेदित्यर्थः ।।१४६।।

किन्तु तत्र वित्तशाठ्यं न कार्य्यमित्याह— एतेष्विति । वित्तशाठ्यं वित्ते सति गौणोपचारेऽकिञ्चनवत् प्रवृत्तिस्तद्विवर्ज्जितं यथा स्यात्तथा प्रकल्पयेत् । विवर्ज्जित इति प्रथमान्तो वा पाठः ।।१४७।।

नहीं हुआ है, लोक रीति के अनुसार उन सबका अनुष्ठान करना चाहिये । अर्थात् शीतकाल में उष्ण द्रव्य एवं ग्रीष्मकाल में शीतल द्रव्यार्पण करना चाहिये । यदि उक्त उपचार समूह के मध्य में कभी कोई वस्तु न मिले तो भक्तगण, यथा लब्ध एवं मानस कल्पित द्रव्यसमूह के द्वारा भगवान् की पूजा कर सकते हैं ।।१४१-१४३।।

अथालब्धे-समाधानम्

तन्त्र में लिखित है – उपचार द्रव्य संग्रह की विधि इस प्रकार है—द्रव्यसमूह का अभाव होने पर पुष्प आतप तण्डुल एवं यवादि द्वारा सब कार्य्य सम्पन्न कर सकता है । पूजोपहारार्थ द्रव्य समूह का अभाव होने पर विशुद्ध जल संयोग से सब वस्तु की पूर्णता होती है । उपचार द्रव्य समूह के मध्य में जो द्रव्य नितान्त दुर्ल्लभ है, पण्डितजन मानसिक चिन्ता करके पुष्प निक्षेपकर उस द्रव्य की कल्पना करें । वित्तशाठ्य अर्थात् कृपणता को छोड़कर पूर्वोक्त उपचार के मध्य में जो असम्पूर्ण हो, उसकी कल्पना मन मन में कर लेनी चाहिये ।।१४४-१४७।।

अगस्त्यसंहितायां श्रीतुलसी-माहात्म्ये—

यद्यन्न्यूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम् । तुलसीदलमात्रेण युक्तं तत् परिपूर्य्यते ॥१४८॥

एकादशस्कन्धे च श्रीभगवदुद्धव-संवादे (२६।१५)—

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः । भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥१४६॥

ततोऽनुज्ञां प्रभोः प्रार्थ्य दण्डवत्तं प्रणम्य च ।

सायं भुक्त्वा यथान्यायं सुखं स्वप्यात् प्रभुं स्मरन् ॥१५०॥

अथ शयनविधिः

आगमे—

निर्गुणो निष्कलश्चैव विश्वमूर्त्तिधरोऽव्ययः । अनाद्यन्ते सदानन्ते फणामणि-विशोभिते ।

क्षीराब्धिमध्ये यः शेते स मां रक्षतु माधवः ॥१५१॥

सवाह्याभ्यन्यरं देहमापादतलमस्तकम् । सर्व्वात्मा सर्व्वशक्तिश्च पातु मां गरुड़ध्वजः ॥१५२॥

इति रक्षां पुरस्कृत्य स्वपेद्विष्णुमनुस्मरन् ॥१५३॥

किञ्चान्यत्र—

अद्भिः शौचविधिं विधाय चरणौ प्रक्षाल्य चोपस्पृशे-

द्द्विः संस्मृत्य जगत्पतिं व्रजपतिं श्रीवल्लवीवल्लभम् ।

राधायाः सुचिरं पिवन्तममृतासारायमाणां गिरं

वस्त्रेणाङ्घ्रियुगं प्रमृज्य शयनन्त्वापाद्य सद्यः स्वपेत् ॥१५४॥

युक्तं सम्बद्धं सत् ॥१४८॥

प्रसिद्धैः प्रकर्षेण सिद्धैः सुशोभनैरित्यर्थः । यद्वा, प्रख्यातैरेव गन्धचन्दन-पुष्पादिभिः; अतस्तत्तद्विशेष-निर्द्देशेनालमित्यर्थः । अमायिनः निष्कामस्य भक्तस्य चेति सम्बन्धः; यद्वा, शाठ्यहीनस्य जनस्येति तत्र वित्तशाठ्यमवश्यं वर्ज्जयेदित्यर्थः । भक्तस्य तु यथालब्धैः यथोपपन्नैः, यत्तु चन्दनादि सर्व्वथा न लभ्यते, तस्य हृदि भावेन भावनया ॥१४६॥

द्विरुपस्पृशेत् वारद्वयमाचमनं कुर्य्यात्, अमृतस्य सुधायाः आसारः धारासम्पातः तद्वदाचरन्तीं गिरं

अगस्त्य संहिता के तुलसी माहात्म्य में लिखित है—हे रामचन्द्र ! आराधना साधना में जिस सामग्री की न्यूनता हो, केवल तुलसीदल मात्र से संयुक्त होकर उसका अभावपूर्ण हो सकता है ॥१४८॥

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में श्रीभगवान् एवं उद्धव के कथोपकथन से प्रकाशित है—यदि कोई उपचार द्रव्य का अभाव हो तो, निष्काम भक्त, यथा लब्ध द्रव्य एवं हृदयस्थ भावयुक्त मनोमध्य में अलब्धद्रव्य की भावना करके प्रतिमादि में मेरी पूजा करने पर वह पूजा सम्पूर्ण होती है । अनन्तर श्रीप्रभु के निकट अनुमति प्रार्थना कर दण्डवत् प्रणामपूर्वक सायंकाल में यथायोग्य भोजन के पश्चात् उनका स्मरण करते करते सुख से शयन करे ॥१४६-१५०॥

अथ शयनविधिः

आगम में लिखित है—जो निर्गुण, निष्फल, अव्यय, विश्वमूर्त्तिधारी एवं क्षीरसिन्धु में फणि फणामणि विशोभित आद्यन्त रहित अनन्त शय्या में सदा शयनकारी हैं, वह माधव मेरी रक्षा करें । वह सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान्, गरुड़ध्वज भगवान् मेरे वाह्याभ्यन्तर के सहित आपाद तल मस्तक युक्त देह की रक्षा करें । इस प्रकार प्रार्थना करके श्रीविष्णु स्मरण पूर्वक शयन करे ॥१५१-१५३॥

अन्यत्र और भी वर्णित है—जल द्वारा शौचविधि समापन करके, पदद्वय प्रक्षालन एवं आचमन पूर्वक,

किञ्च—

रामं स्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् । शयने यः स्मरेन्नित्यं दुःस्वप्नं तस्य नश्यति ॥१५५॥

अपि च स्कान्द-पाद्मयोः—

ऋतुकालाभिगामी यः स्वदारनिरतश्च यः । स सदा ब्रह्मचारीह विज्ञेयः सन् गृहाश्रमी ॥१५६

ऋतुः षोड़श यामिन्यश्चतस्रस्तासु गर्हिताः ।
पुत्रास्तास्वपि युग्मास्तु अयुग्माः कन्यकाः स्मृताः ॥१५७॥

त्यक्त्वा चन्द्रमसं दुष्टं मघां मूलां विहाय च । शुचिः सन्निविशेत् पत्नीं पुन्नामर्क्षे विशेषतः ।
शुचिः पुत्रं प्रसूयेत पुरुषार्थप्रसाधकम् ॥१५८॥

विष्णुपुराणे और्व्वसगर-संवादे—

कृतपादादि-शौचश्च भुक्त्वा सायं ततो गृही । गच्छेच्छय्यामस्फुटितामेकदारुमयीं नृप ॥१५९॥

नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च ।
न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ॥१६०॥

सुचिरं पिवन्तं संस्मृत्य; शयनं शय्याम् ॥१५४॥

इह गृहाश्रमेऽपि स एव सन् उत्तमः गृहाश्रमी च गृही विज्ञेयः ॥१५६॥

तासु अगर्हितास्वपि यामिनीषु मध्ये युग्माः ऋतुदर्शनात् परा षष्ठयाद्या यामिन्यः; पुत्राः पुत्रोत्पादिका इत्यर्थः ॥१५७॥

पुन्नामर्क्ष नक्षत्रदशकम्; तदुक्तं बार्हस्पत्ये—'सर्पाच्चतुष्कं रौद्रञ्च याम्यं त्वाष्ट्रत्रिकं तथा । वैश्वैन्द्रवासवं पौष्णं स्त्रीलिङ्गाः समुदाहृताः ॥ सौम्य-वारुण-मूलानि नपुंसकदिनान्यपि । शेषाः पुंलिङ्गतां प्राप्तास्ताराः सुरशचीपते ॥' इति । अतोऽश्विनी-कृत्तिका-रोहिणी-पुनर्व्वसुपुष्या-हस्तानुराधा-श्रवणा-पूर्व्वभाद्रोत्तरपदानीति दश ॥१५८॥ शय्यां खट्टाम्, अस्फुटितामविदीर्णाम् ॥१६०॥

जगत्पति श्रीवल्लवीवल्लभ श्रीकृष्ण श्रीराधा के अमृतधारावर्षी वाक्यामृत पान कर रहे हैं। इस प्रकार स्मरण कर वस्त्र द्वारा तदीय चरणकमल मार्जनपूर्वक तत्क्षणात् शय्या पर जाकर शयन करे ॥१५४॥

शास्त्र में और भी वर्णित है—जो मनुष्य, शयनकाल में प्रत्यह श्रीरामचन्द्र, कार्त्तिकेय, हनुमान्, विनतानन्दन एवं वृकोदर का स्मरण करते हैं, उनके सब दुःस्वप्न विनष्ट होते हैं ॥५५॥

स्कन्द एवं पद्मपुराण में वर्णित है—जो मानव, निज भार्य्या में अनुरागी अर्थात् ऋतुकाल में भार्य्याभिगमन करते हैं, उन गृहस्थाश्रमी को सर्वदा ब्रह्मचारी जानना चाहिये। स्त्रियों का ऋतुकाल षोड़शरात्रि पर्य्यन्त है, तन्मध्य में प्रथम चार रात्रि वर्जनीय है, अत्यन्त निन्दनीय है, एतद्भिन्न युग्मरात्रि पुत्रोत्पादिका एवं अयुग्मरात्रि कन्या उत्पादिका होती है। अशुद्ध चन्द्र, मघा, मूलानक्षत्र को परित्याग पूर्वक पुरुषपरिचायक दश नक्षत्रों के आविर्भाव में अर्थात् अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्या, हस्ता, अनुराधा, श्रवणा, पूर्व भाद्रपद एवं उत्तर भाद्रपद नक्षत्रों में पवित्र होकर भार्य्याभिगमन करने से पुरुषार्थ प्रसाधक पुत्र प्रसव होता है ॥१५६-१५८॥

विष्णुपुराण के और्व-सगर-संवाद में वर्णित है—हे नृप ! गृहस्थव्यक्ति पादादि शौचक्रिया सम्पन्न करके सायंकाल में भोजन सम्पादन पूर्वक अभग्ना दारुमयी खट्वा में शयन करे, जो शय्या सङ्कीर्ण, भग्न, असम मलिन, छोटो, आस्तरणहीन एवं जन्तुमय है, अर्थात् खटमल आदि से युक्त है, ऐसी शय्या पर शयन न करे ॥१५९-१६०॥

प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवा नृप । सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतन्तु रोगदम् ॥१६१॥
ऋतावुपगमः शस्तः स्वपत्न्यामवनीपते । पुन्नामर्क्षे शुभे काले ज्येष्ठयुग्मासु रात्रिषु ॥१६२॥
नास्नातान्तु स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्वलाम् ।
नानिष्टां न प्रकुपितां नाप्रशस्तां न गुर्व्विणीम् ॥१६३॥
नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् ।
क्षुत्क्षामामतिभुक्तां वा स्वयञ्चैभिर्गुणैर्युतः ॥१६४॥
स्नातः स्रग्गन्धधृक्प्रीतो नाध्यातः क्षुधितोऽपि वा ।
सकामः सानुरागश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् ॥१६५॥
चतुर्द्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा । पर्व्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥१६६॥
तैल-स्त्री-मांस-सम्भोगी पर्व्वस्वेतेषु वै पुमान् । विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं नृप ॥१६७॥
नान्ययोनावयोनौ वा नोपयुक्तौषधस्तथा । देवद्विजगुरूणाञ्च व्यवायी नाश्रमी भवेत् ॥१६८॥
चैत्यचत्वर-तीर्थेषु नैव गोष्ठे चतुष्पथे । नैव श्मशानोपवने सलिलेषु महीपते ॥१६९॥
प्रोक्तपर्व्वस्वशेषेषु नैव भूपाल सन्ध्ययोः । गच्छेद्व्यवायं मतिमान् न मूत्रोच्चारपीड़ितः ॥१७०॥

ऋतुदर्शनात् परासु षष्ठ्याद्यासु युग्मासु रात्रिषु, तत्रापि ज्येष्ठासु उत्तरोत्तर शुभासु ॥१६२॥
अस्नातां चण्डालादिस्पर्शेऽप्यकृतस्नानां, रजस्वलां चतुर्थरात्रि-प्रभृत्यनुपरतरजसम्, अनिष्टां सद्योनिविष्टां, अप्रशस्तां परिवादादियुताम् ॥१६३॥
अदक्षिणामननुकूलाम् ॥१६४॥
आध्यातः अतितृप्तः, सकामः रिरंसुः, सानुरागः स्त्रियां प्रीतिमान्, व्यवायं सुरतम् ॥१६५॥
अन्ययोनौ गवाश्वादियोनौ, देव-द्विज-गुरूणामाश्रमी, तेषां गृहे स्थितः ॥१६८॥

हे नरपते ! पुरुष के पक्ष में सर्वदा पूर्व अथवा दक्षिणादिक में मस्तक स्थापन कर शयन करना ही विधि है । एतद्व्यतीत विपरीत दिक् में मस्तक रखकर शयन करने से रोग उत्पन्न होता है ॥१६१॥

हे राजन् ! ऋतुकाल में, पुरुष नक्षत्र में, पवित्र काल में, छः रात्रि पर्य्यन्त उत्तरोत्तर युग्म रात्रि में निज पत्नी से सहवास करना प्रशस्त है । जिस स्त्री ने ऋतु स्नान नहीं किया है, अर्थात् अस्नाता, पीड़िता, रजस्वला, सद्यप्रविष्टा, अनिष्टावती, क्रुद्धा, परिवादयुक्ता, निन्दनीया एवं आसन्नसत्त्वा (गर्भिणी) है, इस प्रकार स्त्री में उपगत होना उचित नहीं है ॥१६२-१६३॥

जो स्त्री प्रतिकूला, अन्य पुरुषाकाङ्क्षिणी, अनिच्छावती, परपत्नी, क्षुधाक्षीणा एवं अतिभोजनक्लिष्टा है, उससे एवं स्वयं इन सब दोषों से युक्त होने पर भी रमण न करे । पुरुष के पक्ष में स्नात, माल्यगन्धधारी प्रीत, निश्चिन्त, भोजन तृप्त, सकाम एवं सानुरागावस्था में स्त्रीसहवास करना चाहिये ॥१६४-१६५॥

हे राजेन्द्र ! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा एवं रवि संक्रान्ति पर्व में जो पुरुष स्त्री, तैल, एवं मांस भोग में प्रवृत्त होता है, उसका निवास विष्ठा मूत्र भोजन नामक नरक में होता है, जो व्यक्ति, गो, अश्व, इत्यादि जन्तु की योनि में अथवा अन्य योनि में उपगत होता है, वीर्य्यधारक औषधि सेवन न करके रतिक्रिया में रत होता है, देवता, द्विज एवं गुरु गृह में निवास कर स्त्री सहवास करता है, वह आश्रमी होने का योग्य नहीं है ॥१६६-१६८॥

हे महीपाल राजन् ! पण्डित व्यक्ति, ग्रामस्थ पूज्यवृक्ष, यागस्थान, तीर्थ, गो प्रचार स्थान, चतुष्पथ,

परदारान् न गच्छेत मनसापि कदाचन।
किमु वाचास्थिबन्धोऽपि नास्ति तेषु व्यवायिनाम् ॥१७१॥
मृतो नरकमभ्येति हीयते चात्र चायुषः। परदाररतिः पुंसामुभयत्रापि भीतिदा ॥१७२॥
इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु बुधो व्रजेत्। यथोक्त-दोषहीनेषु सकामेष्वनृतावपि ॥१७३॥इति।
तेषां भक्त्युपयोगित्वं न स्याद्यद्यपि कर्म्मणाम्। तथापि कृत उल्लेखो गृहिण्वावश्यकं ततः। १७४
इत्थं हि प्रातरुत्थानात् प्रत्यहं शयनावधि।
श्रीकृष्णं पूजयन् सिद्धसर्व्वार्थोऽस्य प्रियो भवेत् ॥१७५॥

अथ श्रीभगवदर्च्चन-माहात्म्यम्

श्रीकूर्म्मपुराणे—
न विष्ण्वाराधनात् पुण्यं विद्यते कर्म्म वैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम् ॥१७६॥

तत्रैव भृग्वादीन् प्रति साक्षात् श्रीभगवदुक्तौ—
येऽर्च्चयिष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः।
विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत्पदम् ॥१७७॥

परदारेषु व्यवायिनामस्थिबन्धोऽपि नास्ति, केवलमनस्थिकृमिकीटयोनिषु परिवर्त्तत इत्यर्थः ॥१७१॥

सिद्धाः सर्व्वे अर्थाः पुरुषार्था यस्य सः, अस्य श्रीकृष्णस्य प्रियश्च ॥१७५॥

विष्णोराराधनादन्यत् वैदिकं कर्म्म पुण्यं नास्ति, विष्ण्वाराधनमेव पुण्यमित्यर्थः। अनादि-मध्यान्तम-परिच्छिन्नमित्यर्थः। अनेन तदाराधनपुण्यस्याप्यपरिच्छिन्नताभिप्रेता। अतः परिच्छिन्न-स्वर्गादिफलक-वैदिक-यज्ञादिकर्म्मतः श्रैष्ठ्यं युक्तमेवेति भावः ॥१७६॥

वेददृष्टेन सदाचारानुसारेणेत्यर्थः; यद्वा, अकारप्रश्लेषतः अवेद-दृष्टेन स्वच्छन्दकृतेनापीत्यर्थः; तत् अनिर्वचनीयं श्रीवैकुण्ठाख्यम् ॥१७७॥

श्मशान, उपवन, जलमध्य में, पञ्च पर्व में, उभय सन्ध्या में अथवा मल-मूत्र द्वारा पीड़ितावस्था में स्त्री सहवास न करे। परदाराभिगमन की बात तो अलग है, उसकी कभी मन में भी चिन्ता न करे। जो व्यक्ति परस्त्री गमन में प्रवृत्त होता है, वह अस्थिहीन कृमिकीट योनि में भ्रमण करता है। जो व्यक्ति, परस्त्रीरत है, मृत्यु के पश्चात् उसका वास नरक में होता है एवं इस लोक में आयुःक्षय होता है। परदारानुराग दोनों लोक में ही भीतिकर है। बुध-व्यक्ति, यह विचारकर ऋतुमती निज पत्नी में उपगत होते हैं। यथोक्त दोषरहित सकाम काल में, ऋतुभिन्न समय में भी पत्नी से अनुरुद्ध होने पर सहवाह व्यवस्था निर्दिष्ट है॥

यद्यपि स्त्री सम्भोग कार्य्यानुष्ठान, भक्ति के उपयोगी नहीं है, तथापि वैष्णव गृही का प्रयोजन होने के कारण इस स्थान में उक्त विषय का उल्लेख हुआ ॥१६९-१७४॥

तात्पर्य्य यह है कि—जो मानव, प्रातःकाल से आरम्भ कर शयन पर्य्यन्त प्रत्यह श्रीकृष्ण की पूजा में प्रवृत्त होते हैं, उनको सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है, एवं वह भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय होते हैं ॥१७५॥

अथ श्रीभगवदर्च्चन-माहात्म्यम्

श्रीकूर्म्मपुराण में वर्णित है—भगवान् विष्णु की आराधना की अपेक्षा अन्य पुण्यजनक अनुष्ठान नहीं है। अतएव आद्यन्त विहीन श्रीहरि की आराधना नित्य करे ॥१७६॥

उक्त पुराण में भृगुप्रभृति के प्रति स्वयं भगवान् ने कहा है—हे द्विजगण! कलिकाल में जो मनुष्य वेद

विष्णुरहस्ये—

श्रीविष्णोरर्च्चनं ये तु प्रकुर्व्वन्ति नरा भुवि ।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम् ॥१७८॥ इति ।

तत्रैव श्रीभगवदुक्तौ—

न मे ध्यानरताः सम्यग्योगिनः परितुष्टये । तथा भवन्ति देवर्षे क्रियायोगरता यथा ॥१७९॥
क्रियायोगो हि मेऽभीष्टः परयोगात् स्वनुष्ठितात् । तुष्टिर्मे संभवेत् पुंभिर्भक्तिमद्भिरमत्सरैः ॥१८०
येऽर्च्चयन्ति नरा नित्यं क्रियायोगरताः स्वयम् ।
ध्यायन्ति ये च मां नित्यं तेषां श्रेष्ठाः क्रिया मताः ॥१८१॥
क्रियाहीनस्य देवर्षे तथा ध्यानं न मुक्तिदम् । न तथा मां विदुर्विप्रा ध्यानिनस्तत्त्वतो विना।
क्रियायोगरताः सम्यग्लभन्ते मां समाधिना ॥१८२॥
यथा हि कामदं नृणां मम तुष्टिकरं परम् । भक्तियोगं महापुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥१८३॥
संवत्सरेण यत् पुण्यं लभन्ते ध्यानिनो मम । प्राप्यते तदिहैकाहात् क्रियायोगपरैर्नरैः ॥१८४।

मे मम परितुष्टये न भवन्ति, क्रिया पूजा परिचर्य्यादिः, तद्रूपो योगो भक्तियोग इत्यर्थः, तद्रताः ॥१७९॥

स्वनुष्ठितात् सुष्ठु विहितादपि परयोगात्—परो भक्तियोगादन्ययोगः ध्यानधारणादिरूपस्तस्मात् मे ममाभीष्टः प्रियतमः ॥१८०॥

तत्त्वतः क्रियायुक्तयोगान् विना तदाश्रयेणैव जानन्तीत्यर्थः । क्रियायोगरतु स्वतन्त्र एवेत्याशयेनाह—क्रियेति । समाधिना चित्तस्थैर्य्येण क्रियायोगेन सुखं चित्तस्थैर्य्य स्यादतो मां सम्यग्लभन्त इत्यर्थः । तत्त्वत इति पाठे तत्त्वज्ञानं विनापि मां सम्यग्लभन्ते । अन्यत् समानम् ॥१८२॥

यथा यथावत्, शुभं स्वत एव परमफलरूपञ्च जानीहीति शेषः । कर्म्म भगवत्परिचर्य्यादि, फलं स्वर्गादि,

---

विहित विधानानुसार नित्य भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं, उनको श्रीविष्णुधाम प्राप्त होता है ।।१७७।।

विष्णुरहस्य में वर्णित है—जो सब मनुष्य इस जगत् में श्रीविष्णु सेवा में रत हैं, वे सब भगवान् के नित्य आनन्दमय परमधाम में गमन करते हैं ।।१७८।।

इसी ग्रन्थ में श्रीभगवान् ने कहा है—हे देवर्ष ! भगवत्पूजा-सेवादि रूप भक्तियोग में रत मनुष्य मुझको जिस प्रकार सन्तुष्ट करते हैं, ज्ञानयोगी पुरुष उस प्रकार सन्तोष साधन में समर्थ नहीं हैं । यद्यपि उत्तम रूप से सम्पादित होने पर ध्यानधारणा प्रभृति योग को उत्कृष्ट कहा जा सकता है, तथापि सर्वापेक्षा क्रिया योग ही मुझको प्रिय है । तज्जन्य, भक्तिमान् पुरुषगण, निर्मत्सर होकर मेरी आराधना करने से मैं सन्तुष्ट होता हूँ ।।१७९-१८०।।

जो सब मनुष्य क्रिया योगापर नाम भक्ति-योग में रत होकर स्वयं मेरी पूजा में प्रवृत्त होते हैं, एवं नित्य मेरे ध्यान में तत्पर होते हैं, मैं उनके क्रियायोग को श्रेष्ठ मानता हूँ । हे देवर्ष ! क्रियायोगयुक्त मानव स्थिर चित्त से समाधि द्वारा जिस प्रकार मुझको सम्यक् आयत्त कर सकते हैं, क्रियारहित मनुष्यों के तत्त्व-ज्ञान से उस प्रकार मुक्ति प्राप्त नहीं होती । विप्रगण भी, क्रियायोग शून्य होकर मेरी पूजा करने पर मेरे स्वरूप की उपलब्धि नहीं कर सकते हैं ।।१८१-१८२।।

भक्तियोग जिस प्रकार मनुष्य को अभीष्ट दायक है, एवं मेरा तुष्टिजनक है वैसा और कुछ दिखाई नहीं देता। वस्तुतः भक्तियोग ही महा पुण्य स्वरूप, भुक्तिमुक्ति विधायक, एवं परम फलप्रद है । और विशेष

आदिपुराणे —

न कर्म्मसदृशं ध्यानं न कर्म्मसदृशं फलम् । न कर्म्मसदृशस्त्यागो न कर्म्मसदृशन्तपः ।
न कर्म्मसदृशं पुण्यं न कर्म्मसदृशी गतिः ॥१८५॥

नारदीये—

भक्तिग्राह्ये हृषीकेशो न धनैर्धरणीसुराः । भक्त्या संपूजितो विष्णुः प्रददाति समीहितम् ॥१८६
जलेनापि जगन्नाथः पूजितः क्लेशहा हरिः । परितोषं व्रजत्याशु तृषार्त्तः सुजलैर्यथा ॥१८७॥

हरिभक्तिसुधोदये —

कृतापि दम्भहास्यार्थे सेवा तारयते जनान् । विफला नान्यकर्म्मेव कृपालुः को न्वतःपरः ॥१८८

ब्रह्मवैवर्त्ते —

स समाराधितो देवो मुक्तिकृत् स्यात् यथा तथा ।
अनिच्छयापि हुतभुक् संस्पृष्टो दहति द्विज ॥१८९॥

धनवान् पुत्रवान् भोगी यशस्वी भयवर्ज्जितः । मेधावी मतिमान् प्राज्ञो भवत्याराधनाद्धरेः ॥१९०

गतिराश्रयः ॥१८३-१८५॥
समीहितं वाञ्छितम् ॥१८६॥
विफला वैगुण्येऽपि न फलहीना ॥१८८॥
धीर्धारणावती मेधा तद्वान् ; मतिर्ज्ञानमात्मानात्मादिविषयकं, तद्वान्; प्राज्ञश्च आत्मतत्त्वादनुभाववान् भक्तिमाहात्म्याभिज्ञो वा ॥१९०॥

क्या ? ध्यानिगण, संवत्सर-काल ध्यानावलम्बन से जो फल प्राप्त करते हैं, जो पुण्य प्राप्त करते हैं, भक्त, क्रियायोगावलम्बन से उसको एक दिन में प्राप्त करते हैं ॥१८३-१८४॥

आदिपुराण में लिखित है—भगवत्सेवा के समान ध्यान और नहीं है, उनकी सेवा के सदृश और फल भी नहीं है, भगवत्सेवा के तुल्य और त्याग नहीं है, उनकी सेवा के तुल्य और पुण्य नहीं है । एवं उनकी सेवा के सदृश और गति भी नहीं है ॥१८५॥

नारदपुराण में वर्णित है—हे विप्रगण ! भगवान् हृषीकेश, भक्तिग्राह्य हैं, धन द्वारा ग्राह्य नहीं हैं, वास्तविक भक्तिपूर्वक विष्णु की पूजा करने से अभीष्ट फल लाभ होता है । जिस प्रकार तृष्णार्त्त व्यक्ति सुशीतल जल लाभ से परितुष्ट होता है उस प्रकार जल द्वारा ही दुःखहारी जगत्पति हरि पूजित होने से तुष्टि लाभ करते हैं ।।१८६-१८७॥

हरिभक्तिसुधोदय में लिखित है—दम्भ एवं हास्यछल से भगवत्सेवा कृत होने से भी वह सेवा उनकी रक्षा करती है, अन्य कार्य्य जिस प्रकार विफल होते हैं, सेवा कार्य्य उस प्रकार निष्फल होने वाले नहीं हैं । सुतरां दयामय श्रीहरि व्यतीत ऐसा दयालु और कौन हैं ? ॥१८८॥

ब्रह्मवैवर्त्त में वर्णित है—हे द्विज ! जिस प्रकार अनिच्छा पूर्वक अग्नि को स्पर्श करने से अग्नि बिना जलाये नहीं छोड़ती है, उस प्रकार जिस किसी प्रकार से हो जगदाराध्य हरि की आराधना करने से मुक्ति प्राप्त होती है, श्रीहरि की आराधना से लोक—धनवान्, पुत्रवान्, भोगवान्, यशस्वी, निर्भय, मेधावी, मतिमान् एवं प्राज्ञ होते हैं । अर्थात् सकाम निष्काम आदि के पक्ष में ही श्रीहरि ही एकमात्र उपासनीय हैं । ॥१८९-१९०॥

स्कान्दे सनत्कुमार-मार्कण्डेय-संवादे—

विशिष्टः सर्व्वधर्म्माच्च धर्म्मो विष्ण्वर्च्चनं नृणाम् । सर्व्वयज्ञतपोहोमस्तीर्थस्नानैश्च यत् फलम् ।
तत् फलं कोटिगुणितं विष्णुं संपूज्य चाप्नुयात् ।।१९१।।
तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन नारायणमिहार्च्चयेत् ।।१९२।।

तत्रैव श्रीशिवोमा-संवादे—

यः प्रदद्याद्‌द्विजेन्द्राय सर्व्वां भूमिं ससागराम् । अर्च्चयेद्यः सकृद्विष्णुं तत् फलं लभते नरः ।।१९३
मासार्द्धमपि यो विष्णुं नैरन्तर्य्येण पूजयेत् । पुरुषोत्तमः स विज्ञेयो विष्णुभक्तो न संशयः ।।१९४
मध्यंदिनगते सूर्य्ये यो विष्णुं परिपूजयेत् । वसुपूर्णमहीदानुर्यत् पुण्य तदवाप्नुयात् ।।१९५।।
प्रातरुत्थाय यो विष्णुं सततं परिपूजयेत् । अग्निष्टोमसहस्रस्य लभते फलमुत्तमम् ।।१९६।।
यो विष्णुं प्रयतो भूत्वा सायंकाले समर्च्चयेत् । गवां मेधस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति दुर्लभम् ।।१९७
एवं सर्व्वासु वेलासु अवेलासु च केशवम् ।
सम्पूज्यन्नरो भक्त्या सर्व्वान् कामानवाप्नुयात् ।।१९८।।
किं पुनर्योऽर्च्चयेन्नित्यं सर्व्वदेवनमस्कृतम् । धन्यः स कृतकृत्यश्च विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।।१९९

किञ्च—

दीक्षामात्रेण कृष्णस्य नरा मोक्षं लभन्ति वै । किं पुनर्ये सदा भक्त्या पूजयन्त्यच्युतं नराः ।।२००

वेलासु मध्याह्लादिकालेषु, अवेलासु तदन्यकालेष्वपि ।।१९८।।
एवं मध्याह्लादौ कदाचित् कृतार्च्चनस्य फलमुक्त्वा नित्यपूजाफलमाह—किमिति ।।१९९।।

स्कन्दपुराण के सनत्कुमार-मार्कण्डेय-संवाद में वर्णित है—मानववृन्द के पक्ष में विष्णुपूजा, सर्व धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ कही गई है, सब प्रकार यज्ञ, तपस्या, होम एवं तीर्थस्नान से जो फल लाभ होता है, एक श्रीविष्णु पूजा से ही उससे कोटिगुण फल लाभ होता है। सुतरां इस जगत् में सर्व प्रयत्न से नारायण की अर्च्चना करनी चाहिये ।।१९०-१९२।।

स्कन्दपुराण के श्रीशिवोमा संवाद में उक्त है— जो मनुष्य, वेद पारग द्विजवर को समस्त ससागर भूमि दान करते हैं, एक बार मात्र श्रीविष्णु पूजन से वह फल लाभ होता है । जो व्यक्ति, निरन्तर मासार्द्धकाल श्रीविष्णु की पूजा करते हैं, वह जो विष्णु भक्त हैं, इसमें सन्देह नहीं है । सूर्य्य दिवस के मध्यगामी होने पर उस समय जो व्यक्ति श्रीविष्णु पूजा करते हैं, वसुपूर्ण वसुन्धरा दान करने से जो पुण्य होता है वह व्यक्ति उस पुण्य को प्राप्त करते हैं । जो मानव, प्रातःकाल में गात्रोत्थान पूर्वक प्रणत होकर सर्वदा श्रीविष्णु पूजा करते हैं, वह सहस्र अग्निष्टोम याग का उत्तम फल लाभ करते हैं ।।१९३-१९६।।

जो मानव, सायंकाल में संयत चित्त से श्रीविष्णु पूजा करते हैं, वह मानव, गोमेध यज्ञ का दुर्लभ फल प्राप्त करते हैं । इस प्रकार मध्याह्लादि समय में मनुष्य भक्तिपूर्वक श्रीभगवान् की पूजा करके सर्व कामना सिद्ध कर सकते हैं । अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है । जो मानव, सर्वदेव नमस्कृत श्रीविष्णु की पूजा करते हैं, वे धन्य एवं कृतकृत्य होकर विष्णुलोक में गमन करते हैं ।।१९७-१९९।।

शास्त्र में और भी वर्णित है—जब मनुष्य, कृष्ण मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करके मुक्ति प्राप्त करते हैं, तो, भक्ति पूर्वक पूजा करने से जो कितना फल प्राप्त होता है, उसको पुनः कहने का क्या प्रयोजन है ?।।२००।।

तत्रैव श्रीब्रह्मनारद-संवादे—

संसारेऽस्मिन् महाघोरे जन्ममृत्युभयाकुले । पूजनं वासुदेवस्य तारकं वादिभिः स्मृतम् ॥२०१॥

स नाम सुकृती लोके कुलन्तेन ह्यलङ्कृतम् । आधारः सर्व्वभूतानां येन विष्णुः प्रसादितः ॥२०२

यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानामपि कर्म्मणाम् । तद्विशिष्टफलं नृणां सदैवाराधनं हरेः ॥२०३॥

कलौ कलिमलाक्रान्ता न जानन्ति हरिं परम् । येऽर्च्चयन्ति तमीशानं कृतकृत्यास्त एव हि ।
नास्ति श्रेयोत्तमं नृणां विष्णोराराधनात् परम् ॥२०४॥

युगेऽस्मिन् तामसे तस्मात् सततं हरिमर्च्चयेत् । अर्च्चिते देवदेवेशे शङ्खचक्रगदाधरे ॥२०५॥

अर्च्चिताः सर्व्वदेवाः स्युर्यतः सर्व्वगतो हरिः । अर्च्चिते सर्व्वलोकेशे सुरासुर-नमस्कृते ।
केशवे केशि-कंसघ्ने न याति नरकं नरः ॥२०६॥

सकृदभ्यर्च्चितो येन हेलयापि नमस्कृतः । स याति परमं स्थानं यत् सुरैरपि पूजितम् ॥२०७॥

समस्तलोकनाथस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः । साक्षाद्भगवतो नित्यं पूजनं जन्मनः फलम् ॥२०८॥

तत्रैवाग्रे—

असारे खलु संसारे सारमेतन्निरूपितम् । समस्तलोकनाथस्य श्रद्धयाराधनं हरेः ॥२०९॥

वादिभिः स्मृतं सर्व्ववादिनामेव सम्मतमित्यर्थः ॥२०१॥ प्रसादितः आराधितं ॥२०२॥

हरेर्यदाराधनं, तदेव यज्ञादीनां विशिष्टं फलम् ॥२०३॥

उत्तमं श्रेयः फलं, सन्धिरार्षः, पाठान्तरं स्पष्टम् ॥२०४॥

नरः पापकृदपि नरकं न याति ॥२०६॥

स्कन्दपुराण के श्रीब्रह्म-नारद-संवाद में लिखित है—जन्म-मृत्यु भयाकुल महाघोर संसार से उत्तीर्ण होने के निमित्त वासुदेव की पूजा ही एकमात्र उपाय है, यह बात सर्व्ववादि सम्मत है अर्थात् सब सम्प्रदाय इसको मानते हैं ॥२०१॥

जो विष्णु की प्रसन्नता लाभ कर सकते हैं, वे ही सुकृती का अधिकारी हैं, उनके द्वारा वंश अलङ्कृत होता है एवं सर्व प्राणीयों का आधारभूत हैं। सर्वदा श्रीहरि की पूजा करना ही मनुष्यों के यज्ञ, तपस्या एवं अन्यान्य शुभ अनुष्ठान का विशिष्ट फल है ॥२०२-२०३॥

कलिकाल में कलिकल्मषाक्रान्त जीवगण, श्रीहरि का परम स्वरूप की उपलब्धि करने में असमर्थ हैं। किन्तु वे सब श्रीहरि की पूजा में प्रवृत्त होने पर कृतकृत्य हो जाते हैं। श्रीविष्णु की आराधना की अपेक्षा मनुष्यों का अपर श्रेष्ठतम फल है ही नहीं ॥२०४॥

विशेषतः यह तमःसमाच्छन्न इस कलियुग में सतत श्रीहरि की पूजा करनी चाहिये। वस्तुतः देवदेवेश्वर शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान् की पूजा होने पर सब देववृन्द पूजित होते हैं। सर्व लोक श्रेष्ठ सुरासुर नमस्कृत केशि-कंस हन्ता केशव की पूजा करने पर मनुष्य को पुनर्वार नरक का क्लेश भोगना नहीं पड़ता है ॥

जो मानव, जगत् पूज्य श्रीहरि की पूजा एक बार मात्र भी करते हैं, जो मानव, अवहेला से भी एक बार उनको प्रणाम करते हैं, वे सुरगण पूजित परमपद को प्राप्त करते हैं। सर्वलोकनाथ देवदेव श्रीविष्णु की नित्य पूजा ही जन्म ग्रहण का साक्षात् फल है ॥२०५-२०८॥

उस पुराण के अग्रिम भाग में लिखित है—श्रद्धापूर्वक समस्त लोकनाथ श्रीहरि की पूजा ही असार संसार के मध्य में एक मात्र सार रूप में निरूपित हुई है ॥२०९॥

किञ्च—

यत्र विष्णुकथा नित्यं यत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः ।
कलिवाह्या नरास्ते वै येऽर्च्चयन्ति सदा हरिम् ॥२१०॥

काशीखण्डे—

हरेराराधनं पुंसां किं किं न कुरुते वत । पुत्रमित्रकलत्रार्थं राज्यस्वर्गापवर्गदम् ॥२११॥
हरत्यघं ध्वंसयति व्याधीनाधीन्निरस्यति । धर्म्मं विवर्द्धयेत् क्षिप्रं प्रयच्छति मनोरथम् ॥२१२॥

अतएव स्कान्दे ध्रुवं प्रति मार्कण्डेयस्य वचनम्—

सकृदभ्यर्च्चितो येन देवदेवो जनार्द्दनः । स प्राप्नोति परं स्थानं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥२१३॥

तथाङ्गिरसः—

यस्यान्तः सर्व्वमेवेदं यस्य नान्तो महात्मनः । तमाराध्य गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदीच्छसि ॥२१४

पुलस्तस्य—

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ शाश्वत-पुरुषः । तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्ल्लभाम् ॥२१५

पुलहस्य—

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराध्य जगत्पतिम् । प्राप यज्ञपतिं विष्णुं तमाराधय सुव्रत ॥२१६॥

वशिष्ठस्य—

प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ मनसा यद्यदिच्छति ।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु सर्व्वोत्तमोत्तमम् ॥२१७॥

सर्व्वोत्तमोत्तमं स्थानं श्रीवैकुण्ठलोकमपि प्राप्नोति, त्रैलोक्यान्तर्गतं प्राप्नोतीति किमुत वक्तव्यमित्यर्थः ॥२१७

और भी कथित है—जहाँ पर नित्य भगवत्-कथा प्रसङ्ग उत्थापित होता है, जहाँ वैष्णववृन्द निवास करते हैं, वे सब कलि के बाहर रहते हैं, अर्थात् उन सबके प्रति कलि का प्रभाव विस्तार नहीं होता है ॥२१०

काशीखण्ड में लिखित है—श्रीहरि की आराधना से मनुष्यों को क्या नहीं मिलता है ? पुत्र, मित्र, कलत्र, राज्य, स्वर्ग, अपवर्ग यह सब श्रीहरि आराधना के ही फल हैं। इससे पाप ध्वंस होता है, आधि-व्याधि विदूरित होती हैं एवं मनोऽभीष्ट सिद्धि, धर्म वृद्धि भी होती है ॥२११-२१२॥

अतएव स्कन्दपुराण में ध्रुव के प्रति श्रीमार्कण्डेय का कथन यह है—मैं सत्य करके कहता हूँ कि जो मानव अन्ततः सकृन्मात्र भी देवदेव जनार्दन की पूजा करते हैं वे ही परमपद को प्राप्त करते हैं ॥२१३॥

अङ्गिरा की उक्ति है—यदि तुम उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करने के इच्छुक हो, तो जिनके अन्तर में निखिल विश्व अवस्थित हैं, एवं जो अन्त रहित हैं, उन्हीं अनन्त गोविन्द की आराधना करो ॥२१४॥

पुलस्त का कथन है—जो परमब्रह्म, परमधाम, नित्य पुरुष हैं, उन श्रीहरि की आराधना करने से अति दुर्ल्लभ मुक्ति-प्राप्ति भी होती है ॥२१५॥

पुलस्त्य ने कहा है—हे सुव्रत ! जिन जगत्पति यज्ञपति श्रीविष्णु की आराधना करके इन्द्र, देवराज हुए हैं, उन्हीं भगवान् की आराधना करो ॥२१६॥

वशिष्ठ की उक्ति है—जब श्रीविष्णु की आराधना करने से सर्वोत्कृष्ट वैकुण्ठलोक की प्राप्ति होती है। तब कामना होने पर त्रैलोक्यान्तर्गत अन्यान्य स्थान लाभ होगा, इसमें वक्तव्य ही क्या है ? नारी किंवा

यान् यान् कामयते कामान् नारी वा पुरुषोऽपि वा ।
तान् समाप्नोति विपुलान् समाराध्य जनार्द्दनम् ॥२१८॥

अगस्त्यसंहितायाम्—

आराध्यैव नरो विष्णुं मनसा यद्यदिच्छति । फलं प्राप्नोत्यविहतं भूरि स्वल्पमथापि वा ॥२१९

ईदृशं विष्णुपुराणेऽपि, किञ्चिदधिकं चेदम्

श्रीमरीचेः—

अनाराधित-गोविन्दैर्नरैः स्थानं नृपात्मज । न हि संप्राप्यते श्रेष्ठं तस्मादाराधयाच्युतम् ॥२२०

किञ्च, तत्रैव—

भौमान् मनोरथान् स्वर्गं स्वर्गवन्द्यं तथास्पदम् ।
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्व्वाणमपि चोत्तमम् ॥२२१॥

तथा ब्रह्मवैवर्त्ते—

यत्पादोदकमाधाय शिवः शिरसि नृत्यति । यन्नाभिनलिनादासीद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२२२
यदिच्छाशक्तिविक्षोभाद्ब्रह्माण्डोद्भवसंक्षयौ । तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्र्यं यदीच्छसि॥२२३

नारसिंहे मार्कण्डेय-सहस्रानीक-संवादे—

यस्तु संपूजयेन्नित्यं नरसिंहं नरेश्वर । स स्वर्गमोक्षभागी स्यान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥२२४॥

स्वल्पं भूरि वा यद्यदिच्छति, तत् फलमाराध्यैव आराधन-मात्रं कृत्वा सद्य एव अविहतं सर्व्वोपद्रवरहितं अनश्वरञ्च प्राप्नोति ॥२१९॥

स्वर्गवन्द्यमास्पदं श्रीवैकुण्ठलोक, मुमुक्षुश्चेत् निर्व्वाणमपि प्राप्नोति; यद्वा, स्वर्गवन्द्यं श्रीध्रुवलोकं ब्रह्मलोकं वा, उत्तमं निर्व्वाणं मुक्तिविशेषरूपं श्रीवैकुण्ठलोकम्; यद्वा, निर्व्वाणं मोक्षं, तस्मादुत्तमञ्च श्रीवैकुण्ठलोकमपि ॥२२१॥

नर, जो भी हो, कामनानुसार आराधना करने से जनार्दन अधिक परिमाण में फल दान करते हैं।॥२१७-२१८

अगस्त्य संहिता में लिखित है—मनुष्य के मनोमध्य में स्वल्प विस्तर जो कुछ कामना रहती है, श्रीविष्णु की आराधना से उसकी पूर्त्ति होती है ॥२१९॥

श्रीविष्णु पुराण में इससे भी अधिक कहा गया है, वहाँ पर श्रीमरीचिका कथन यह है—हे नृप तनय ! उत्तमश्लोक गोविन्द की आराधना न करने से मनुष्य उत्तम स्थान लाभ नहीं कर सकते हैं, सुतरां तुम अच्युत गोविन्द की पूजा करो ॥२२०॥

उक्त स्थान में और भी वर्णित है—भगवान् की आराधना करने से पार्थिव यावतीय मनोरथ सिद्धि, एवं स्वर्गवन्द्य ध्रुवलोक, निर्वाण मुक्ति एवं उत्तम वैकुण्ठलोक प्राप्त हो जाता है ॥२२१॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में उक्त विषय का वर्णन है—जिनका चरणोदक मस्तक में धारण कर महादेव नृत्य करते हैं, जिनके नाभिकमल से सर्वलोक पितामह की उत्पत्ति हुई है, जिनकी इच्छाशक्ति के विक्षोभ से ब्रह्माण्ड का उद्भव एवं संक्षय होता है, यदि उत्कृष्ट स्थान की इच्छा हो, तो उन गोविन्द के चरणारविन्द की आराधना करो ॥२२२-२२३॥

नृसिंहपुराण के मार्कण्डेय-सहस्रानीक-संवाद में वर्णित है—हे नरेन्द्र ! जो मानव, नित्य श्रीनृसिंहदेव की सम्यक् आराधना करते हैं, वे स्वर्ग एवं मोक्षभागी होते हैं, इस विषय में विचार करना निष्प्रयोजन

तस्मादेकमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया । अर्च्चनान्नरसिंहस्य संप्राप्नोत्यभिवाञ्छितम् ॥२

तत्रैव श्रीव्यास-शुक-संवादे श्रीमार्कण्डेय-मृत्युञ्जय-संवादानन्तरम्—

नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः । किं त्वया नार्च्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ?॥२२

उदकेनाप्यलाभे तु द्रव्याणां पूजितः प्रभुः ।
यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न पूजितः ? ॥२२७॥

नरसिंहो हृषीकेशः पुण्डरीकनिभेक्षणः । स्मरणान्मुक्तिदो नृणां स त्वया किं न पूजितः ?॥२२

बृहन्नारदीयेऽदिति-माहात्म्ये श्रीसूतोक्तौ—

यत्र पूजापरो विष्णोस्तत्र विघ्नो न बाधते । राजा च तस्करश्चापि व्याधयश्च न सन्ति हि ॥२

प्रेताः पिशाचाः कुष्माण्डा ग्रहा बालग्रहास्तथा ।
डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्च्चकम् ॥२३०॥

तत्रैव यमभगीरथ-संवादे—

पत्रैः पुष्पैः फलैर्वाच्चर्य पूजारहितमच्युतम् । स याति विष्णुसालोक्यं कुलसप्तति-संयुतः ॥२३१

तत्रैव ध्वजारोपण-माहात्म्ये श्रीविष्णुदूतानामुक्तौ—

उत्क्रान्ति-काले यन्नाम श्रुतवन्तोऽपि वै सकृत् । लभन्ते परमं स्थानं किमु शुश्रूषणे रताः २३२॥

मुहूर्त्तं वा मुहूर्त्तार्द्धं यस्तिष्ठेद्धरिमन्दिरे । स याति परमं स्थानं किमु शुश्रूषणे रताः ॥२३३॥

द्रव्याणां पाद्यादीनामलाभे सति उदकेनापि पूजितः सन् ॥२२७॥
स्मरणादपि मुक्तिदः; राजा, तत्कृतोपद्रव इत्यर्थः ॥२२८-२२९॥
आच्चर्य सम्यगीषद्वार्च्चयित्वा, पूजारहितमरण्यान्तर्गतत्वादिना केनाप्यपूजितानाम् ॥२३१॥
उत्क्रान्तिकाले मरणसमये ॥२३२॥

है । सुतरां एक मन से प्रतिज्ञा पूर्वक यावज्जीवन उन श्रीनृसिंहदेव की पूजा करने से अभीष्ट फल लाभ होता है ॥२२४-२२५॥

उक्त श्रीनृसिंह पुराण के श्रीव्यास-शुकदेव-संवाद प्रकरण में श्रीमार्कण्डेय एवं मृत्युञ्जय-संवाद के पश्चात लिखित है—यमराज एक व्यक्ति को नरक में पच्यमान देखकर जिज्ञासा किये थे, हे नर ! तुमने क्लेश-नाशक देवादिदेव केशव की आराधना क्यों नहीं की ? कारण, वैसा होने से तुम्हारी ऐसी दुरवस्था नहीं होती, जो उपचारादि के अभाव से जल द्वारा पूजित होकर भी पूजक को मुक्तिदान करते हैं, तुमने उनकी पूजा क्यों नहीं की ? जिन नृसिंह हृषीकेश, पद्मलोचन नारायण का स्मरण करने से स्मरणकारी व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है, उनकी पूजा तुमने क्यों नहीं की ? ॥२२६-२२८॥

बृहन्नारदीय पुराण के अदिति माहात्म्य में श्रीसूतोक्ति यह है—जहाँ पर विष्णु-पूजापरायण व्यक्ति का निवास होता है, वहाँ विघ्न बाधा प्रदान में सक्षम नहीं होता है । अन्य कथा क्या है ?-वहाँ राजा, तस्कर किंवा व्याधिजनित उत्पात नहीं रहता है । प्रेत, पिशाच, कुष्माण्ड, कालग्रह, डाकिनी एवं राक्षस यह सब विष्णुपूजक के प्रति बाधा प्रदान करने में समर्थ नहीं होते हैं ।।२२९-२३०॥

उक्त पुराण के यम-भगीरथ-संवाद में वर्णित है— जो व्यक्ति, पूजारहित अच्युत भगवान् की पत्र, पुष्प एवं फल द्वारा पूजा करते हैं, उनको सप्ततिकुल के सहित विष्णु सायुज्य लाभ होता है ॥२३१॥

उक्त बृहन्नारदीय पुराण के ध्वजारोपण माहात्म्य में विष्णुदूतगण की कथा में प्रकाश है— जब प्राण

तत्रैव विभाण्डकमुनेः सुमतिनृपं प्रति—

अवशेनापि यत्कर्म्म कृतन्तु सुमहत् फलम्। ददाति नृणां राजेन्द्र किं पुनः सम्यगर्च्चना ॥२३४

प्रायश्चित्तप्रकरणान्ते—

सम्पर्काद्यदि वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् । सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः स याति परमं पदम् ॥२३५॥

सर्व्वान्तराया नश्यन्ति मनःशुद्धिश्च जायते । परं मोक्षं लभेच्चैव पूज्यमाने जनार्द्दने ॥२३६॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाख्या पुरुषार्थाः सनातनाः। हरिपूजापराणान्तु सिध्यन्ते नात्र संशयः ॥२३७

सर्व्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गा वेदाश्च सत्तमाः ।
नारायणार्च्चनस्यैते कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥२३८॥

श्रीविष्णुतोषविधि-प्रश्नोत्तरे—

सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः। असारोदग्रसंसारे सारं यद्विष्णु-पूजनम् ॥२३९॥

उपलेपन-माहात्म्यान्ते—

अकामादपि ये विष्णोः सकृत् पूजां प्रकुर्व्वते । न तेषां भवबन्धस्तु कदाचिदपि जायते ॥२४०॥

यज्ञध्वजोपाख्यानान्ते—

तस्मात् शृणुत विप्रेन्द्रा देवो नारायणोऽव्ययः ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजकानां विमुक्तिदः ॥२४१॥

यस्य कर्म्म किञ्चित् परिचर्य्यादिरूपम् ॥२३४॥

हे सत्तमाः; यद्वा, परमोत्तमा इति यज्ञादीनां विशेषणम् ॥२३५॥

प्रयाण समय में एक बार मात्र श्रीनारायण नामोच्चारण श्रवणपूर्वक मानव अनायास दिव्यलोक को जाते हैं, तब उनकी परिचर्य्या करने से जो फल क्या होगा, उस विषय में और कहना क्या है ? जो मानव, मुहूर्त्तकाल अथवा तदर्धकाल हरि-मन्दिर में अवस्थान करते हैं, जब उनकी दिव्य गति होती है, तब परिचर्य्याकारी मनुष्यवृन्द के सम्बन्ध में वक्तव्य ही क्या है ?॥२३२-२३३॥

उक्त पुराण में सुमति नृपति के प्रति विभाण्डक मुनि की उक्ति में प्रकाश है—अप्रकृतिस्थ अवस्था में भी जिनका कार्य्य करने से मनुष्यगण सुमहत् फल लाभ करते हैं, हे राजेन्द्र ! उनकी सम्यक् पूजा की कथा और क्या कहूँ ? ॥२३४॥

प्रायश्चित्त प्रकरण के शेषभाग में वर्णित है—यदि जो कोई व्यक्ति किसी वस्तु की कामना से अथवा मोह निबन्धन श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे सर्वविध पातकों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं। जनार्दन की पूजा करने से सर्वविध अन्तराय विदूरित होते हैं, मनःशुद्धि होती है, एवं उत्कृष्ट मोक्ष लाभ भी होता है। जो मानव, श्रीहरिपूजा परायण हैं, वे सब मानव, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक सनातन पुरुषार्थ को प्राप्त करते हैं। यावतीय तीर्थसमूह, उत्कृष्ट यज्ञसमूह किंवा साङ्गवेद समूह- यह सब नारायण की पूजा के षोड़शांश के योग भी नहीं हो सकते हैं ॥२३५-२३८॥

श्रीविष्णुतोषण विधि के प्रश्नोत्तर में वर्णित है—सत्यकर कह रहा हूँ, हित करता हूँ एवं पुनः पुनः सार कथा को सूचित कर रहा हूँ- असार घोर संसार के मध्य श्रीविष्णु की पूजा ही सार सामग्री है ॥२३९

उपलेपन माहात्म्य के शेष में वर्णित है—अनिच्छा से भी जो मानव, श्रीविष्णु की पूजा एकबार मात्र भी करते हैं, वे कभी भी पुनर्वार भवबन्धन से बद्ध नहीं होते हैं ॥२४०॥

यज्ञध्वजोपाख्यान के अन्त में लिखित है- हे विप्रेन्द्रगण ! श्रवण करें, जो मानव, अव्यय नारायण पूजा

ते वन्द्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्कार्या विशेषतः । येऽर्च्चयन्ति महाविष्णुं प्रपन्नार्त्ति-प्रणाशनम् ॥२४२॥
ये यजन्ति स्पृहाशून्या हरिं वा हरमेव वा । त एव भुवनं सर्व्वं पुनन्ति विबुधर्षभाः ॥२४३॥

पाद्मे श्रीनारायणनारद-संवादे पूजाविधि-प्रसङ्गे—

मद्भक्तो यो मदर्च्चाञ्च करोति विधिदृष्टये । तस्यान्तरायः स्वप्नेऽपि न भवत्यभयो हि सः ॥२४४॥

तत्रैव वैशाख-माहात्म्ये नारदाम्बरीष-संवादे—

पुत्रान् कलत्रान् दीर्घायु राज्यं स्वर्गापवर्गकम् ।
स दद्यादीप्सितं सर्व्वं भक्तया संपूजितोऽजितः ॥२४५॥

नरकेऽपि चिरं मग्नाः पूर्व्वजा ये कुलद्वये । तत्रैव यान्ति ते स्वर्गं यदार्च्चति सुतो हरिम् ॥२४६॥

तत्रैव श्रीयमब्राह्मण-संवादे च—

अनाराध्य हरिं भक्तया को लोकान् प्राप्नुयाद्‌बुधः ।
आराधिते हरौ कामाः सर्व्वे करतलस्थिताः ॥२४७॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे श्रीकृष्णामृतस्तोत्रे—

सोऽपि धन्यतमो लोके योऽर्च्चयेदच्युतं सकृत् ।
किं पुनः श्रद्धया युक्तः सुपुष्पैः प्रतिवासरम् ॥२४८॥

वैष्णवानपि ये नित्यं प्रपश्यन्त्यर्च्चयन्ति च । तेऽपि विष्णुपदं यान्ति किं पुनर्विष्णुसेवकाः ॥२४९॥

स योगी स विशुद्धात्मा स शान्तः स महामतिः ।
स शुद्धः स च सम्पूर्णः कृष्णं सेवेत यो नरः ॥२५०॥

हे विबुधर्षभाः; यद्वा, त एव विबुधर्षभा विद्वद्वरा देवोत्तमा वा ॥२४३॥
यदा तेषां सुतः कुलोत्पन्नो हरिमर्च्चयति ॥२४६॥

ज्ञानः अथवा अज्ञानतः करते हैं, वे मुक्ति लाभ करते हैं। जो मानव, प्रपन्नार्त्तिनाशन महाविष्णु की पूजा करते हैं, वे वन्दनीय होते हैं, पूज्य होते हैं, एवं नमस्य होते हैं। जो ज्ञानी एवं ऋषिवृन्द निःस्पृह होकर श्रीहरि अथवा श्रीशिव की पूजा करते हैं, वे सब सकल भुवन को पवित्र करते हैं ॥२४१-२४३॥

पद्मपुराण के श्रीनारायण-नारद-संवादस्थ पूजाविधि प्रसङ्ग में लिखित है— जो भक्त मेरी पूजा यथा विधि करते हैं, स्वप्न में भी उनको विपत्ति नहीं आती है, एवं वे सतत निर्भय से रहते हैं ॥२४४॥

पद्मपुराण के वैशाख-माहात्म्य स्थित नारद-अम्बरीष-संवाद में लिखित है—अजित श्रीहरि की पूजा करने से पुत्र, कलत्र, दीर्घायुः, राज्य, स्वर्ग, मोक्ष प्रभृति अभीष्ट फल मिलते हैं। कुलोत्पन्न कोई भी व्यक्ति श्रीहरि की पूजा करने पर उनके पूर्वपुरुषगण नरक मग्न होने पर भी सन्तान की सुकृति से स्वर्ग गमन करते हैं ॥२४५-२४६॥

उक्त पद्मपुराण के श्रीयम-ब्राह्मण-संवाद में लिखित है— भक्ति पूर्वक श्रीहरि की आराधना न करके कौन पण्डित व्यक्ति स्वर्गादि सुख भोग कर सकते है ? श्रीहरि की आराधना करने से सर्वविध कामना ही करतल गत होती हैं ॥२४७॥

विष्णुधर्मोत्तर के श्रीकृष्णामृत स्तोत्र में लिखित है—मनुष्य, एक बार मात्र श्रीकृष्ण की पूजा करने पर जब संसार में सार्थक जन्मा होते हैं, तो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक सुरम्य पुष्प द्वारा भगवत् पूजा करने से

अगस्त्यसंहितायाम् —

अनन्यमनसः शश्वद्गणयन्तोऽक्षमालया । जपन्तो रामरामेति सुखामृतनिधौ मनः ।
प्रविलाप्यामृतीभूय सुखं तिष्ठन्ति केचन ॥२५१॥

परिचर्य्यापराः केचित् प्रासादेष्वेव शेरते । मनुष्यमिव तं द्रष्टुं व्यवहर्त्तुञ्च बन्धुवत् ॥२५२॥

किञ्च—

यथा विधि-निषेधौ तु मुक्तं नैवोपसर्पतः । तथा न स्पृशतो रामोपासकं विधिपूर्व्वकम् ॥२५३॥

श्रीभगवद्गीतासु (१२।१) —

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्य्युपासते । ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ? ॥२५४॥

अमृतीभूय जीवन्मुक्तो भूत्वा ॥२५१॥

तेभ्योऽपि पूजापराणां माहात्म्यमाह— परिचर्य्येति । प्रासादेष्वेव शेरत इति सदा भगवत्सान्निध्येन परमनैश्चिन्त्यादिना चैहिक-परमसुखमुक्तम् । तं श्रीरामं मनुष्यमिव लोक-व्यवहाराद्यनुसारिणं द्रष्टुम्, अतो बन्धुवत् तेन सह व्यवहर्त्तुञ्च विहर्त्तुमपि प्रेमविशेष-सम्पत्त्या पारलौकिक-परमसुखं चोक्तम् । एतच्च श्रीभगवतामृतोत्तरखण्डे सम्यक् निरूपितमस्ति । अनन्येत्यादयः श्लोका यद्यपि भगवद्भक्ति-माहात्म्ये लिखितुं युज्यन्ते, तथापि परिचर्य्यापरा इति उपासकमिति चेत्युक्त्या परिचर्य्योपासनयोः प्राधान्येन पूजापरता-मात्राभिधानादत्र लिखिताः । एवमग्रेऽप्यूह्यम् ॥२५२॥

पूर्व्वं 'मत्कर्म्मकृन्मत्परमो' (श्रीगी ११।५५) इत्येवं भक्तिनिष्ठस्य श्रेष्ठत्वमुक्तम्; 'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः' (श्रीगी ९।३१) इत्यादिना च तत्र तस्यैव श्रैष्ठ्यं वर्णितम्; तथा 'तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्ति-विशिष्यते' (श्रीगी ७।१७) इत्यादिना, 'सर्व्वं ज्ञानप्लवेनैव' (श्रीगी ४।३६) इत्यादिना च ज्ञाननिष्ठस्य श्रैष्ठ्यमुक्तम् । एवमुभयोः श्रैष्ठ्येऽपि विशेष-जिज्ञासया श्रीभगवन्तमर्ज्जुनः पृच्छति—एवमिति । एवं सर्व्वकर्म्मार्पणादिना सततं युक्तास्तन्निष्ठाः सन्तो ये भक्तास्त्वां पर्य्युपासते समाराधयन्ति, ये चाप्यक्षरं ब्रह्म अव्यक्तं निर्विशेषमुपासते, तेषामुभयेषां मध्ये के अतिशयेन योगविदः श्रेष्ठा इत्यर्थः ॥२५४॥

जो कितना फल मिलेगा, यह क्या अब कहना पड़ेगा ? जो मानव, प्रतिदिन वैष्णवों की अर्च्चना एवं वैष्णव दर्शन करते हैं, जब उनकी गति श्रीविष्णुलोक में होती है, तब श्रीविष्णुदेव की कथा और क्या कहूँ ? जो श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं वे योगी, विशुद्धात्मा, शान्त, महामति, पवित्र एवं सर्वार्थ परिपूर्ण होते हैं ॥२४८-२५०॥

अगस्त्य सहिता में लिखित है— सेवकगण के मध्य में कतिपय व्यक्ति, निरन्तर जपमाला धारणपूर्वक गणना द्वारा 'राम राम' जप कर सुखामृत-सिन्धु में मन को निमग्न करके जीवन्मुक्त भाव से अवस्थित होते हैं। कतिपय भक्त सेवापरायण होकर श्रीरामचन्द्र को नरदेहधारी रूप में दर्शन कर उनके सहित बन्धुवत् व्यवहार करने के निमित्त तदीय प्रासाद में शयन करते हैं ॥२५१-२५२॥

इस ग्रन्थ में और भी लिखित है— जिस प्रकार मुक्त पुरुष विधि निषेध के अधीन नहीं होते हैं, उस प्रकार ही विधिपूर्वक आराधना करने से रामोपासक को विधि निषेध स्पर्श नहीं कर सकते हैं। अर्थात् विधि निषेध अपना प्रभाव प्रदर्शन करने में अक्षम होते हैं। जिस प्रकार सुअभ्यस्त पथ चलने वाले को अपर का निर्देश प्रयोजन नहीं पड़ता है ॥२५३॥

श्रीभगवद्गीता में उक्त है— हे भगवन् ! इस प्रकार जो सब भक्त, सतत समाहित चित्त से आपकी आराधना करते हैं, और जो आपको अक्षर अथवा अव्यक्त रूप में जानते हैं—इनमें कौन व्यक्ति श्रेष्ठ योगी

इत्यर्ज्जुनेन पृष्टः श्रीभगवानुवाच (श्रीगी १२।२)—

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते। श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२५५॥

चतुर्थस्कन्धे श्रीपृथूक्तौ (२१।३१)—

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना,-मशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती, यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥२५६॥

किञ्च, नारदोक्तौ (श्रीभा ४।३१।१४)—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन, तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां, तथैव सर्व्वार्हणमच्युतेज्या ॥२५७॥

तत्र प्रथमाः श्रेष्ठा इत्युत्तरं श्रीभगवानाह—मयीति; मयि परमेश्वरे सर्व्वज्ञतादि-गुणविशिष्टे साक्षात् भगवति श्रीकृष्णे मन आवेश्य एकाग्रं कृत्वा नित्यं युक्ता मदर्थकर्म्मानुष्ठानादिना मन्निष्ठाः सन्तः श्रेष्ठया श्रद्धया युक्ता ये मामाराधयन्ति, ते युक्ततमा मेऽभिमताः ॥२५५॥

यस्य मम पादयोः सेवायामभिरुचिरपि तपस्विनां संसारतप्तानाम्; यद्वा, तपः स्वधर्म्माचरणं चित्तैकाग्र्यं वा, तद्युक्तानामपि अशेषजन्मभिः संवृद्धं धियो मलं सद्यः क्षपयति। कथम्भूता? अहन्यहनि वर्द्धमाना सती सात्त्विकी परमोत्तमा वा। एवं मलक्षपणमानुषङ्गिकं, मुख्यञ्च फलं नित्यमेधमानोत्तमा वा। एवं मलक्षपणमानुषङ्गिकं, मुख्यञ्च फलं नित्यमेधमानोत्तमा तत्सेवाभिरुचिरेवेत्यभिप्रेतम्। तत्पादसम्बन्धस्यैवैष महिमेति दृष्टान्तेनाह—यथेति। पदाङ्गुष्ठविनिःसृतेत्ययं भावः—वामपादस्याङ्गुष्ठात् विनिःसृता निर्गत्य भुवं गता सा च एकरूपैव, न च नित्यं वर्द्धमाना, तथाप्यनेकजन्मोपचितं मलं सद्यः क्षपयति। एषा च पादयोः सेवायाम् अभिरुचिः, तत्र संलग्नो मनसो भावः, तं सद्यः क्षिणोतीति किं चित्रं, किन्तु नित्यं वर्द्धमाना चोत्तमा सती फलरूपतां प्राप्नोतीत्युचितमेवेति ॥२५६॥

श्रीभगवदर्च्चनेनैव जगतः सन्तोष इति सदृष्टान्तमाह—यथेति। मूलात् प्रथमविभागाः स्कन्धाः तद्विभागाः भुजाः, तेषामप्युपशाखाः उपलक्षणमेतत्, पल्लवपुष्पादयोऽपि तृप्यन्ति, न तु मूलसेकं विना स्वस्वनिषेचनेन। प्राणस्योपहारो भोजनं, तस्मादेवेन्द्रियाणां तृप्तिः, न तु तत्तदिन्द्रियेषु पृथक् पृथगन्नलेपनात्। तथा चाच्युताराधनमेव सर्व्वदेवताराधनं, न पृथगित्यर्थः ॥२५७॥

हैं? अर्ज्जुन के इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् पद्मनाभ कहते हैं—जो मानव, मुझको परमेश्वर जानकर मुझमें ही मन समर्पण कर सतत एकाग्र चित्त से मेरी आराधना करते हैं, मेरे विचार से विशेष श्रद्धावान् वही योगी श्रेष्ठ हैं ॥२५४-२५५॥

चतुर्थस्कन्ध में पृथु महाराज की उक्ति है—श्रीहरिपादपद्म का सेवाभिलाष, तदीय पदाङ्गुष्ठ विनिःसृत सुरतरङ्गिणी गङ्गा के समान, संसार-ताप तापित जीवगण की बुद्धि में स्थित अशेष जन्म सञ्चित मालिन्य को सद्य विनष्ट कर सात्त्विक वासना को बढ़ाता है ॥२५६॥

श्रीमद्भागवत में श्रीनारदोक्ति में प्रकाशित है—जिस प्रकार वृक्ष के मूलदेश में जल सेचन करने पर उसके स्कन्ध शाखा प्रभृति सतेज एवं पुष्ट होते हैं, किन्तु वृक्ष के एक एक अवयव में जल सेचन करने से वह कार्य्यकारी नहीं होता है, जिस प्रकार भोजन करने पर प्राण की तृप्ति होती है, किन्तु एक एक इन्द्रिय के स्वतन्त्र अन्नादि भोग से इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती है, ऐसे ही उन भगवान् अच्युत नारायण की आराधना के द्वारा सब देवता की तृप्ति होती है ॥२५७॥

एकादशस्कन्धे च कवियोगेश्वरस्य वाक्यम् (२।३३)—

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य, पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावा,-द्विश्वात्मना यत्र निवर्त्तते भीः ॥२५८॥

श्रीभगवतश्च (श्रीभा ११।२७।४६)—

एवं क्रियायोगपथैः पुमान् वैदिक-तान्त्रिकैः ।
अर्च्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥२५९॥

किञ्च (श्रीभा ११।२७।५०)—

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति ।
भक्तियोगं स लभते एवं यः पूजयेत माम् ॥२६०॥

गौतमीयतन्त्रे श्रीनारदस्य —

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन च । विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः ॥२६१॥

अथ पूजानित्यता

महाभारते—

मातृवत् परिरक्षन्तं सृष्टिसंहारकारकम् । यो नार्च्चयति देवेशं तं विद्याद्ब्रह्मघातकम् ॥२६२॥

आत्यन्तिकं क्षेमं कथयति—मन्य इति । न कुतश्चिदपि भयं यस्मात् तदकुतश्चिद्भयम्; अत्र संसारे असदात्मभावात् असति देहादावात्मभावनातो नित्यं सर्व्वदा उद्विग्नबुद्धेर्जनस्य विश्वात्मना सर्व्वथा निःशेषं यत्र पादाम्बुजोपासने भीर्न वर्त्तते; यद्वा, यत्र यस्मिन् सति, रसदात्मभावात् रसदश्चासावात्मा च हरिः श्रीकृष्ण इत्यर्थः, तस्मिन् भावः प्रेमा तस्माद्धेतोर्नित्यमुद्विग्नबुद्धेरपि विश्वात्मना भीर्न वर्त्तते; अन्यत् समानम् ॥२५८॥

एवं पूर्व्वोक्तप्रकारैः क्रियायोगरूपैर्मार्गैः; यद्वा, ईदृशैः क्रियायोगप्रकारैः अर्च्चन् अर्च्चयन्; उभयत्र इहामुत्र च ॥२५९॥

नैरपेक्ष्येण अहैतुकेन प्रेमलक्षणेनेत्यर्थः । ननु नैरपेक्ष्यो भक्तियोगः कथं भवति ? तत्राह—भक्तियोगमिति ॥२६०॥

विक्रीणीते—वश्यं करोति ॥२६१॥

एकादशस्कन्ध में कवियोगेश्वर वाक्य यह है—हे महाराज ! अच्युत भगवान् की आराधना करने से सकल भय विदूरित होकर सर्वविध मङ्गल साधित होते हैं । कारण, इस संसार में देहादि अनित्य अनात्म वस्तु में आत्मीय ज्ञान स्थापन कर जो लोक निरन्तर उद्वेग ग्रस्त हैं, भगवदुपासना के द्वारा उनके भी सब भय विदूरित होते हैं ॥२५८॥

श्रीभगवद् वाक्य इस प्रकार है—मानवगण, इस प्रकार वैदिक एवं तान्त्रिक क्रिया योग पथ का अनुसरण करके मेरे निकट से इस लोक एवं परलोक की सब प्रकार सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥२५९॥

और भी कहते हैं—मुझको निरपेक्ष भक्ति योग के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, जो इस प्रकार मेरी पूजा करते हैं, वे पुरुष भक्तियोग लाभ करते हैं ॥२६०॥

गौतमीयतन्त्र में श्रीनारद का कथन है—तुलसी का एकपत्र एवं एक चुल्लू जल समर्पण करने से वे भक्तवत्सल हरि, भक्त के निकट क्रीत अर्थात् वश्य होते हैं ॥२६१॥

अतएवोक्तं बृहन्नारदीये पादोदक-माहात्म्याख्यानारम्भे—

हरिपूजाविधानन्तु यस्य वेश्मनि नो द्विजाः । श्मशान-सदृशं विद्यान्न कदापि विशेच्च तत् ॥२६३॥

अतएवोक्तं विष्णुधर्म्मोत्तरे—

पुष्पैर्वा यदि वा पत्रैः फलैर्वा यदि वाम्बुभिः ।
यष्टव्यः पुण्डरीकाक्षस्त्यक्त्वा कार्य्यशतानि च ॥२६४॥

किञ्च नारदीये—

निमित्तेषु च सर्व्वेषु तत्तत्काल-विशेषतः । पूजयेद्देवदेवेशं द्रव्यं सम्पाद्य यत्नतः ॥२६५॥

अतएवोक्तं भगवता हयग्रीवेण, हयशीर्षपञ्चरात्रे—

प्रतिष्ठिताार्च्चा न त्याज्या यावज्जीवं समर्च्चयेत् ।
वरं प्राणस्य वा त्यागः शिरसो वापि कर्त्तनम् ॥२६६॥ इति ।

पूजाया नित्यताऽलेखि प्राक् च नैवेद्य-भक्षणे । माहात्म्यञ्च परं शालग्रामचक्र प्रसङ्गतः ॥२६७॥

हरेः पूजाविधानं पूजनम्; हे द्विजाः ॥२६३॥

निमित्तेषु—जन्माष्टम्यादिषु ॥२६५॥

अर्च्चा प्रतिमा या काचिदपि, एवमर्च्चन-नित्यता स्वत एव सिद्धा ॥२६६॥

अत्रालिखितमप्यन्यत् पूजाया नित्यत्वस्य माहात्म्यस्य च वचनजातं पूर्व्वलिखितेनैकीकुर्व्वन् लिखति—पूजाया इति द्वाभ्याम् । प्रागलेखि 'अनर्च्चयित्वा गोविन्दं यैर्भुक्तं धर्म्मवर्ज्जितैः' इत्यादिभिः । परमन्यच्च माहात्म्यं शालग्रामशिलारूपस्य चक्रिणश्चक्रयुक्तस्य भगवतः प्रसङ्गे; तथा च शालग्रामशिलामाहात्म्ये-यः, पूजयेद्धरिं चक्रे शालग्रामशिलोद्भवे । राजसूय-सहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ॥' इत्यादि ॥२६७॥

अथ पूजानित्यता

महाभारत में लिखित है—जो माता के समान रक्षाकर्त्ता हैं, जो सृष्टि एवं संहार कार्य्य करते रहते हैं, उन जगन्नाथ देवदेव श्रीहरि की पूजा जो मनुष्य नहीं करता है, उसको ब्रह्मघातक जानना चाहिये ॥२६२॥

अतएव बृहन्नारदीय पुराण के पादोदक माहात्म्य के प्रारम्भ में लिखित है—हे द्विजवृन्द ! जिनके आलय में श्रीहरिपूजा का अनुष्ठान नहीं होता है, उस आलय को श्मशान तुल्य जानना होगा, उसमें कदाच प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥२६३॥

अतएव विष्णुधर्मोत्तर में उक्त है—शत कार्य्य परित्याग करके भी पत्र, पुष्प, फल से अथवा तदभाव से जल द्वारा पुण्डरीकाक्ष की पूजा करनी चाहिये ॥२६४॥

और भी नारदीय पुराण में लिखित है—जन्माष्टम्यादि तिथि समूह में एवं काल विशेष में प्रयोजनीय द्रव्य संग्रह करके सयत्न से देवाधिदेव श्रीनारार यण की पूजा करे ॥२६५॥

अतएव हयशीर्ष पञ्चरात्र में भगवान् हयग्रीव ने कहा है—प्राण त्याग अथवा शिरश्छेद भी वरणीय है, तथापि यावज्जीवन प्रतिष्ठित भगवद् अर्च्चामूर्त्ति की पूजा का त्याग करना उचित नहीं है। पूजा करनी ही होगी ॥२६६॥

इतिपूर्व में नैवेद्य भक्षण विषय में एवं पूजा की नित्यता विषय में, तथा प्रसङ्गतः शालग्राम चक्र की महिमा कथित हुई है ॥२६७॥

पूजाङ्गानाञ्च माहात्म्यं यद्यद्विलिखितं पुरा । तत् सर्व्वमिह पूजायां पर्य्यवस्यति हि स्वतः ॥२६८

पूजामहिममत्तेभाः शास्त्रारण्यविहारिणः । कीटेन कति संग्राह्याः प्रभावं श्रीहरेर्विना ॥२६९

अथ श्रीभगवन्नाम सदा सेवेत सर्व्वतः । तन्माहात्म्यञ्च विख्यातं संक्षेपेणात्र लिख्यते ॥२७०

अथ श्रीभगवन्नाम-माहात्म्यम्

तत्र श्रीभगवन्नामविशेषस्य च सेवनम् । ऋषिभिः कृपयादिष्टं तत्तत-कामहतात्मनाम ॥२७१

पूजाङ्गानां तत्तदुपचारसमर्पणादीनाम; स्वत एव पर्य्यवस्यति पूजाया एव माहात्म्यमिति ज्ञेयमित्यर्थः, अङ्गानां माहात्म्येनाङ्गिन एव माहात्म्यापत्तेः । एवं सर्व्वस्यैव पूजाङ्गत्वात् तत्तन्माहात्म्यं सर्व्वमेव पूजाया माहात्म्यमिति भावः ॥२६८॥

एवमनन्तान्येव पूजामाहात्म्यवचनानि ज्ञानक्रियाशक्तिहीनेन मया कति लिखितुं शक्यन्ते ? यच्च तत्र किञ्चित् लिखितं, तत श्रीभगवन्महिम्नैवेति निजोद्धत्यं परिहरन् पूजाया माहात्म्यविशेषं दर्शयति—पूजेति; पूजाया महिमान एव मत्तेभा मत्तहस्तिनः दुर्ग्रहत्वात; कथम्भूताः ? शास्त्राण्येवारण्यानि, अर्थतः शब्दतश्चानन्त्येन परमदुर्गमत्वात्, तेषु विहर्त्तुमितस्ततः सर्व्वत्र क्रीडितुं शीलं येषां ते । अतएव कीटतुल्येन परमासमर्थेन जनेन कति संग्राह्याः, संग्रहीतुं शक्याः ? श्रीहरेः प्रभावं विनेति, तेनैव संग्राह्या भवन्ति, नान्येनेत्यर्थः । अत्र च यथा वनान्तर्वर्त्तिनो मत्तगजाः कीटेन संग्राह्या न भवन्ति, किन्तु सिंहस्यैव शक्तचा भवन्तीति दृष्टान्तः स्पष्ट एव ॥२६९॥

एवं पूजामाहात्म्यं लिखित्वा 'मधुरेण समापयेत्' इति न्यायेनान्ते नाम-माहात्म्यं लिखन् तत्रादौ ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थानतो नक्तं शयनपर्य्यन्ते निजकर्म्मणि, तथा श्रीभगवतः प्रबोधनतो नक्तं स्थापनपर्य्यन्ते सेवाप्रकारे च, सर्व्वत्रैव विघ्ननिवारकतया न्यूनसंपूर्त्तिकारकत्वेन पूजाङ्गतया, तथा सर्व्वकर्म्मणां गुणविशेषापादकतया, तथा स्वतः परमफलरूपतया, चादौ मध्ये अन्ते च श्रीभगवन्नाम-कीर्त्तनं कुर्य्यादिति लिखति—अथेति, आनन्तर्य्ये मङ्गले वा । सर्व्वतः सर्व्वत्र सर्व्वथा सर्व्वार्थञ्चेत्यर्थः । एवं कालविशेषकृतकृत्यताद्यभावात सर्व्वोपरिपोषकत्वाच्चाप्यन्ते लिखनमिति भावः ॥२७०॥

तत्रादौ नामविशेषस्य माहात्म्यं विशेषतो लिखति—तत्रेति । तेन तेनाग्रे लेख्येन कामेन हत आत्मा चित्तं येषां तेषामादिष्टं तान् प्रति ज्ञापितम; ननु महाफलं भगवन्नामसेवनं सर्व्वज्ञैः ऋषिभिस्तत्तत् तुच्छफलार्थ किमित्यादिष्टम् ? तत्र लिखति—कृपयेति । तेनैव शीघ्रं सम्यक् कृततत्तत्सिद्धेः; यद्वा, तत्तत्कामेनापि कथञ्चित्तेषां तत्र प्रवृत्त्यर्थमिति दिक् ॥२७१॥

पहले पूजाङ्ग समूह के माहात्म्य सम्बन्ध में जो जो लिखा गया है, यहाँ वह सब स्वयं ही पूजा में पर्य्यवसित हुआ । अर्थात् उस सभी माहात्म्य को पूजा का माहात्म्य जानना चाहिये ॥२६८॥

श्रीहरि की अनुकम्पा व्यतीत, कीट तुल्य सामान्य व्यक्ति, शास्त्रारण्य विहारी तदीय माहात्म्य रूप मत्तमातङ्ग को कैसे आयत्त में कर सकता है ? अर्थात् वन्य मत्तगज जिस प्रकार सिंह का आक्रमण प्रभाव से निरस्त होता है, किन्तु कीटकुल उसके प्रति प्रभाव प्रकाशित करने में सक्षम नहीं होते हैं, उस प्रकार कीटतुल्य सामान्य व्यक्ति मैं हूँ, कृपामय श्रीहरि कृपा व्यतीत कभी भी उनके माहात्म्य परिचायक वचन संग्रह करना मेरे पक्ष में असम्भव है ॥२६९॥

अतएव सार कथा यह है कि—सर्वथा सर्वदा श्रीभगवन्नाम स्मरण करना कर्त्तव्य है, यद्यपि नाम-माहात्म्य अति विस्तृत एवं विख्यात है, तथापि यहाँ पर संक्षेप से लिखित हो रहा है ॥२७०॥

अथ श्रीभगवन्नाम-माहात्म्यम्

कामना के वशीभूत होकर जिन्होंने निज निज चित्त को दूषित किया है, उनके निमित्त ऋषिगण

अथ कामविशेषेण श्रीभगवन्नामविशेष-सेवा-माहात्म्यम्

तत्र पापक्षयार्थं कौर्म्मे—

श्रीशब्दपूर्व्वं जयशब्दमध्यं, जयद्वयादुत्तरतस्तथा हि।
त्रिःसप्तकृत्वो नरसिंहनाम, जप्तं निहन्त्यदपि विप्रहत्याम् ॥२७२॥

महाभयनिवारणार्थं तत्रैव—

श्रीपूर्व्वो नरसिंहो द्विर्जयादुत्तरतस्तु सः। त्रिःसप्तकृत्वो जपतस्तु महाभयनिवारणः ॥२७३॥

कालविशेषे तु मङ्गलार्थं विष्णुधर्म्मोत्तरे श्रीमार्कण्डेय-वज्र-संवादे—

पुरुषं वामदेवञ्च तथा सङ्कर्षणं विभुम्। प्रद्युम्नमनिरुद्धञ्च क्रमादब्देषु कीर्त्तयेत् ॥२७४॥
बलभद्रन्तथा कृष्णं कीर्त्तयेदयनद्वये। माधवं पुण्डरीकाक्षं तथा वै भोगशायिनम् ॥२७५॥
पद्मनाभं हृषीकेशं तथा देवं त्रिविक्रमम्। क्रमेण राजशार्द्दूल वसन्तादिषु कीर्त्तयेत ॥२७६॥
विष्णुञ्च मधुहन्तारं तथा देवं त्रिविक्रमम्। वामनं श्रीधरञ्चैव हृषीकेशं तथैव च ॥२७७॥
दामोदरं पद्मनाभं केशवञ्च यदूत्तमम्। नारायणं माधवञ्च गोविन्दञ्च तथा क्रमात् ॥२७८॥

जयशब्दयोर्मध्यम्, अन्तर्व्वर्त्ति जय नरसिंह जयेति। जयद्वयादुत्तरतः जय जय नरसिंहेति, नरसिंहस्य नाम नरसिंहेति नाम वा ॥२७२॥

स नरसिंहः द्विर्वारद्वयं यत् जयेति तस्मादुत्तरतश्च जय जय नरसिंहेति। पाठान्तरेऽपि स एवार्थः ॥२७३॥

पुरुषादीन् पञ्च अब्देषु संवत्सरादि-भेदेन पञ्चसु क्रमात् कीर्त्तयेत्। पञ्चाब्दाश्चोक्ता ब्रह्मवैवर्त्ते—'संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः। इडावत्सरस्तृतीयश्चतुर्थश्चानुवत्सरः। उद्वत्सरः पञ्चमस्तु कालस्य युगसंज्ञितः ॥' इति। यद्यप्यत्राग्रे च फलं विशेषतो न श्रूयते, तथाप्यन्ते वरदस्येत्युक्त्या तथा सर्व्वार्थसिद्धिमाप्नोतीत्याद्युक्त्या च सामान्यतः फलं महदस्तीति ज्ञेयमेव ॥२७४॥

माधवादीन् षट्सु वसन्तादि-षड़्ऋतुषु क्रमेण कीर्त्तयेत् ॥२७५-२७६॥

विष्णवादीन् द्वादश चैत्रादि-द्वादशमासेषु क्रमादनुस्मरेत्। तत्र च यदूत्तममिति विशेषणं ज्ञेयम्, अन्यथा

करुणा करके श्रीभगवान् के नाम के सम्बन्ध में एवं सेवा के सम्बन्ध में जो निर्देश दिये हैं, तत्तत् कामना का विवरण को प्रथम लिखकर निर्दिष्ट विषय सूचित हो रहा है ॥२७१॥

अथ कामविशेषेण श्रीभगवन्नामविशेष-सेवा-माहात्म्यम्

कूर्मपुराण में पाप क्षय के निमित्त श्रीभगवन्नाम सेवा के सम्बन्ध में लिखित है—प्रथम श्री शब्द, जयद्वय के मध्यस्थ एवं जयद्वय के उत्तर श्रीनृसिंह, जय नृसिंह जय, एवं जय जय नृसिंह, इस प्रकार एकविंशति वार नरसिंह नाम जप करने से ब्रह्म हत्या पातक विनष्ट होता है ॥२७२॥

उक्त पुराण में महाभय निवारण हेतु कथित है—"श्रीनृसिंह जय जय नरसिंह", इस प्रकार एकविंशति वार जप करने से महाभय विदूरित होता है ॥२७३॥

काल विशेष में मङ्गल हेतु विष्णुधर्मोत्तर के मार्कण्डेय-वज्र-संवाद में लिखित है—पुरुष, वामदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध, यह सब नाम क्रमानुसार पाँच वर्ष काल पर्य्यन्त कीर्त्तन करे। उत्तर एवं दक्षिणायन में बलभद्र एवं कृष्ण नाम कीर्त्तन करे, माधव, पुण्डरीकाक्ष, भोगशायी, पद्मनाभ, हृषीकेश एवं त्रिविक्रम यह छः नाम, हे राजशार्दूल! क्रमशः वसन्तादि छः ऋतुओं में कीर्त्तन करते रहें ॥२७४-२७६॥

विष्णु, मधुहन्ता, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, दामोदर, पद्मनाभ, यदुपति, केशव, नारायण, माधव एवं गोविन्द यह द्वादश नाम चैत्रादि द्वादश मास में कीर्त्तन करे। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नामद्वय

चैत्रादिषु च मासेषु देवदेवमनुस्मरेत् । प्रद्युम्नमनिरुद्धञ्च पक्षयोः कृष्ण-शुक्लयोः ॥२७९॥
सर्व्वः शर्व्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः । आदित्यादिषु वारेषु क्रमादेवमनुस्मरेत् ॥२८०
विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः । भूतभृत् भूतकृत् भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥२८१
अव्यक्तः पुण्डरीकाक्षो विश्वकर्म्मा शुचिश्रवाः । सद्भावो भावनो भर्त्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥२८२
अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः । अग्राह्यः शाश्वतो धाता कृष्णश्चैतान्यनुस्मरेत् ।

देवदेवस्य नामानि कृत्तिकादिषु यादव ॥२८३॥
ब्रह्माणं श्रीपतिं विष्णुं कपिलं श्रीधरं प्रभुम् ।
दामोदरं हृषीकेशं गोविन्दं मधुसूदनम् ॥२८४॥

भूधरं गदिनं देवं शङ्खिनं पद्मिनन्तथा । चक्रिणञ्च महाराज प्रथमादिषु संस्मरेत् ॥२८५॥

सर्व्वं वा सर्व्वदा नाम देवदेवस्य यादव ॥२८६॥

नामानि सर्व्वाणि जनार्द्दनस्य, कालश्च सर्व्वः पुरुषप्रवीरः ।
तस्मात् सदा सर्व्वगतस्य नाम, ग्राह्यं यथेष्टं वरदस्य राजन् ॥२८७॥

त्रयोदश स्युः । यदूत्तमेति वा पाठः । ततश्च सम्बोधनं, हे वज्रेति । यद्वा, कदाचित् मलमासे सति त्रयोदश मासा भवन्ति, तदपेक्षया यदूत्तमेन सह त्रयोदशेति ज्ञेयम् ॥२७७-२८०॥

विश्वमित्यादीनि सप्तविंशति नामानि कृत्तिकादिषु सप्तविंशतिनक्षत्रेषु क्रमादेवानुस्मरेत् ॥२८१-२८३॥

प्रथमा तिथिः प्रतिपत्, तदादिषु पञ्चदशतिथिषु ब्रह्मादीन् पञ्चदश क्रमेणैव संस्मरेत् ॥२८४-२८५॥

ननु चिन्तामणेरिव सर्व्वस्यापि भगवन्नाम्नः समानफलं श्रूयते, तत् किं विशेषनिर्द्देशतो माहात्म्य-सङ्कोचापादनेन ? सत्यम्, अत्यन्तकामाद्युपहतचित्तानां श्रद्धासम्पत्तये तथोक्तम् । वस्तुतस्तु सर्व्वदा सर्व्वमेव नाम सेव्यमित्याह—सर्व्वमिति । संस्मरेदिति पूर्व्वया क्रियया ग्राह्यमिति परया वा सम्बन्धः । तदेव सहेतुकमाह—नामानीति ॥२८६-२८७॥

कृष्ण एवं शुक्ल पक्ष में क्रमशः कीर्त्तन करे । आदित्यादि सप्तवार में सर्व, सर्वशिव, स्थाणु, भूत, आदि, निधि एवं अव्यय यह सप्तनाम स्मरण करना चाहिये ॥२७७-२८०॥

हे यादव ! विश्व, विष्णु, वषट्कार, भूत भव्य भवत् प्रभु, भूतभृद्, भूतकृत्, भाव, भूतात्मा, भूतभावन, अव्यक्त, पुण्डरीकाक्ष, विश्वकर्मा, शुचिश्रवा, सद्भाव, भावन, भर्त्ता, प्रभव, प्रभु, ईश्वर, अप्रमेय, हृषीकेश, पद्मनाभ, अमरप्रभु, अग्र ह्य, शाश्वत, धाता एवं कृष्ण, इन सब भगवन्नामों की चिन्ता कृत्तिकादि सप्तविंशति नक्षत्र में करे ॥२८१-२८३॥

हे महाराज ! प्रतिपत् से आरम्भ कर पूर्णिमा अथवा अमावस्या तिथि में ब्रह्मा, श्रीपति, विष्णु, कपिल, श्रीधर, प्रभु, दामोदर, हृषीकेश, गोविन्द, मधुसूदन, भूधर, गदी, शङ्खी, पद्मी एवं चक्री, यह कतिपय नाम की भावना करे ॥२८४-२८५॥

हे यादव ! देवदेव श्रीविष्णु के नामसमूह का चिन्तन सर्वदा समस्त विषयों में करना चाहिये । हे राजन् ! जनार्दन का नाम कीर्त्तन करना सर्वदा कर्त्तव्य है । कारण, उनका नाम कीर्त्तन करने से समस्त समय एवं मानव श्रेष्ठ होते हैं । अतएव सर्वदा सर्वगत वरद भगवान् का नाम यथेष्ट ग्रहण करना चाहिये । ॥२८६॥

विविध कामना सिद्धि हेतु भगवन्नाम सेवा के सम्बन्ध में पुलस्त्य की उक्ति यह है—काम, कामप्रद,

विविधकामसिद्धये च तुलस्त्योक्तौ—

कामः कामप्रदः कान्तः कामपालस्तथा हरिः। आनन्दो माधवश्चैव कामसंसिद्धये जपेत् ॥२८८॥
रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च। विक्रमश्चैवमादीनि जप्यान्यरिजिगीषुभिः ॥२८९॥
विद्यामभ्यस्यता नित्यं जप्तव्यः पुरुषोत्तमः। दामोदरं बन्धगतो नित्यमेव जपेन्नरः ॥२९०॥
केशवं पुण्डरीकाक्षमनिशं हि तथा जपेत्। नेत्रबाधासु सर्व्वासु हृषीकेशं भयेषु च ॥२९१॥
अच्युतञ्चामृतञ्चैव जपेदौषधकर्म्मणि। संग्रामाभिमुखो गच्छन् संस्मरेदपराजितम् ॥२९२॥

चक्रिणं गदिनञ्चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं तथा।
क्षेमार्थी प्रवसन्नित्यं दिक्षु प्राच्यादिषु स्मरेत् ॥२९३॥

अजितञ्चाधिपञ्चैव सर्व्वं सर्व्वेश्वरन्तथा। संस्मरेत् पुरुषो भक्त्या व्यवहारेषु सर्व्वदा ॥२९४॥
नारायणं सर्व्वकालं क्षुतप्रस्खलनादिषु। ग्रहनक्षत्रपीड़ासु देवबाधासु सर्व्वतः ॥२९५॥
दस्युवैरिनिरोधेषु व्याघ्रसिंहादिसङ्कटे। अन्धकारे तमस्तीव्रे नरसिंहमनुस्मरेत् ॥२९६॥
अग्निदाहे समुत्पन्ने संस्मरेज्जलशायिनम्। गरुड़ध्वजानुस्मरणाद्विषवीर्य्यं व्यपोहति ॥२९७॥

काम इत्यादि-नामानि जपेत् ॥२८८॥
नेत्रबाधासु—चक्षुःपीड़ासु ॥२९१॥
प्रवसन् विदेशं गच्छन् चक्रादीन् चतुरः प्राच्यादिचतुर्दिक्षु क्रमात् स्मरेत् ॥२९३॥
व्यवहारेषु—वाणिज्यादिषु ॥२९४॥
देवबाधासु—अतिवृष्ट्यादिषु ॥२९५॥

कान्त, कामपाल, हरि, आनन्द एवं माधव, यह कोई नाम कामनासिद्धिहेतु जप करना चाहिये ॥२८७-२८८॥

शत्रु जयाभिलाषी व्यक्ति के पक्ष में राम, परशुराम, नृसिंह, विष्णु एवं त्रिविक्रम—इन कोई नामों का जप करना कर्त्तव्य है ॥२८९॥

विद्याभ्यास में रत व्यक्ति के पक्ष में नित्य पुरुषोत्तम नाम जप करना चाहिये। बन्धनग्रस्त मनुष्य के पक्ष में दामोदर नाम नित्य जप्य है। केशव एवं पुण्डरीकाक्ष नाम भी तद्रूप सतत जप करना चाहिये, एवं सर्वविध चक्षुः पीड़ादि में एवं भय में हृषीकेश का नामोच्चारण करे ॥२९०-२९१॥

औषध सेवन में अच्युत एवं अमृत नाम जप करे। युद्ध यात्रा के समय अपराजित नाम की चिन्ता करे ॥२९२॥

जो मानव, पूर्वादि चतुर्दिक में गमनोद्यत हैं, मङ्गलकामी उन व्यक्ति के पक्ष में क्रमशः चक्री, गदी, शार्ङ्गी एवं खड्गी नाम जप्य है ॥२९३॥

वाणिज्य में उन्नतिकामी मानव, सर्वदा भक्तिपूर्वक अजित, अधिप, सर्व एवं सर्वेश्वर नाम जप करें। हुचकी अथवा स्खलित होने पर अथवा ग्रह-नक्षत्र पीड़ा काल में अथवा अतिवृष्टि अनावृष्टि प्रभृति उपद्रव के समय सर्वतोभावेन श्रीनारायण की चिन्ता करे ॥२९४-२९५॥

दस्यु एवं शत्रु प्रभृति के आक्रमण के समय, सिंह व्याघ्रादि सङ्कट उपस्थित होने पर, तीव्रतम एवं घोर अन्धकार में नरसिंह नाम स्मरण करे। अग्निदाह उपस्थित होने पर जलशायी विष्णु का स्मरण करे गरुड़ध्वज का स्मरण करने से विषवीर्य्य विनष्ट होता है ॥२९६-२९७॥

स्नाने देवार्च्चने होमे प्रणिपाते प्रदक्षिणे । कीर्त्तयेद्भगवन्नाम वासुदेवेति तत्परः ॥२९८॥
स्थापने वित्तधान्यादेरपध्याने च दुष्टजे । कुर्व्वीत तन्मना भूत्वा अनन्ताच्युत-कीर्त्तनम् ॥२९९
नारायणं शार्ङ्गधरं श्रीधरं पुरुषोत्तमम् । वामनं खड्गिनञ्चैव दुष्टस्वप्ने सदा स्मरेत् ॥३००
महार्णवादौ पर्य्यङ्कशायिनञ्च नरः स्मरेत् । बलभद्रं समृद्धयर्थं सर्व्वकर्म्मणि संस्मरेत् ॥३०१
जगत्पतिमपत्यार्थं स्तुवन् भक्त्या न सीदति । श्रीशं सर्व्वाभ्युदयिके कर्म्मण्याशु प्रकीर्त्तयेत् ॥३०२
अरिष्टेषु ह्यशेषेषु विशोकञ्च सदा जपेत् । मरुप्रपाताग्निजल-बन्धनादिषु मृत्युषु ।
स्वतन्त्र-परतन्त्रेषु वासुदेवं जपेद्बुधः ॥३०३॥
सर्व्वार्थशक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः । यथाभिरोचते नाम तत् सर्व्वार्थेषु कीर्त्तयेत् ॥३०४
सर्व्वार्थसिद्धिमाप्नोति नाम्नामेकार्थता यतः ।
सर्व्वाण्येतानि नामानि परस्य ब्रह्मणो हरेः ॥३०५॥

एवं विष्णुधर्म्मोत्तरे च मार्कण्डेयवज्र-संवादे, किञ्च—

कूर्म्मं वराहं मत्स्यं वा जलप्रतरणे स्मरेत् । भ्राजिष्णुमग्निजनने जपेन्नाम त्वखण्डितम् ॥३०६॥

दुष्टजेऽपध्याने—दुष्टजनचिन्तितानिष्टे ॥२९९॥

मरुर्निर्ज्जलदेशस्तस्मिन् प्रपातः अकस्मात् गमनम् । मरुदिति पाठे वात्यासु तदादिषु मृत्युषु मरणहेतुषु; कथम्भूतेषु ? स्वतन्त्र-परतन्त्रेषु स्वाधीन-पराधीनेषु स्वतःप्राप्तेषु परैर्वा प्रापितेषु ॥३०३॥

यस्य च यन्नाम्नि प्रीतिः, तेन तदेव सेव्यं, तेनैव तस्य सर्व्वार्थसिद्धिरित्याह— सर्व्वार्थेति द्वाभ्याम् ॥३०४-३०५

अखण्डितम्—अविच्छिन्नम् ॥३०६॥

एकान्त भगवदनुरक्त व्यक्ति, स्नान, देवपूजा, होम, प्रणिपात एवं प्रदक्षिणा के समय भगवान् वासुदेव नाम स्मरण करें ॥२९८॥

दुष्टजन के द्वारा आक्रमण की सम्भावना होने से, एवं धन धान्यादि स्थापन के समय, अनन्त अच्युत नाम कीर्त्तन करना चाहिये । दुःस्वप्न दर्शन होने से, सर्वदा नारायण, शार्ङ्गधर, श्रीधर, पुरुषोत्तम, वामन खड्गधारी नाम कीर्त्तन करना चाहिये ॥२९९-३००॥

मनुष्य, महासमुद्र प्रभृति में अवस्थित होने पर पर्य्यङ्कशायी का स्मरण करे, समृद्धि लाभ हेतु समस्त कार्य्य में बलभद्र की भावना करे । पुत्र लाभ की इच्छा होने पर भक्तिपूर्वक जगत्पति का स्तव करने से विपद् में गिरना नहीं पड़ता है । सर्वविध माङ्गलिक कर्म में श्रीश भगवान् का नाम सत्वर कीर्त्तन करना चाहिये ॥३०१-३०२॥

अशेष विघ्न उपस्थित होने पर विशोक नाम जप करे । दैवात् निर्जल प्रदेश में गमन होने पर, अग्नि, जल एवं बन्धन निबन्धन मृत्युभय उपस्थित होने पर स्वाधीन अथवा पराधीन अवस्था में किसी प्रकार विपद् उपस्थित होने पर पण्डित व्यक्ति के पक्ष में वासुदेव नाम जप करना उचित है ॥३०३॥

भगवात् देवदेव चक्रधारी सर्वार्थ शक्ति विशिष्ट हैं, अतएव यथाभिरुचि उनके नामसमूह का कीर्त्तन विषय सिद्धि हेतु करना चाहिये । परब्रह्म श्रीहरि के नामसमूह एकार्थ बोधक हैं । सुतरां समस्त नाम से ही सर्वार्थ सिद्धि होती है ॥३०४-३०५॥

इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तर के मार्कण्डेय वज्र-संवाद में वर्णित है— जल सन्तरण के समय, कूर्म, वराह एवं मत्स्य नाम स्मरण करे । अग्निदाह उपस्थित होने से श्रीविष्णु नाम अविच्छिन्न भाव से जप करे ॥३०६

गरुड़ध्वजानुस्मरणादापदो मुच्यते नरः । ज्वरजुष्टशिरोरोग-विषवीर्य्यञ्च शाम्यति ॥३०७॥

बलभद्रन्तु युद्धार्थी कृष्यारम्भे हलायुधम् । उत्तारणं वाणिज्यार्थी राममभ्युदये नृप ॥३०८॥

माङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं माङ्गल्येषु च कीर्त्तयेत् । उत्तिष्ठन् कीर्त्तयेद्विष्णुं प्रस्वपन् माधवं नरः ।
भोजने चैव गोविन्दं सर्व्वत्र मधुसूदनम् ॥३०९॥

तत्रैवान्यत्र—

औषधे चिन्तयेद्विष्णुं भोजने च जनार्द्दनम् । शयने पद्मनाभञ्च मैथुने च प्रजापतिम् ॥३१०॥

संग्रामे चक्रिणं क्रुद्धं स्थानभ्रंशे त्रिविक्रमम् । नारायणं वृषोत्सर्गे श्रीधरं प्रियसङ्गमे ।
जलमध्ये तु वाराहं पावके जलशायिनम् ॥३११॥

कानने नरसिंहञ्च पर्व्वते रघुनन्दनम् । दुःस्वप्ने स्मर गोविन्दं विशुद्धौ मधुसूदनम् ।
मायासु वामनं देवं सर्व्वकार्य्येषु माधवम् ॥३१२॥

किञ्च—

कीर्त्तयेद्वासुदेवञ्च अनुक्तेष्वपि यादव । कार्य्यारम्भे तथा राजन् यथेष्टं नाम कीर्त्तयेत् ॥३१३

सर्व्वाणि नामानि हि तस्य राजन्, सर्व्वार्थसिद्धयै तु भवन्ति पुंसः ।
तस्माद्-यथेष्टं खलु कृष्णनाम, सर्व्वेषु कार्य्येषु जपेत भक्त्या ॥३१४॥

ज्वरादीनां वीर्य्यं प्रभावश्च शाम्यति ॥३०७॥

विशुद्धौ—शुद्धिविशेषार्थम् ॥३१२॥

गरुड़ध्वज की चिन्ता करने से मनुष्य आपद् के हाथ से रक्षा पाता है, एवं नाम प्रभाव से आशु शिरोरोग एवं विषवीर्य्य से छुटकारा पाता है ॥३०७॥

हे नृप ! इस प्रकार युद्धार्थी व्यक्ति को बलभद्र, कृष्यारम्भ में हलायुध, वाणिज्य अभिलाषी व्यक्ति को उत्तारण, एवं अभ्युदय, भाग्योदय की कामना करने वाले को राम नाम का स्मरण करना चाहिये। मङ्गल कार्य्य में मङ्गलप्रद मङ्गलमय श्रीविष्णु का स्मरण करे, उत्थान समय में विष्णु, शयन समय में माधव, भोजन समय में गोविन्द एवं सर्वत्र मधुसूदन नाम कीर्त्तन करना उचित है ॥३०८-३०९॥

उक्त ग्रन्थ के अन्यत्र लिखित है—औषध सेवन में विष्णु, भोजन में जनार्दन, शयन में पद्मनाभ, विवाह में प्रजापति, रण में क्रुद्ध चक्री, स्थान भ्रंश में त्रिविक्रम, वृषोत्सर्ग में नारायण, प्रियमिलन में श्रीधर, जल मध्य में वराह, अनल में जलशायी की चिन्ता करे। कानन में नरसिंह, पर्वत में रघुनन्दन, दुःस्वप्न में गोविन्द, शुद्धि कार्य्य में मधुसूदन, मायादि में वामन, एवं समस्त कार्य्य में माधव की चिन्ता करे ॥३१०-३१२॥

और भी लिखित है—हे यादव ! जो सब विषय लिखित नहीं हुये हैं, उन सब विषयों में 'वासुदेव' का नाम कीर्त्तन करे। हे राजन् ! समस्त कार्य्यारम्भ में ही भगवन्नाम यथेष्ट कीर्त्तन करना चाहिये। हे नृप ! भगवान् श्रीकृष्ण के सकल नाम ही लोकों को समस्त कार्य्यों में सिद्धि प्रदान करते हैं। एतज्जन्य समस्त कार्य्य में ही भक्ति पूर्वक श्रीकृष्णनाम कीर्त्तन यथेष्ट करना चाहिये ॥३१३-३१४॥

तत्राखिलपापोन्मूलनत्वम्, अथ सामान्यतः श्रीभगवन्नामकीर्त्तन-माहात्म्यम्

विष्णुधर्म्मे हरिभक्तिसुधोदये चोक्तं नारदेन—

अहो सुनिर्म्मला यूयं रागो हि हरिकीर्त्तने। अविधूय तमः कृत्स्नं नृणां नोदेति सूर्य्यवत्॥३१५

गारुड़े—

पापानलस्य दीप्तस्य मा कुर्व्वन्तु भयं नराः। गोविन्दनाममेघौघैर्नश्यते नीरविन्दुभिः॥३१६॥

अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्व्वपातकैः। पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव॥३१७॥

यन्नामकीर्त्तनं भक्त्या विलापनमनुत्तमम्। मैत्रेयाशेषपापानां धातूनामिव पावकः॥३१८॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते॥३१९॥

सुनिर्म्मलाः अत्यन्तमलहीनाः; हि यस्मात् हरिकीर्त्तने रागः श्रद्धा नृणां तमः पापमलं कृत्स्नमविधूय अनिरस्य नोदेति, अपि तु विधूयैवोदेति। यथा सूर्य्योऽन्धकारं सर्व्वं विधूयैवोदेति तद्वत्॥३१५॥

गोविन्दस्य नामैव मेघौघास्तैर्ये नीरविन्दवस्तैर्हेतुभिर्नश्यते नश्यति॥३१६॥

अवशेनापि यदृच्छयापि यस्य नाम्नि कीर्त्तिते सति यथा अकस्मादागतं सिंहं दृष्ट्वा त्रस्ता हरिणमवरुन्धन्तो वृकास्तं विसृज्य पलायन्ते तद्वत्। यद्वा, मृगयार्थं वनं प्रविष्टः कश्चित् पुमान् वृकैरावृतोऽकस्मादागतं सिंहं दृष्ट्वा त्रस्तैस्तैर्यथासौ विमुच्यते तद्वदिति॥३१७॥

भक्त्या तत्कीर्त्तनफलमाह—यन्नामेति। द्वादशाब्दादिप्रायश्चित्तैः पापमेव विनश्यति, तत्संस्कारस्त्ववशिष्यते, इदं त्वशेषाणां संस्काराणां पापानां विलापनं विनाशकं, न चान्येन निःशेषपापक्षयः स्यादिति दृष्टान्तेनाह—यथा धातूनां सुवर्णादीनामुद्वर्त्तनप्रक्षालनादि धात्वन्तरसंयोगजं मलं न नाशयति, किन्तु पावक एव, अतः सर्व्वोत्तममिदमेवेत्यर्थः॥३१८॥

हरिकीर्त्तनमात्रेण सर्व्वपापक्षयो भवतीति यदुक्तं, तत् कैमुतिकन्यायेनोपपादयन्ति—यस्मिन्निति। न्यस्ता निक्षिप्ता मतिर्येन अच्युतैकचित्त इति यावत्, स प्रमादादिकृतैरघैर्नरकं न याति, तस्मिन्नघसंश्लेषासम्भवात्। यस्य चिन्तने ध्याने क्रियमाणे स्वर्गप्राप्तिरपि विघ्नप्राया; यस्मिन्निवेशित आत्मा मनश्च सर्मा(?)धना येन तस्य ब्रह्मलोकोऽप्यतितुच्छः; तस्माद्यथाकथञ्चिदपि यश्चेतसि स्थितः अतएव निर्म्मलधियाम्; यद्वा, अकारप्रश्लेषं विना मलिनमतीनामपि मुक्तिमपि ददाति। यदैवं स्वैकहितकारिणां स्मृतिमात्रेणाच्युतनिष्ठानामीदृशं फलगौरवं, तदा तन्नामकीर्त्तनेन परेषामप्यघं क्षपयतां स्वकीयाघनाशः किं चित्रमित्यर्थः। अघ इति प्रथमान्त-पाठे पापोऽपि जनः, विलयं मोक्षम्, अन्यत् समानम्। एवञ्च सति मुक्ति-प्रदत्वेऽयं श्लोको द्रष्टव्यः॥३१९॥

तत्राखिलपापोन्मूलनत्वम्, अथ सामान्यतः श्रीभगवन्नामकीर्त्तन-माहात्म्यम्

विष्णुधर्म में एवं हरिभक्तिसुधोदय में श्रीनारद ने कहा है—अहो ! तुम सबके अन्तःकरण विशुद्ध हैं, कारण, श्रीहरि-कीत्तन में तुम सबका प्रबल अनुराग दृष्ट हो रहा है। सूर्य्य उदित होने पर जिस प्रकार अन्धकार विदूरित होता है, उस प्रकार श्रीहरि-कीर्त्तन प्रभाव से मनुष्यवृन्द का समस्त तमः विनष्ट होते हैं।॥३१५॥

गरुड़पुराण में वर्णित है—हे मानववृन्द ! दीप्त पापानल को देखकर तुम सब न डरो, क्योंकि जिस प्रकार मेघराशि की जलबिन्दु से अग्नि निर्वापित होता है, अग्नि बुझ जाती है, उस प्रकार गोविन्दरूप

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

सायं प्रातस्तथा कृत्वा देवदेवस्य कीर्त्तनम् । सर्व्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥३२०॥

वामने—

नारायणो नाम नरो नराणां, प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम् ।
अनेकजन्मार्ज्जितपापसञ्चयं, हरत्यशेषं श्रुतमात्र एव ॥३२१॥

स्कान्दे—

गोविन्देति तथा प्रोक्तं भक्त्या वा भक्तिवर्ज्जितैः ।
दहते सर्व्वपापानि युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥३२२॥

गोविन्दनाम्ना यः कश्चिन्नरो भवति भूतले । कीर्त्तनादेव तस्यापि पापं याति सहस्रधा ॥३२३

काशीखण्डे—

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथाऽनलकणो दहेत् । तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम् ॥३२४॥

नारायण इति नरश्चेति नाम; यद्वा, हे नरः, भो जनाः, नामस्वरूपो नारायणः; यद्वा, नारायणनामा नर इत्यर्थः ॥३२१॥

तथात्वमेव व्यञ्जयति—भक्त्या वा प्रोक्तं भक्तिवर्ज्जितैर्जनैर्वाऽभक्त्या प्रोक्तमिति ॥३२२॥

वारिधर के वारिपतन से पापाग्नि निर्वापित हो जाता है। जिस प्रकार सिंह दर्शन से भीत व्याघ्र सत्वर मृगसमूह को परित्याग पूर्वक प्रस्थान करता है, उस प्रकार अवश अवस्था में भी गोविन्द नाम कीर्त्तन होने से पापी पुरुष सर्वविध पापों से मुक्त होते हैं। हे मैत्रेय! जिस प्रकार वह्नि सर्वविध धातुमल शोधक है, उस प्रकार स्वभक्ति कृष्णनाम कीर्त्तन सर्व पाप विनाशक है। जिसमें मति होने से कदाच नरक गमन नहीं होता है। जिनका चिन्तन होने पर स्वर्ग का प्राप्त होना विघ्न प्रतीत होता है, जिनकी समाधि में ब्रह्मलोक भी तुच्छ प्रतीत होता है, जो अव्यय पुरुष भगवान् अमलमति पुरुषगण के चित्त में स्थित होकर मुक्ति प्रदान करते हैं, उन भगवान् का नाम कीर्त्तन से जो पाप विदूरित होगा, इसमें आश्चर्य्य क्या है?३१६-३१९

विष्णुधर्मोत्तर में लिखित है— प्रातःकाल में, अथवा सायंकाल में मुकुन्द का नाम कीर्त्तन करने से सर्व पापों से मुक्त होकर सुखपूर्वक स्वर्गलोक में वास होता है ॥३२०॥

वामनपुराण में वर्णित है—जिस प्रकार चोर, कार्य्य के प्रभाव से पृथिवी में परिचित होता है, उस प्रकार जगत् में नारायण नाम रूप चोर अतिशय प्रसिद्ध है। सामान्य चोर मनुष्य के अर्थादि अपहरण करता है, किन्तु इस तस्कर का नाम सुनते ही हृदय के अशेष जन्मार्जित समस्तपाप भार निःशेष से अपहृत हो जाते हैं ॥३२१॥

स्कन्दपुराण में वर्णित है—जिस प्रकार युगान्तकालीन अनल समुत्थित होकर विश्व को दग्ध करता है, उस प्रकार भक्तिपूर्वक अथवा अभक्ति पूर्वक गोविन्द नाम उच्चारण करने से सर्व पाप भस्मीभूत होते हैं।

मनुष्यलोक में किसी का नाम 'गोविन्द' होने पर यदि मनुष्य उसको आह्वान करें, तो नामग्रहण से पापराशि सहस्र प्रकार से विदूरित होती हैं ॥३२२-३२३॥

काशीखण्ड में लिखित है—प्रमादवशतः अग्निकण स्पर्श से भी जिस प्रकार शरीर दग्ध होता है, उसके समान हरिनाम ओष्ठपुष्ट में आते ही पाप क्षय होते हैं ॥३२४॥

बृहन्नारदीये लुब्धकोपाख्यानान्ते—

नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम् । एकमेव हरेर्नाम सर्व्वपाप-विनाशनम् ॥३२५॥

अतएव तत्रैव यमेनोक्तम्—

हरि हरि सकृदुच्चरितं, दस्युच्छलेन यैर्मनुष्यैः ।
जननीजठरमार्गलुप्ता, न मम पटलिपि विशन्ति मर्त्याः ॥३२६॥

पाद्मे वैशाखमाहात्म्ये देवशर्म्मोपाख्यानान्ते श्रीनारदोक्तौ—

हत्यायुतं पानसहस्रमुग्रं, गुर्व्वङ्गनाकोटि-निषेवनञ्च ।
स्तेयान्यनेकानि हरिप्रियेण, गोविन्दनाम्ना निहतानि सद्यः ॥३२७॥

अनिच्छयापि दहति स्पृष्टो हुतवहो यथा । तथा दहति गोविन्दनाम व्याजादपीरितम् ॥३२८॥

तत्रैव श्रीयमब्राह्मण-संवादे—

कीर्त्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः । दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव दिनोदये ॥३२९॥

नान्यत् पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्त्तनम् । सर्व्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम ॥३३०॥

षष्ठस्कन्धे (२।७, ९-११) अजामिलोपाख्याने—

अयं हि कृतनिर्व्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि । यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥३३१

हृतं हृतमित्यस्य मध्यदेशे लौकिकी भाषा हरिहरीति । जनन्या जठरस्य मार्गोऽपि लुप्तो येषां ते मुक्ता इत्यर्थः । मम पटलिपि न विशन्ति, मदधिकारं न गच्छन्तीत्यर्थः ॥३२६॥

अनेकानि—विप्रस्वर्णचौर्य्यादीनि ॥३२७॥ व्याजात् पुत्राह्वानादिच्छलादप्युक्तम् ॥३२८॥

सर्व्वपापप्रशमनरूपं प्रायश्चित्तमन्यत् न पश्यामि, अन्यस्य सवासन-पापक्षपणाशक्तेः ॥३३०॥

अयमजामिलः कृतो निर्व्वेशः प्रायश्चित्तं येन, यत् यस्माद्विवशोऽपि हरेर्नाम, व्याजहार उच्चरितवान्; न केवलं प्रायश्चित्तमात्रं हरेर्नाम, अपि तु स्वस्त्ययनं मोक्षसाधनमपि; यद्वा, परममङ्गलायतनमपि ॥३३१॥

बृहन्नारदीय के लुब्धकोपाख्यानान्त में लिखित है—विषयान्ध ममताकुलचित्त मानवगण के पक्ष में हरिनाम कीर्त्तन ही सर्वपाप प्रणाशक है ॥३२५॥

अतएव उक्त ग्रन्थ में यम की उक्ति यह है—जो मनुष्य, छल से 'हरण करता हूँ, हरण करता हूँ' इस अर्थ में एक बार भी हरि-हरि नाम उच्चारण करता है, उसका जननी-जठर-पथ लुप्त होता है, अर्थात् उसको पुनर्वार जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है। एवं उस प्रकार आचरणकारी मर्त्यवृन्द पुनर्वार मेरी पटलिपि के अधिकार में नहीं आते हैं ॥३२६॥

पद्मपुराण के वैशाख-माहात्म्य में देवशर्मोपाख्यान के अन्त में नारदोक्ति में प्रकाश है—सहस्र हत्या, सहस्र उग्र सुरापान, कोटि गुरुपत्नी गमन, एवं अनेक विप्रस्वर्णापहरणादि जनित पापसमूह भी हरिप्रिय गोविन्द नाम ग्रहण से विनष्ट होते हैं ॥ जिस प्रकार अनल का स्पर्श अनिच्छा से होने पर दग्ध होता है,उस प्रकार छल से गोविन्दनाम कीर्त्तन भी पापराशि को दग्ध करता है ॥३२७-३२८॥

उक्त पुराण के श्रीयम-ब्राह्मण-संवाद में लिखित है—अमित प्रभाव सम्पन्न कृष्ण, अथवा विष्णु का नाम ग्रहण करने से सूर्य्योदय से अन्धकार विनाश के समान पाप-राशि विनष्ट होते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! हरि-कीर्त्तन व्यतीत जीवसमूह का सर्व पाप प्रणाशक अन्य प्रायश्चित दिखाई नहीं देता ॥३२९-३३०॥

षष्ठ स्कन्ध के अजामिलोपाख्यान में लिखित है—हे यमकिङ्करगण ! यह अजामिल ने जन्म से असंख्य

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्त्री-राज-पितृ-गो-हन्ता ये च पातकिनोऽपरे ।।३३२

सर्व्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् । नाम-व्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ।।३३३।।

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि,-स्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।

यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै,-स्तदुत्तमःश्लोकगुणोपलम्भकम् ।।३३४।।

(श्रीभा ६।२।१४-१५)—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।३३५।।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः । हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाः ।।३३६।।

ननु कामकृतानां बहूनां महापातकानां सहस्रश आवर्त्तितानां द्वादशाब्दादिकोटिभिरप्यनिर्व्वर्त्यानां कथमिदमेकमेव प्रायश्चित्तं स्यात्? तत्राहुः श्रीविष्णुपार्षदाः—स्तेन इति द्वाभ्याम् । सुनिष्कृतं श्रेष्ठं प्रायश्चित्त-मिदमेव, तत्र हेतुः—यतो नामव्याहरणात् नामोच्चारपुरुषविषया 'मदीयोऽयं मया सर्व्वतो रक्षणीयो नितरा-मनुग्राह्यः' इति विष्णोर्मतिर्भवति ।।३३२-३३३।।

श्रेष्ठत्वमेवोपपादयन्ति—नेति । ब्रह्मवादिभिर्मन्वादिभिरुक्तैर्व्रतादिभिर्निष्कृतैस्तथा न शुध्यति, उदाहृतै-रुच्चारितैर्यथा नामपदैः । इत्यनेन अत्र च नमामीत्यादिक्रियायोगोऽपि नापेक्षित इति दर्शितम् । किञ्च, तन्नामपदोच्चारणमुत्तमःश्लोकगुणानामुपलम्भकं ज्ञापकं भवति, न तु कृच्छ्रचान्द्रायणादिवत् पापनिवृत्ति-मात्रेणापक्षीणमित्यर्थः ।।३३४।।

नन्वयं पुत्रनामाग्रहीत, न तु भगवन्नाम, तत्राहुः—साङ्केत्यं पुत्रादौ सङ्केतितम्; पारिहास्यं परिहासेन कृतं, स्तोभं गीतालापपूरणाद्यर्थे कृतं, हेलनं 'किं विष्णुना' इति सावज्ञमपि वा वैकुण्ठनामोच्चारणम् ।।३३५।।

ननु नायं सङ्कल्पपूर्व्वकं वैकुण्ठनामाग्रहीत, किन्तु पुत्रस्नेहपरवशः सन्, तत्राहुः—पतित इति । अवशेनापि यो हरिरित्याह—स यातना नार्हति, पुमानित्यनेन नात्र वर्णाश्रमादि-नियम इत्युक्तम् । अवशत्वमेवाहुः—पतितः प्रासादादिभ्यः, स्खलितो मार्गे, भग्नो भग्नगात्रः, संदष्टः सर्पादिभिः, तप्तो ज्वरादिना, आहतो दण्डादिना ।।३३६।।

प्राणिहिंसा द्वारा अनेक पाप सञ्चय करने पर भी विवश होकर महास्वस्त्ययन श्रीहरि का नामोच्चारण किया है, सुतरां वह पातकी नहीं है, एवं तुम सबके अधिकार में वह नहीं है । चौर्य्य, सुरापान, मित्रद्रोह, ब्रह्महत्या, गुरुतल्प गमन एवं स्त्री, राजा, पिता, गो-हन्ता प्रभृति जितने पाप हो सकते हैं, उक्त पापाचारी के पक्ष में विष्णु का नाम-कीर्त्तन ही श्रेष्ठ प्रायश्चित्त कीर्त्तित है । कारण, नामोच्चारणकारी की रक्षा प्रभु निज लोक बुद्धि से करते हैं ।।३३१-३३३।।

श्रीहरि के नामोच्चारण से जीव जिस प्रकार शुद्धि लाभ करते हैं, मनु प्रभृति ब्रह्मविद् मुनिगण यद्यपि पाप क्षय के निमित्त प्रायश्चित्त की व्यवस्था किये हैं, किन्तु उससे वैसी शुद्धि नहीं होती है । नामोच्चारण का विशेष फल यह है कि, पाप नाश के सहित उत्तमश्लोक हरि की गुणगरिमा जिस प्रकार प्रकाशित होती है, प्रायश्चित्त में तादृश सामर्थ्य दिखाई नहीं देती है ।।३३४।।

सङ्केत, परिहास, गीतालाप प्रभृति में एवं अवहेलाक्रम से वैकुण्ठ नामोच्चारित होने से अशेष पाप विनष्ट होते हैं । पतित स्खलित भग्नशरीर, सर्पादिदष्ट जराभिभूत किंवा दण्डाहत अवस्था में यदि कोई व्यक्ति अवश होकर 'हरि' यह नाम करता है, तो, उसको यातना भोगनी नहीं पड़ती है ।।३३५-३३६।।

(श्रीभा ६।२।१८)—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तम:श्लोकनाम यत् । संकीर्त्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानल: ।।३३७।।

तत्रैव (श्रीभा ६,१३।८) ऋषीणामुक्तौ—

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाचार्य्यहाघवान् ।
श्वाद: पुक्कशको वापि शुध्येरन् यस्य कीर्त्तनात् ।।३३८।।

लघुभागवते—

वर्त्तमानन्तु यत् पापं यद्भूतं यद्भविष्यति । तत् सर्व्वं निर्दहत्याशु गोविन्दानल-कीर्त्तनात् ।।३३९

सदा द्रोहपरो यस्तु सज्जनानां महीतले । जायते पावनो धन्यो हरेर्नामानुकीर्त्तनात् ।।३४०।।

कौर्म्मे—

वसन्ति यानि कोटिस्तु पावनानि महीतले । न तानि तत्तुलां यान्ति कृष्णनामानुकीर्त्तने ।।३४१

ननु तथापि पापप्रायश्चित्तमिदमिति ज्ञात्वा नोच्चारितमिति चेत्तत्राहु:, यद्वा, कृष्णस्य नामेदम्प्ययं न जानाति कथं तस्य सर्व्वपापक्षय: ? तत्राहु:—अज्ञानादिति । अस्य श्रीविष्णोर्ज्ञानादज्ञानाद्वा, बालकेनाज्ञानादपि प्रक्षिप्तोऽग्निर्यथा काष्ठराशिं दहति, तद्वत् ।।३३७।।

अघवान् अन्योऽपि य: पापकर्म्मयुक्त:, यश्च जात्या पाप: श्वाद:, पुक्कशो वापि ।।३३८।।

गोविन्दस्य अनलवत् यत् कीर्त्तनम् ।।३३९।।

अधुना निष्प्रायश्चित्तो भगवदक्षम्यो भोगैकनाश्यो महानपराधोऽपि नाममाहात्म्यतोऽपयातीत्याह— सदेति । नाम्नोऽनु निरन्तरं कीर्त्तनात् धन्य:, पावन: परमशुद्ध इत्यर्थ:; यद्वा, न केवलं स्वयमेव तत: पवित्रो भवेदिति, किन्तु परानपि पावयति, प्रेमलक्षणभगवद्भक्तिधनयोग्यश्च भवतीति । यद्यपि नामापराधस्तोत्रादौ 'सतां निन्दा नाम्न: परममपराधं वितनुते' इत्यादिना निन्दापि नामापराध उक्त:, किमुत सदा द्रोहपरतेति । अत: परममहदपराधादस्मान्महानरकपात एव 'नाम्नोऽपि सर्व्वसुहृदो ह्यपराधात् पतत्यध:' इत्यादिभिरभिहित:, तथापि तत्रैव 'नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम्' इत्याद्युक्तेर्नामपराणां न कोऽपि दोषो घटते, प्रत्युत भक्तिविशेष एवोदेतीति । अत: सम्यगेवोक्तम्—'जायते पावनो धन्य:' इति ।।३४०।।

अतएव परमपावनत्वं कौर्म्मवचनेन लिखति—वसन्तीति ।।३४१।।

ज्ञानवशत: अथवा अज्ञानवशत: उत्तमश्लोक भगवान् का नाम-कीर्त्तन करने से अनल जिस प्रकार इन्धन को दग्ध करता है, उस प्रकार लोक का पाप भस्मीभूत होता है ।।३३७।।

श्रीमद्भागवत में ऋषिवृन्द की उक्ति है—ब्रह्मघाती, पितृघाती, गोघाती, मातृघाती, आचार्य्यघाती, कुक्कुरभोजी, पुक्कश एवं अन्य पापाचारी व्यक्ति की शुद्धि श्रीकृष्ण नाम-कीर्त्तन से होती है ।।३३८।।

लघु भागवत में लिखित है—वर्त्तमान पाप, अतीतकालीन पाप एवं भविष्यत् काल में जो पाप होगा, समस्त पाप ही भगवान् के नामरूप अग्नि संस्पर्श आशु विनष्ट होते हैं । पृथिवी में सर्वदा सज्जनगण के प्रति द्रोहकारीजन भी श्रीहरिनाम कीर्त्तन से पवित्र होते हैं ।।३३९-३४०।।

कूर्मपुराण में कथित है—भूतल में जो सब कोटि-कोटि पवित्र पदार्थ हैं, कृष्णनाम के निकट उनकी तुल्यता नहीं हो सकती है ।।३४१।।

बृहद्विष्णुपुराणे—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत् कर्त्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥३४२॥

इतिहासोत्तमे—

श्वादोऽपि न हि शक्नोति कर्त्तुं पापानि यत्नतः ।
तावन्ति यावती शक्तिर्विष्णोर्नाम्नोऽशुभक्षये ॥३४३॥

विशेषतः कलौ, स्कान्दे—

तन्नास्ति कर्म्मजं लोके वाग्जं मानसमेव वा । यन्न क्षपयते पापं कलौ गोविन्दकीर्त्तनम् ॥३४४॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

शमायालं जलं वह्नेस्तमसो भास्करोदयः । शान्त्यै कलेरघौघस्य नामसंकीर्त्तनं हरेः ॥३४५॥
नाम्नां हरेः कीर्त्तनतः प्रयाति, संसारपारं दुरितौघमुक्तः ।
नरः स सत्यं कलिदोषजन्म, पापं निहन्त्याशु किमत्र चित्रम् ॥३४६॥

एतदेवोपपादयति—नाम्नोऽस्येति द्वाभ्याम् । पातकी सर्व्वदा पातकयुक्तोऽपि ॥३४२॥

श्वादो नित्यकुक्कुरभक्षणशीलः परमपापजातिरपि,अशुभस्य अमङ्गलस्य तन्मूलस्य च पापस्य क्षये ॥३४३

एवं सामान्यतः सर्व्वकाले अशेषपापोन्मूलनं लिखित्वा इदानीं विशेषतः कलिकाले दुस्तरविविध-पापवर्ग-व्याकुलानामगतीनां कलौ लोकानां प्रभावविशेषप्रकटनपर-श्रीमन्नामकीर्त्तनेनैवाशेषपापोन्मूलनं भवतीति लिखति--तन्नास्तीत्यादिना ॥३४४॥

यथा वह्नेः शमाय जलमेव अलं समर्थं, तमसश्च शमाय भास्करोदय एवालं, तथा कलेर्यदघौघः, तस्य शान्त्यै नामसङ्कीर्त्तनमेवालं, कलौ नामसङ्कीर्त्तनस्यैव प्राधान्यात् । शान्तिरिति पाठे शान्तिरूपमेव ॥३४५॥

नित्यं महापापरतोऽपि दुरितौधान्मुक्तः सन् सत्यं निश्चितं यो नरः संसारपारं प्रयाति, कलिदोषाज्जन्म यस्य तत् पापं स आशु निहन्तीत्यत्र किं चित्रमाश्चर्य्यम् ? असम्भावितं न स्यादित्यर्थः ॥३४६॥

बृहद्विष्णुपुराण में लिखित है—हरिनाम की शक्ति पाप हरण के विषय में जितनी परिलक्षित होती है, पातकीजन भी उस परिमाण पाप करने में सक्षम नहीं है ॥३४२॥

इतिहासोत्तम में लिखित है—अशुभ क्षय विषय में श्रीविष्णु नाम की जो शक्ति है, कुक्कुरभोजी व्यक्ति भी यत्नपूर्वक तत् परिमाण पापाचरण करने में समर्थ नहीं है ॥३४३॥

विशेषतः कलिकाल के पक्ष में स्कन्द पुराण में लिखित है—कर्मज, वाक्यज, चित्तज इस प्रकार पाप नहीं हैं, कलिकाल में गोविन्द नामोच्चारण से जिसका नाश नहीं होता है ॥३४४॥

विष्णुधर्मोत्तर में कथित है—अग्नि निर्वपण हेतु जिस प्रकार जल, एवं अन्धकार विनाश हेतु जिस प्रकार सूर्य्योदय, कलियुग में पापराशि विनाशहेतु उस प्रकार श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन है । हरिनाम सङ्कीर्त्तन प्रभाव से दुरित राशि से मुक्त होकर मनुष्य निश्चय ही संसारार्णव उत्तीर्ण होता है । वह मनुष्य, कलिदोष जनित पाप को आशु विनष्ट करेगा इसमें आश्चर्य्य क्या है ? ॥३४५-३४६॥

ब्रह्माण्डपुराणे—

पराक-चान्द्रायणतप्तकृच्छ्रै,-र्न देहिशुद्धिर्भवतीह तादृक् ।
कलौ सकृन्माधव-कीर्त्तनेन, गोविन्दनाम्ना भवतीह यादृक् ॥३४७॥

कीर्त्तनकर्त्तृ कुलसङ्घादि-पावनत्वम्

तत्रैव—

महापातकयुक्तोऽपि कीर्त्तयन्ननिशं हरिम् । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा जायते पङ्क्तिपावनः ॥३४८

लघुभागवते—

गोविन्देति मुदा युक्तः कीर्त्तयेद्यस्त्वनन्यधीः । पावनेन च धन्येन तेनेयं पृथिवी धृता ॥३४९॥

हरिभक्तिसुधोदये—

न चैवमेकं वक्तारं जिह्वा रक्षति वैष्णवी ।
आश्राव्य भगवत्ख्यातिं जगत् कृत्स्नं पुनाति हि ॥३५०॥

दशमस्कन्धे (३४।१८)—

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च । सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥३५१

देहिनां पापतः शुद्धिः, देहेति पाठे स एवार्थः, सकृत् यत् माधवस्य कीर्त्तनं तेन, तच्च गोविन्देति, नाम्नेति कलौ गोविन्द-नाममाहात्म्यमभिप्रेतम् । यद्वा, गोविन्देति नाममात्रेणेति कीर्त्तनस्य बाहुल्यं विविधत्वञ्च परिहृतमिति दिक् ॥३४७॥

एवं सर्व्वपापोन्मूलनरूपं माहात्म्यं लिखित्वा इदानीं नामकीर्त्तन-सम्बन्धिनामपि सर्व्वदोषान्मूलनेन परमशोधकत्वं लिखति—महेति पञ्चभिः ॥३४८॥

अनन्यधीः—तदेकमना विश्वस्तः सन्नित्यर्थः ॥३४९॥

भगवतः ख्यातिं कीर्त्तिं नामात्मिकां नामैव वा ॥३५०॥

ब्रह्माण्डपुराण में लिखित है—इस कलिकाल में 'गोविन्द' नाम द्वारा एकवार मात्र माधव का संकीर्त्तन करने से देही की यादृशी शुद्धि होती है, पराक व्रत, चान्द्रायण एवं तप्तकृच्छ्र व्रतसमूह अनुष्ठान के द्वारा तादृशी शुद्धि नहीं होती है ॥३४७॥

कीर्त्तनकर्त्तृ कुलसङ्घादि-पावनत्वम्

ब्रह्माण्डपुराण में लिखित है—महापातक युक्त होकर भी दिवानिशि श्रीहरिनाम कीर्त्तन करते करते शुद्धान्तःकरण होकर अवशेष में पङ्क्ति पावन होता है ॥३४८॥

लघु भागवत में उक्त है—अनन्यचित्त होकर आनन्द से जो व्यक्ति 'गोविन्द' नाम कीर्त्तन करते हैं, वह धन्य, पावन पुरुष इस वसुधा को धारण करके रहते हैं ॥३४९॥

हरिभक्तिसुधोदय में लिखित है—विष्णु नामपरायण रसना जो एकमात्र वक्ता की रक्षा करती है, ऐसा नहीं, किन्तु नामात्मिका भगवत् कीर्त्तन श्रवण कराकर निश्चय ही जगत् को पवित्र करती है ॥३५०॥

दशमस्कन्ध में वर्णित है—मानववृन्द, जिनके नाम ग्रहण करते करते निज को एवं निखिल श्रोतृवर्ग को सद्यः पवित्र करते हैं, उनके चरण स्पर्श की तो बात ही क्या है, अर्थात् साक्षात् चरण-स्पर्श से मानव मुक्त होगा इसमें सन्देह क्या है ?॥३५१॥

अतएवोक्तं प्रह्लादेन नारसिंहे—

ते सन्तः सर्व्वभूतानां निरुपाधिकबान्धवाः । ये नृसिंह भवन्नाम गायन्त्युच्चैर्मुदान्विताः ॥३५२

सर्व्वव्याधिनाशित्वम्

बृहन्नारदीये भगवत्तोषप्रसङ्गे—

अच्युतानन्दगोविन्द-नामोच्चारण-भीषिताः ।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥३५३॥

पराशरसंहितायां साम्बं प्रति व्यासोक्तौ—

न साम्ब व्याधिजं दुःखं हेयं नान्यौषधैरपि ।

हरिनामौषधं पीत्वा व्याधिस्त्याज्यो न संशयः ॥३५४॥

स्कान्दे—

आधयो व्याधयो यस्य स्मरणान्नामकीर्त्तनात् । तदैव विलयं यान्ति तमनन्तं नमाम्यहम् ॥३५५

वह्निपुराणे—

महाव्याधिसमाच्छन्नो राजबाधोपपीड़ितः । नारायणेति संकीर्त्य निरातङ्को भवेन्नरः ॥३५६

सर्व्वदुःखोपशमनत्वम्

बृहद्विष्णुपुराणे—

सर्व्वरोगोपशमनं सर्व्वोपद्रवनाशनम् । शान्तिदं सर्व्वारिष्टानां हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥३५७॥

हेयं त्याज्यं न भवतीत्यर्थः ॥३५४॥

सतएव प्रह्लाद ने नृसिंहपुराण में कहा है— हे नृसिंह ! जो मानव, हर्षान्वित होकर मुक्त कण्ठ से तुम्हारे नाम गान करते हैं, वही साधु हैं, एवं वही निखिल जीवों के निष्कपट स्वार्थशून्य बन्धु हैं ॥३५२॥

सर्व्वव्याधिनाशित्वम्

बृहन्नारदीय के भगवत्तोष प्रसङ्ग में लिखित है—मैं सत्यकर कहता हूँ, हे अच्युत ! हे आनन्द ! हे गोविन्द ! इत्यादि नामोच्चारण से रोग समूह भीत होकर विनष्ट होते हैं ॥३५३॥

पराशरसंहिता में शाम्ब के प्रति व्यासोक्ति यह है—हे शाम्ब ! जिस समय अन्य औषधों से व्याधि जनित दुःख दूरीभूत नहीं होता है, उस समय तद्द्वारा उसका प्रतीकार करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये । किन्तु श्रीहरिनाम रूप औषध पान कर व्याधि को दूर करना चाहिये । इस विषय में कुछ संशय नहीं है ॥३५४॥

स्कन्द पुराण में लिखित है—जिनका स्मरण एवं कीर्त्तन करने से आधिव्याधि समूह आशु विनष्ट होते हैं, मैं उन अनन्त को नमस्कार करता हूँ ॥३५५॥

वह्निपुराण में लिखित है—महाव्याधि से अभिभूत एवं राजबाधा से उत्पीड़ित मनुष्य 'नारायण' नाम सङ्कीर्त्तन कर निरातङ्क होता है ॥३५६॥

सर्व्वदुःखोपशमनत्वम्

बृहद्विष्णुपुराण में उक्त है—श्रीहरि के नामसङ्कीर्त्तन से सकल रोग प्रशमित होते हैं, सकल उपद्रव विनष्ट होते हैं, एवं सर्व प्रकार अशुभ की शान्ति होती है ॥३५७॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वोपद्रवनाशनम् । सर्व्वदुःखक्षयकरं हरिनामानुकीर्त्तनम् ।।३५८।।

द्वादशस्कन्धे (१२।४८) —

सङ्कीर्त्यमानो भगवाननन्तः, श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं, यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ।।३५९।।

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

आर्त्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीता, घोरेषु च व्याधिषु वर्त्तमानाः ।
सङ्कीर्त्य नारायणशब्दमेकं, विमुक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ।।३६०।।

कीर्त्तनाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः । यक्षराक्षस-वेताल-भूतप्रेत-विनायकाः ।।३६१।।
डाकिन्यो विद्रवन्ति स्म ये तथान्ये च हिंसकाः । सर्व्वानर्थहरं तस्य नामसङ्कीर्त्तनं स्मृतम् ।।३६२

किञ्च—

नामसङ्कीर्त्तनं कृत्वा क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु । वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्व्वानर्थैर्न संशयः ।।३६३

सङ्कीर्त्यमानः, किंवा श्रुतोऽनुभावो यस्य तथाभूतः सन्; यद्वा, कोऽसौ भगवान् ? तत्राह,—श्रुतः अनुभावः पूतनामुक्तिप्रदानादि-प्रभावो यस्येति । पुंसां चित्तं प्रविश्य निःशेषं दुःखं धुनोति । हीति—सतामनुभवं प्रमाणयति; अर्को गिरिगुहादि-ध्वान्तं न निवर्त्तयतीत्यपरितोषात् दृष्टान्तान्तरमाह—अतिवातं ऽभ्रमिवेति ।।

आर्त्ता विषभक्षणादिना व्याकुलाः, विषण्णा दारिद्र्यादिना दुःखिताः, शिथिला भग्नाङ्गाः, भीताः शत्र्वादिभ्यः ।।३५९-३६०।।

सर्व्वैरनर्थैर्वियोगं शुद्धिमाप्नोति ।।३६३।।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में लिखित है—श्रीहरिनामानुकीर्त्तन, सकल पाप प्रशमन, सकलोपद्रव विनाशन एवं सर्व दुःख विघातक है ।।३५८।।

श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कन्ध में वर्णित है—अनन्त भगवान् के नामगुणादि कीर्त्तन अथवा उनके विक्रम विषयक वृत्तान्त श्रवण करने से, भगवान् हृदयाभ्यन्तर में प्रवेश कर, सूर्य्यदेव जिस प्रकार अन्धकार राशि को विनष्ट करते हैं अथवा झञ्झावात जिस प्रकार मेघराशि को विच्छिन्न करता है उस प्रकार जीववृन्द के निखिल दुःख मूलतः विनष्ट करते हैं ।।३५९।।

विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है—जो विषभक्षणादि द्वारा व्याकुल, दारिद्र्य दुःख से क्लिष्ट, भग्नदेह, शत्रु-भय से भीत, दारुण रोग ग्रस्त हैं वे केवलमात्र 'नारायण' शब्द कीर्त्तन करने से समस्त दुःखों के हाथ से मुक्त होकर सुखी होते हैं ।।३६०।।

अमित तेजस्वी देवदेव श्रीविष्णु के नाम-कीर्त्तन मात्र से यक्ष, राक्षस, वेताल, भूत, प्रेत, विनायक, डाकिनी एवं अन्यान्य हिंस्रकसमूह भीत होकर पलायन करते हैं, फलितार्थ यह है कि श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन सर्वानर्थ विनाशक कहकर शास्त्र में उक्त हुआ है ।।३६१-३६२।।

और भी कथित है—हुचकी लेने के समय, एवं तृष्णा, प्रस्खलनादि के समय नामसङ्कीर्त्तन करने पर तत्काल सर्वानर्थ के हस्त से मानव छुटकारा पाता है ।।३६३।।

पाद्मे देवहूतिस्तुतौ—

मोहानलोल्लसज्ज्वालाज्वलल्लोकेषु सर्व्वदा । यन्नामाम्भोधरच्छायां प्रविष्टो नैव दह्यते ॥३६४॥

कलिबाधापहारित्वम्

स्कान्दे —

कलिकाल-कुसर्पस्य तीक्ष्णदंष्ट्रस्य मा भयम् । गोविन्दनामदावेन दग्धो यास्यति भस्मताम् ॥३६५

बृहन्नारदीये कलिधर्म्म-प्रसङ्गे—

हरिनामपरा ये च घोरे कलियुगे नराः । त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ॥३६६॥

हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय । इतीरयन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः ॥३६७॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

येऽहर्निशं जगद्धातुर्वासुदेवस्य कीर्त्तनम् । कुर्व्वन्ति तान् नरव्याघ्र न कलिर्बाधते नरान् ॥३६८

नारक्युद्धारकत्वम्

नारसिंहे—

यथा यथा हरेर्नाम कीर्त्तयन्ति स्म नारकाः । तथा तथा हरौ भक्तिमुद्वहन्तो दिवं ययुः ॥३६९॥

सर्व्वदा मोहोऽज्ञानां गृहादिविषयको ममता वा, स एवानलः, तस्य उल्लसन्त्या नित्यं वर्द्धमानया ज्वालया ज्वलत्सु लोकेषु मध्ये यस्य भगवतो नामैव अम्भोधरः वर्षन्मेघः, तस्य छायां प्रविष्टः सन् नैव दह्यते, तेन मोहानलेन न दग्धो भवति, मोहकृतं दुःखं किमपि नानुभवतीत्यर्थः । पाठान्तरे ना नरः, अर्थः स एव ॥

पूर्व्वं कलौ विशेषतः पापोन्मूलनं लिखितम्, इदानीं कलेः पापकार्य्यकारणाद्यखिलपरिकरस्य विनाशित्वं लिखति—कलिकालेत्यादिना नरानित्यन्तेन । मा भयं, भयं नास्ति । ये नरा अहर्निशं नित्यं, ते न अहर्वा निशां वेत्यर्थः ॥३६४-३६८॥

एवं पापाद्रक्षकत्वं लिखित्वा इदानीं पापफलभोगादपि वर्त्तमानाद्रक्षां लिखति—यथेति द्वाभ्यां । नारका नरकवर्त्तिनो जनाः, दिवं श्रीविष्णुलोकमित्यर्थः; एतदाख्यायिका च तत्रैव प्रसिद्धा, यथा हि—धर्म्मराजतो नाममाहात्म्यमाकर्ण्य श्रीनारदेन गत्वोपदिष्टं भगवन्नामकीर्त्तनं कुर्व्वन्तो नरकभोगार्त्ताः सद्यः सुखिनो भूत्वा सर्व्वे श्रीवैकुण्ठलोकं ययुरिति ॥३६९॥

पद्मपुराण के देवहूति संवाद में वर्णित है—सर्वदा मोह-अज्ञान रूप अग्नि की परिवर्धमाना शिखा से विश्वसंसार जला मरता है, किन्तु भगवान् के नामरूप जलधर की शीतल छाया में प्रविष्ट होने पर दग्ध होने का भय नहीं रहता है ॥३६४॥

कलिबाधापहारित्वम्

स्कन्दपुराण में उक्त है—कलिकाल रूप तीक्ष्णदंष्ट्र क्रूर सर्प से अब भय नहीं है, वह गोविन्द नामरूप दावाग्नि से भस्मीभूत हो जायगा ॥३६५॥

बृहन्नारदीय पुराण के कलिधर्म प्रसङ्ग में लिखित है— जो सब मनुष्य, इस घोर कलिकाल में हरिनाम निष्ठ हैं, वे सब ही कृतकृत्य हैं, कलि उन सबको बाधा प्रदान करने में अक्षम है। हे हरे ! हे केशव ! हे गोविन्द ! हे वासुदेव ! हे जगन्मय ! जो नित्य इस प्रकार नामोच्चारण करते हैं, कलि, किसी प्रकार से भी उनको बाधा प्रदान नहीं कर सकता है ॥३६६-३६७॥

विष्णुधर्मोत्तर में कथित है—हे नरशार्दूल ! जो दिवानिशि जगद्धाता वासुदेव का नामकीर्त्तन करते हैं, कलि उन मानववृन्द को बाधा प्रदान कर नहीं सकता है ॥३६८॥

नारक्युद्धारकत्वम्

नरसिंह पुराण में उक्त है—नारकियों ने जिस जिस प्रकार से श्रीहरिनाम कीर्त्तन किया था, श्रीहरि

इतिहासोत्तमे—

नरके पच्यमानानां नराणां पापकर्म्मणाम् । मुक्तिः संजायते तस्मान्नामसङ्कीर्त्तनाद्धरेः ।।३७०।।

प्रारब्धविनाशित्वम्

षष्ठस्कन्धे (२।४६)—

नातःपरं कर्म्मनिबन्ध-कृन्तनं, मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्त्तनात् ।

न यत् पुनः कर्म्मसु सज्जते मनो, रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ।।३७१।।

द्वादशे च (३।४४)—

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः, पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् ।

विमुक्तकर्म्मार्गल उत्तमां गतिं, प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ।।३७२।।

तस्मान्नरकान्मुक्तिः ।।३७०।।

एवं दुष्प्रारब्धनिवारकत्वमेव दर्शितं, तदेवाभिव्यज्य लिखति—नातःपरमित्यादिना भासते नर इत्यन्तेन । कर्म्मनिबन्धनस्य पापमूलस्य कृन्तनं छेदकमतःपरं नास्ति । कस्मात् परम् ? तीर्थपदस्य भगवतोऽनुकीर्त्तनात्, तत्र हेतुः, यत् यतोऽनुकीर्त्तनात्, अन्यथा प्रायश्चित्तान्तरं रजस्तमोभ्यां कलिलं मलिनमेव तिष्ठति यत्तन्मनः । यद्यपि कर्म्मनिबन्धकृन्तनमित्यशेष प्रारब्धकर्म्मच्छेदनमेवात्रोक्तं, तथाप्यखिलप्रारब्धक्षये देहपातापत्त्या भगवद्भजनासम्भवाद्दुष्प्रारब्धक्षय एवाभिप्रेतः । अतएव नामश्रुतिभाष्ये लिखितम्—'प्रारब्धपापनिवर्त्तकत्वञ्च कदाचिदुपासकेच्छावशात्' इति । अन्यथात्र प्रस्तुताजामिलादिभिर्विरोधापत्तेः । अथवा रोगादिविलापनादिना नारक्युद्धारपर्य्यन्तेन दुष्प्रारब्धनिवारकत्वं लिखित्वा इदानीं सर्व्वप्रारब्धक्षपणं लिखति—नात इत्यादिना । अर्थः पूर्व्ववत् । ततश्चाशेषप्रारब्धक्षयेण देहपातापत्तौ सत्यामपि नामसङ्कीर्त्तनप्रभावतो नित्यप्रलयादिन्यायेन तदानीमेव भगवद्भजनार्थं तद्योग्यदेहान्तरोत्पत्त्या, किंवा पूर्व्वदेहमेव सद्यःजातभगवद्भजनोचितगुणविशेष-वत्तया नवीनमिवासौ प्रापेत्यूह्यम् । यथा श्रीध्रुवेण परमपदारोहणसमये निजपूर्व्वदेहमेव पार्षदोचित-देहगुण-युक्ततया भिन्नमिव प्राप्तम् । तच्च 'विभ्रद्रूपं हिरण्मयम्' (श्रीभा ४।१२।२९) इत्यादिषु श्रीस्वामिपादैर्व्यक्त व्याख्यातमेव । एवमेव 'सुरवत् भासते नरः' इत्यादि-वचनं सुसङ्गच्छेत । यच्च बहिः सुखदुःखफलके प्रारब्धे क्षीणेऽपि पश्चात्तस्य कदाचित् कस्यचित् किञ्चित् देहादौ वाह्यसुखं दुःखञ्च दृश्यते, तच्च लोके भक्तिमाहात्म्य-सङ्गोपनार्थं श्रीभगवता भक्तेन वा तेनैवात्माच्छादनार्थं शक्त्या संप्रदर्श्यत इति ज्ञेयम् । एवं सर्व्वमनवद्यम् ।। ।।३७१।। तत्र च यत् फलोन्मुखं कर्म्म, तदेव प्रारब्धमुच्यते । तच्च द्विविधं—वर्त्तमानदेहोपभोग्यमेकम्, अन्यच्च

के प्रति भी उस उस प्रकार से ही हृदय का अनुराग उद्वहन करते करते वे सब विष्णुलोक में उपस्थित हुये थे ।।३६९।।

इतिहासोत्तम में वर्णित है—पापकर्मरत सुतरां नरकाग्नि में पच्यमान मानववृन्द की नरक भोग से मुक्ति, नामसङ्कीर्त्तन प्रभाव से ही होती है ।।३७०।।

प्रारब्धविनाशित्वम्

षष्ठस्कन्ध में वर्णित है—तीर्थपाद श्री भगवान् के नामानुकीर्त्तनव्यतीत मुमुक्षुवृन्द का कर्मबन्ध उच्छेदक अपर कुछ नहीं है । अन्यान्य प्रायश्चित्त के द्वारा रजः एवं तमोगुण के सम्पर्क से मन में जिस प्रकार मालिन्य सञ्चारित होता है, नामसङ्कीर्त्तन के प्रभाव से ही वह मलिन मन पुनर्बार काम्य कर्म में आसक्त नहीं होता है ।।३७१।।

द्वादशस्कन्ध में वर्णित है—पतनोन्मुख अवस्था में स्खलित होते समय, रपटता हुआ, म्रियमाण अवस्था में, आतुर एवं विवश अवस्था में जिनका प्रियनाम ग्रहण करने पर कर्मबन्धन से मुक्त होकर उत्तमागति मिलती है, कलियुग में जनगण उनकी पुजा नहीं करेंगे ।।३७२।।

उक्तया कर्म्मनिबन्धेति तथा कर्म्मार्गलेति च । अवश्यभोग्यतापत्तेः प्रारब्धे पर्य्यवस्यति ॥३७३

अतएव बृहन्नारदीये —

गोविन्देति जपन् जन्तुः प्रत्यहं नियतेन्द्रियः । सर्व्वपापविनिर्मुक्तः सुरवद्भासते नरः ॥३७४॥

सर्व्वापराधभञ्जनत्वम्

विष्णुयामले श्रीभगवदुक्तौ—

मम नामानि लोकेऽस्मिन् श्रद्धया यस्तु कीर्त्तयेत् ।
तस्यापराधकोटीस्तु क्षमाम्येव न संशयः ॥३७५॥

सर्व्वसंपूर्त्तिकारित्वम्

अष्टमस्कन्धे (२३।१५) श्रीभगवन्तं प्रति श्रीशुक्रोक्तौ —

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः । सर्व्वं करोति निश्छिद्रं नामसङ्कीर्त्तनं तव ॥३७६॥

शरीरान्तरोपभोग्यम् । यथा—भरतस्य मृगशरीरकारणं, तच्च श्रीभागवते श्रीवादरायणेनैव सिद्धान्तितमस्ति, मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्म्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशित इत्यादिभिः । तत्र नातःपरमिति पूर्व्वश्लोकेन वर्त्तमानशरीरभोग्यप्रारब्धनाशनं लिखित्वा इदानीं शरीरान्तरेऽवश्यभोग्यस्यापि प्रारब्धस्य क्षपणं लिखति। यद्वा, द्वाभ्यामेव श्लोकाभ्यामशेषप्रारब्धविनाशित्वमेव दर्शयति- यन्नामेति । विवशोऽपि गृणन् उच्चारयन् सन् । विमुक्ताः कर्म्मरूपा अर्गला अवश्यभोग्यत्वेन दुर्व्वारा अपि प्रतिबन्धा यस्य सः । उत्तमां श्रीवैकुण्ठ प्राप्तिलक्षणां गतिं फलम्, तं न यक्ष्यन्ति, नामसङ्कीर्त्तनादिना न सेविष्यन्त इति कलिदोष उक्तः ॥३७२॥

जन्तुः सत्कर्म्माद्यभावेन कीटादि सदृशोऽतिनीचोऽपीत्यर्थः । अन्वहं नियतेन्द्रियः सन् सर्व्वपापेभ्योऽशेष-दुष्प्रारब्धेभ्यो विशेषेण निर्मुक्तश्च सन् नरोऽपि सुरवद्भासते, तस्मिन्नेव देहे इन्द्रादिवत्; यद्वा, सुशोभनं पदं राति ददातीति सुरो भगवत्पार्षदस्तद्वद्विराजते, अत्र पापशब्देन स्वर्गादिफलकं पुण्यमपि संगृह्यते, क्षयिष्णु-फलकत्वादिना तस्यापि पापेष्वेव पर्य्यवसानात् । अथवात्र श्लोके दुष्प्रारब्धमात्रविनाशित्वमेवोक्तम् । ततश्च सुरवद् देववदित्येव ॥३७४॥

एवं विहिताकरणनिषिद्धाचरणजाताखिलपापोन्मूलनरूपमाहात्म्यं लिखितं, तच्च पापं कथञ्चिद्भगवदा-श्रयणादपि विनश्यत्येव । यच्च श्रीभगवति तन्नाम्नि चापराधरूपं परममहापातकं, तदपि नाम-कीर्त्तनात् क्षीयत इति माहात्म्यविशेषं लिखति—ममेति । अवश्यभोग्यस्यापि नामापराधस्य क्षमायां पूर्व्वलिखित एव सिद्धान्तो द्रष्टव्यः ॥३७५॥

इत्थं सर्व्वदोषोन्मूलनरूपं माहात्म्यं लिखित्वा इदानीमखिलगुणाधायकत्वादिरूपं लिखति—मन्त्रत इत्यादिना यावत्समाप्ति । मन्त्रतः स्वरादि-भ्रंशेन, तन्त्रतः व्युत्क्रमादिना, देशतः कालतश्च, अर्हतः पात्रतः

एक श्लोक में 'कर्मनिबद्ध' एवं अन्य श्लोक में 'कर्मार्गल' शब्द का उल्लेख हुआ है, इससे प्रतीत होता है कि अवश्यभोग्य कर्म ही है । अवश्यभोग्य कर्म का ही नाम प्रारब्ध कर्म है ॥३७३॥

अतएव बृहन्नारदीय पुराण में लिखित है—सत्कर्मादि के अभाव से कीटादि सदृश अति नीच मनुष्य भी प्रत्यह इन्द्रिय संयम पूर्वक 'गोविन्द' नाम जप करते करते सर्वविध दुष्प्रारब्ध से सब प्रकार से निर्मुक्त होकर मनुष्य शरीर में ही इन्द्रादिदेवता अथवा परमपददाता भगवत्पार्षद के तुल्य दीप्यमान होते हैं ॥३७४

सर्व्वापराधभञ्जनत्वम्

विष्णुयामल में श्रीभगवदुक्ति यह है—जो व्यक्ति, इस संसार में श्रद्धापूर्वक मेरे नामसमूह का कीर्त्तन करते हैं, मैं उनके कोटि अपराध पुञ्ज को भी क्षमा कर देता हूँ, इसमें संशय नहीं है ॥३७५॥

सर्व्वसंपूर्त्तिकारित्वम्

अष्टमस्कन्ध में श्रीभगवान् के श्रीशुकोक्ति में प्रकाश है— मन्त्र में स्वरादि भ्रंश द्वारा, तन्त्र में कर्म

स्कान्दे च—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं सम्पूर्णतामेति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।।३७७

सर्व्ववेदाधिकत्वम्

विष्णुधर्म्मोत्तरे श्रीप्रह्लादोक्तौ—

ऋग्वेदो हि यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्व्वणः । अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम् ।।३७८।।

स्कान्दे श्रीपार्व्वत्युक्तौ—

मा ऋचो मा यजुस्तात मा साम पठ किञ्चन । गोविन्देति हरेर्नाम गेयं गायस्व नित्यशः ।।३७९

पाद्मे च श्रीरामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रे—

विष्णोरेकैकनामापि सर्व्ववेदाधिकं मतम् । तादृङ्नामसहस्रेण रामनाम समं स्मृतम् ।।३८०।।

सर्व्वतीर्थाधिकत्वम्

स्कान्दे—

कुरुक्षेत्रेण किं तस्य किं काश्या पुष्करेण वा । जिह्वाग्रे वसते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।।३८१।।

वामने—

तीर्थकोटि-सहस्राणि तीर्थकोटि-शतानि च ।
तानि सर्व्वाण्यवाप्नोति विष्णोर्नामानुकीर्त्तनात् ।।३८२।।

अशौचादिना, वस्तुतश्च दक्षिणादिना, यच्छिद्रं न्यूनं, तत् सर्व्वं तव नामसङ्कीर्त्तनमेव निश्छिद्रं करोति, रिक्तं पूरयति, अधिकफलञ्च जनयतीत्यर्थः ।।३७६।।

हरिरित्यक्षरद्वयोक्त्यैव सर्व्ववेदाध्ययनसिद्धेः सर्व्ववेदेभ्य आधिक्यं व्यक्तमेव ।।३७८।।

गेयं गानयोग्यम्, अनेन ऋगादिपाठनिषेधेन च सर्व्ववेदाधिकत्वं सिद्धमेव ।।३७९।।

एकैकमपि नाम सर्व्ववेदेभ्योऽधिकम् ।।३८०।।

विपर्य्यय द्वारा, एवं देश, काल, पात्र, द्रव्य में अशौचादि द्वारा एवं दक्षिणा प्रभृति द्वारा जो छिद्र अथवा न्यूनता होती है, तुम्हारे नाम सङ्कीर्त्तन से वे सब निश्छिद्र होते हैं ।।३७६।।

स्कन्दपुराण में भी लिखित है—जिनका स्मरण एवं नाम कथन द्वारा तपस्या, यज्ञ एवं अन्यान्य क्रिया की न्यूनता की सद्य ही सम्पूर्णता होती है, उन अच्युत की वन्दना मैं करता हूँ ।।३७७।।

सर्व्ववेदाधिकत्वम्

विष्णुधर्मोत्तर में श्रीप्रह्लाद महाशय का कथन है—जिन्होंने 'हरि' यह अक्षरद्वय का उच्चारण किया है, उससे उनके द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का अध्ययन सुसम्पन्न हुआ है ।।३७८।।

स्कन्दपुराण में श्रीपार्वती की उक्ति है—हे वत्स ! तुम, यजुर्वेद, सामवेद कुछ भी न पढ़ना, किन्तु 'गोविन्द' यह गान योग्य नाम नित्य करते रहो ।।३७९।।

पद्मपुराण के श्रीरामाष्टोत्तरशत नाम स्तोत्र में वर्णित है—श्रीविष्णु का एक एक नाम भी सर्ववेदाधिक रूप में अभिहित है, अर्थात् वह नाम वेदों की अपेक्षा भी अधिक फलद है। पुनः एक 'राम' नाम उक्त सहस्र नाम के सदृश कथित होता है ।।३८०।।

सर्व्वतीर्थाधिकत्वम्

स्कन्दपुराण में लिखित है—जिनकी रसना के अग्रभाग में 'हरि' यह वर्णद्वय अवस्थित है, उनको कुरुक्षेत्रगमन की आवश्यकता ही क्या है ? काशी अथवा पुष्कर का ही प्रयोजन क्या है ? ।।३८१।।

वामनपुराण में लिखित है—शतकोटि तीर्थ हो, अथवा सहस्रकोटि तीर्थ ही हो, विष्णुनाम कीर्त्तन के

विश्वामित्र-संहितायाम्—

विश्रुतानि बहून्येव तीर्थानि बहुधानि च। कोटच्यंशेनापि तुल्यानि नामकीर्त्तनतो हरेः ॥३८३॥

लघुभागवते—

किं तात वेदागमशास्त्रविस्तरैः,-स्तीर्थैरनेकैरपि किं प्रयोजनम्।

यद्यात्मनो वाञ्छसि मुक्तिकारणं, गोविन्द गोविन्द इति स्फुटं रट ॥३८४॥

सर्व्वसत्कर्म्माधिकत्वम्

गोकोटिदानं ग्रहणे खगस्य, प्रयागगङ्गोदककल्पवासः।

यज्ञायुतं मेरुसुवर्णदानं, गोविन्दकीर्त्तेर्न समं शतांशैः ॥३८५॥

बौधायन-संहितायाम्—

इष्टापूर्त्तानि कर्म्माणि सुबहूनि कृतान्यपि। भवहेतूनि तान्येव हरेर्नाम तु मुक्तिदम् ॥३८६॥

गारुड़े श्रीशौनकाम्बरीष-संवादे—

वाजपेयसहस्राणां नित्यं फलमभीप्स्यसि। प्रातरुत्थाय भूपाल कुरु गोविन्दकीर्त्तनम् ॥३८७॥

किं करिष्यति साङ्ख्येन किं योगैर्नरनायक। मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्त्तनम् ॥३८८

बहुधानीत्यार्षं, बहुविधानि, जलस्थलादिभेदेन नदीनदसरकूपादिभेदेन च। षष्ठ्यां तसप्रत्ययः। नामसङ्कीर्त्तनस्य कोट्यंशानामेकेनाप्यंशेन तुल्यानि न भवन्तीत्यर्थः ॥३८३॥

गोविन्द इतीत्यत्राविवक्षितत्वादसन्धिः। यद्वा, हे गोविन्देति गोविन्द इति च ॥३८४॥

खगस्य सूर्य्यस्य ग्रहणे, मेरुतुल्यसुवर्णदानञ्च, गोविन्दस्य कीर्त्तिः कीर्त्तनं, तस्याः शतांशैः शतांशानामेकेनाप्यंशेन समं न स्यादित्यर्थः। एवं कुत्रचित् पद्ये फलविशेषप्रदत्वेन कुत्रचिच्च फलरूपत्वेन सर्व्वकर्म्मभ्योऽधिकत्वं द्रष्टव्यम् ॥३८५॥

साङ्ख्येन आत्मानात्मविवेकेन, योगैरष्टाङ्गादिभिः, तेषामपि कर्म्मान्तर्गतत्वादत्रास्य पद्यस्य लिखनम्, एवमग्रेऽप्यूह्यम् ॥३८८॥

प्रभाव से मानवों को वह सब प्राप्त होते हैं ॥३८२॥

विश्वामित्र संहिता में लिखित है—बहुविध एवं बहुसंख्यक सुविश्रुत तीर्थसमूह श्रीहरिनाम सङ्कीर्त्तन के कोटच्यंश के एकांश के तुल्य नहीं हैं ॥३८३॥

लघुभागवत में लिखित है—हे वत्स ! वेद, आगम एवं अन्यान्य अनेक शास्त्र एवं अनेकानेक तीर्थसमूह की ही आवश्यकता क्या है ? यदि निजमुक्ति निदान को प्राप्त करने के इच्छुक हो तो, 'हे गोविन्द ! हे गोविन्द !' यह स्पष्ट रीति से रटते रहो ॥३८४॥

सर्व्वसत्कर्म्माधिकत्वम्

सूर्य्यग्रहण के समय कोटि गोदान, प्रयाग गङ्गासलिल में कल्पवास, अयुतयज्ञ, सुमेरु तुल्य सुवर्णदान, गोविन्द नाम कीर्त्तन के शतांश के एकांश के तुल्य कोई भी नहीं होता ॥३८५॥

बौधायन संहिता में लिखित है—अनेकानेक इष्टापूर्त्त कर्म का अनुष्ठान करने पर भी वे सब संसार बन्धन के हेतु होते हैं, किन्तु श्रीहरि नाम ही मुक्तिदायक है ॥३८६॥

गरुड़पुराण के श्रीशौनक-अम्बरीष-संवाद में उक्त है— हे महीपाल ! यदि नित्य सहस्र सहस्र वाजपेय यज्ञ फल प्राप्त करने की इच्छा हो तो प्रातःकाल में गात्रोत्थान पूर्वक गोविन्द नाम कीर्त्तन करते रहो। हे नरनायक ! साङ्ख्य आत्म अनात्म विषयक ज्ञान, अष्टाङ्गयोग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार

तृतीयस्कन्धे (३३।७) श्रीकपिलदेवं प्रति देवहूत्युक्तौ—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्, यज्जिह्वाग्रे वर्त्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्य्या, ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ।।३८९।।

सर्व्वार्थप्रदत्वम्

स्कान्दे ब्रह्मनारद-संवादे चातुर्म्मास्य-माहात्म्ये—

एतत् षड़्वर्गहरणं रिपुनिग्रहणं परम् । अध्यात्ममूलमेतद्धि विष्णोर्नामानुकीर्त्तनम् ।।३९०।।

विष्णुधर्म्मोत्तरे --

हृदि कृत्वा तथा काममभीष्टं द्विजपुङ्गवाः । एकं नाम जपेद्यस्तु शतं कामानवाप्नुयात् ।।३९१

तत्रैव श्रीकृष्णामृतस्तोत्रे—

सर्व्वमङ्गलमङ्गल्यमायुष्यं व्याधिनाशनम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्त्तनम् ।।३९२।।

अहो बतेत्याश्चर्य्ये, यस्य जिह्वाग्रे तुभ्यं तव त्वदर्थमपि वा नाम वर्त्तते, श्रद्धादिराहित्येनापि यथा-कथञ्चिदपि असम्यक्तयापि नामाभासमपि य उच्चारयतीत्यर्थः, सः श्वपचोऽपि जात्या कर्म्मणा च श्वमांस-भक्षणादनिवृत्तेरुभयथा पापोऽपि, अतः अस्मादेव हेतोर्गरीयान् । यत् यस्मात् वर्त्तते, अत इति वा । कुत इत्यत आह—त एव तपस्तेपुः सम्यक् कृतवन्तः, जुहुवुः होमं कृतवन्तः, सस्नुः तीर्थेषु स्नाताः, आर्य्याः त एव सदाचाराः, ब्रह्मवेदमनूचुः साङ्गं सद्गुरोरधीतवन्तः, त्वन्नामकीर्त्तने तपआदिकं सर्व्वं सत्कर्म्मान्तर्भूतम्, अतस्ते पुण्यतमा इत्यर्थः । यद्वा, जन्मान्तरेषु तैस्तपोहोमादि सर्व्वं कृतमस्तीति त्वन्नामकीर्त्तनमहाभाग्या-दवगम्यत इत्यर्थः । तपआदीनां सर्व्वेषां नामकीर्त्तनफलतोक्त्या सर्व्वसत्कर्म्माधिकत्वं व्यक्तमेव ।।३८९।।

षड़्वर्गः कामक्रोधादिः, तस्य हरणं नाशकम् । आत्मानमधिकृत्य वर्त्तमानमात्मतत्त्वमध्यात्मं, तस्य मूलं तत्प्राप्तिकारणमित्यर्थः ।।३९०।।

दिव्यं लोकातीतं वैकुण्ठलोकप्रापणात्, सच्चिदानन्दरूपत्वाद्वा ।।३९२।।

ध्यान, धारणा, समाधि का क्या करोगे ? हे राजेन्द्र ! यदि मुक्त होने की कामना हो तो, गोविन्द नाम कीर्त्तन करते रहो ।।३८७-३८८।।

तृतीय स्कन्ध में श्रीकपिलदेवे के प्रति देवहूति की उक्ति है—हे पुत्र ! अतीव आश्चर्य्य है, जिसकी रसना के अग्रभाग में तुम्हारा नाम विद्यमान है, वह व्यक्ति स्वपच होने से भी श्रेष्ठ है। कारण, जो व्यक्ति तुम्हारा नाम कीर्त्तन करता है, उसी ने तपस्याचरण, होम, तीर्थस्नान, सदाचार पालन, एवं वेदपाठ यथार्थ रूप से किया है ।।३८९।।

सर्व्वार्थप्रदत्वम्

स्कन्दपुराण के ब्रह्म-नारद-संवाद में चातुर्म्मास्य माहात्म्य में लिखित है—श्रीविष्णु का यह नामानु-कीर्त्तन कामक्रोधादि षड्वर्ग का विनाशक एवं रिपु निग्रह हेतु परम प्रवीण है, और यह अध्यात्म लाभ का एकमात्र उपाय है ।।३९०।।

विष्णुधर्मोत्तर में लिखित है—हे द्विजपुङ्गवगण ! हृदय में कामना कर भगवान् नाम जप जो मानव करता है, उसकी शत कामना पूर्त्ति होती हैं ।।३९१।।

उक्त ग्रन्थ के श्रीकृष्णामृत स्तोत्र में लिखित है—श्रीकृष्ण कीर्त्तन के द्वारा सकल मङ्गल प्राप्ति, आयुः-वृद्धि, रोगनाश, भुक्ति-मुक्ति लाभ एवं भगवद्धाम प्राप्ति भी होती है ।।३९२।।

श्रीनारायणव्यूहस्तवे—

परिहासोपहासाद्यैर्विष्णोर्गृह्णन्ति नाम ये । कृतार्थास्तेऽपि मनुजास्तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥३९३

वाराहे च—

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च तैरेव सुकृतं कृतम् । तैराप्तं जन्मनः प्राप्यं ये काले कीर्त्तयन्ति माम् ॥३९४

विशेषतः कलौ—

सकृदुच्चारयन्त्येतद्दुर्ल्लभं चाकृतात्मनाम् । कलौ युगे हरेर्नाम ते कृतार्था न संशयः ॥३९५॥

एकादशस्कन्धे (५।३६) च—

कलिं सभाजयन्त्यार्य्या गुणज्ञाः सारभागिनः । यत्र संकीर्त्तनेनैव सर्व्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ॥३९६

स्कान्दे तत्रैव—

तथा चैवोत्तमं लोके तपः श्रीहरिकीर्त्तनम् । कलौ युगे विशेषेण विष्णुप्रीत्यै समाचरेत् ॥३९७॥

सर्व्वशक्तिमत्त्वम्

स्कान्दे—

दानव्रततपस्तीर्थक्षेत्रादिनाञ्च याः स्थिताः । शक्तयो देव-महतां सर्व्वपापहराः शुभाः ॥३९८॥

परिहासो नर्म्मः, उपहासस्तिरस्कारः, आद्य-शब्दात् सङ्केतस्तोभादि ॥३९३॥

काले स्नानादिसमये, यद्वा, अकारप्रश्लेषेण अकाले अशौचादिसमयेऽपि ॥३९४॥

सकृदप्युच्चारयन्ति ये, ते कृतार्थाः सिद्धसर्व्वार्था इत्यर्थः ॥३९५॥

सभाजयन्ति श्रेष्ठं मन्यन्ते, गुणज्ञाः कलेर्गुणं जानन्ति ये ते । ननु दोषाणां बहुत्वात् कथं सभाजयन्ति? तत्राह—सारभागिनः गुणग्राहिणः । कोऽसौ गुणः ? तमाह—यत्रेति । तदुक्तमेव—'ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैः' इत्यादिना ॥३९६॥

उत्तमं तपः, स्वधर्म्माचरणं चित्तैकाग्रता वा ॥३९७॥

देवानां महताञ्च साधूनां, शुभाश्च मङ्गलावहाः, राजसूयादीनाञ्च याः शक्तयस्ताः सर्व्वाः ॥३९८॥

श्रीनारायणव्यूहस्तव में लिखित है—परिहास एवं उपहासादि वशतः जो लोक श्रीविष्णु का नामग्रहण करते हैं, वे सब भी कृतार्थ हैं, अतएव उन सबको मैं पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ ॥३९३॥

वराहपुराण में लिखित है—जो लोक स्नान करते समय मेरा नाम कीर्त्तन करते हैं, वे सब धन्य एवं कृतकृतार्थ होते हैं, उन्होंने ही वास्तविक सुकृति प्राप्त की है एवं मनुष्य जो प्राप्त करना उचित है, उसको भी प्राप्त किया है ॥३९४॥

विशेषतः कलियुग में—कलियुग में पापीजन के पक्ष में दुलंभ यह हरिनाम सकृन्मात्र भी कीर्त्तन होने पर कीर्त्तनकारी व्यक्ति कृतार्थ होता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥३९५॥

दशमस्कन्ध में लिखित है—गुणज्ञ सारग्राही आर्य्यगण, कलियुग को श्रेष्ठ मानते हैं, कारण, इस कलियुग में नामसङ्कीर्त्तन के द्वारा समस्त स्वार्थ सिद्ध होते हैं ॥३९६॥

स्कन्दपुराण के श्रीब्रह्म-नारद-संवाद में लिखित है—संसार में श्रीहरिकीर्त्तन ही उत्तम तपस्या है। अतएव कलियुग में श्रीविष्णुप्रीत्यर्थ विशेष रूप से श्रीहरिकीर्त्तन करना उचित है ॥३९७॥

सर्व्वशक्तिमत्त्वम्

स्कन्दपुराण में वर्णित है—दान, व्रत, तपस्या, तीर्थयात्रा प्रभृति द्वारा जो पापसमूह विदूरित होते हैं, देवता एवं साधुसेवा के द्वारा जो सब पाप विनष्ट होते हैं, राजसूय, अश्वमेधयज्ञ द्वारा एवं तत्त्व अध्यात्म

राजसूयाश्वमेधानां ज्ञानस्याध्यात्मवस्तुनः ।
आकृष्य हरिणा सर्व्वाः स्थापिताः स्वेषु नामसु ॥३९९॥

वातोऽप्यतो हरेर्नाम्न उग्राणामपि दुःसहः । सर्व्वेषां पापराशीनां यथैव तमसां रविः ॥४००॥

अतएव ब्रह्माण्डे—

सर्व्वार्थशक्तियुक्तस्य देवदेवस्य चक्रिणः । यच्चाभिरुचितं नाम तत् सर्व्वार्थेषु योजयेत् ॥४०१॥

जगदानन्दकत्वम्

श्रीभगवद्गीतासु (११।३६)—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्त्या, जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति, सर्व्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥४०२॥

जगद्वन्द्यतापादकत्वम्

बृहन्नारदीये—

नारायण जगन्नाथ वासुदेव जनार्द्दन । इतीरयन्ति ये नित्यं ते वै सर्व्वत्र वन्दिताः ॥४०३॥

एवमशेषदोष-दुःखहरणे सकलगुणश्रेयःप्रापणे च परमसमर्थस्य भगवन्नाम्नो महापातकसञ्चयक्षपणमप्यत्यन्तसुकरमेवेत्याह—वात इति । अतः अस्मादुक्ताद्धेतोर्नाम्नो वातोऽपि यथा कथञ्चिदीषत्सम्बन्धोऽपि उग्राणां भयानकानां सर्व्वेषां सवासनानां पापराशीनामपि दुःसहः दूरादेवात्यन्तक्षयकृदित्यर्थः । रविर्यथा तमसां दुःसहस्तद्वत्, एतच्चानुषङ्गिकं फलमुक्तम् ॥४००॥

सर्व्वार्थशक्तियुक्तस्येत्यनेन नाम-नामिन रभेदान्नाम्नोऽपि सर्व्वस्य सर्व्वार्थशक्तियुक्तता सूचितैव । अभिरुचितं निजाभीष्टं यन्नाम, एतच्च भक्तिविशेषेणाचिरात सम्यक् सर्व्वार्थसिद्धचपेक्षयोक्तम् ॥४०१॥

स्थाने इत्यव्ययं युक्तमित्यर्थे । हे हृषीकेश, यत एवमद्भुतप्रभावो भक्तवत्सलश्च त्वम्, अतस्तव प्रकीर्त्त्या माहात्म्यादिसंकीर्त्तनेन नाममात्र-संकीर्त्तनेन वा न केवलमहमेव प्रहृष्यामि, किन्तु जगत् सर्व्वमपि प्रकर्षेण हृष्यति हर्षं प्राप्नोति, एतत् स्थाने युक्तमित्यर्थः । तथा जगत् अनुरज्यते च अनुरागं चोपैतीति यत्, तथा रक्षांसि भीतानि सन्ति, दिशः प्रति द्रवन्ति, वेगेन पलायन्त इति यत्, तथा सर्व्वे योगतपोमन्त्रादिसिद्धानां सङ्घा नमस्यन्ति प्रणमन्तीति यत्, एतच्च स्थाने युक्तमेव, न चित्रमित्यर्थः ॥४०२॥

वस्तु लाभ से जो पापसमूह विनष्ट होते हैं, मङ्गलमय श्रीहरि ने उन सब शुभदायिनी शक्ति को आकर्षण कर अपने नामों में प्रतिष्ठित किया है ॥३९८-३९९॥

भास्कर जिस प्रकार तमोराशि को विनष्ट करते हैं, उस प्रकार भगवान् के नामरूप पवन सामान्यमात्र उच्चारित होने पर भी अतिशय भयानक पातक भी विदूरित होता है ॥४००॥

अतएव ब्रह्माण्डपुराण में कथित है—सर्वार्थ शक्तिविशिष्ट देवदेव चक्रपाणि का जो नाम तुम्हारा अभिप्रेत हो, तुम समस्त प्रयोजन सिद्धि के निमित्त उसकी आराधना करो ॥४०१॥

जगदानन्दकत्वम्

श्रीभगवद्गीता में लिखित है—हे हृषीकेश ! आपके नामकीर्त्तन द्वारा केवल मैं ही आनन्दित होता रहता हूँ ऐसा नहीं, किन्तु आपके नामकीर्त्तन से सकल संसार प्रीति एवं अनुरागयुक्त होते हैं, यह यथार्थ ही है, दूसरी बात क्या कहूँ ? राक्षसवृन्द भी आपके नाम-प्रभाव से भीत होकर दिगन्त में पलायन करते हैं । सिद्ध पुरुषगण भी आपकी नाम-महिमा को सुनकर नमस्कार करते हैं ॥४०२॥

जगद्वन्द्यतापादकत्वम्

बृहन्नारदीय पुराण में लिखित है—जो मनुष्य, नारायण ! जगन्नाथ ! वासुदेव ! जनार्दन ! कहकर श्रीनारायण नामकीर्त्तन नित्य करते हैं, वे सब सर्वत्र वन्दित होते हैं ॥४०३॥

श्रीसूतेनोक्तं तत्रैव यज्ञध्वजोपाख्यानान्ते—

स्वपन् भुञ्जन् व्रजंस्तिष्ठन्नुत्तिष्ठंश्च वदंस्तथा । ये वदन्ति हरेर्नाम तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥४०४

श्रीनारायणव्यूहस्तवे—

स्त्री शूद्रः पुक्कशो वापि ये चान्ये पापयोनयः ।
कीर्त्तयन्ति हरिं भक्त्या तेभ्योऽपीह नमो नमः ॥४०५॥

अगत्येकगतित्वम्

पाद्मे बृहत्सहस्रनामकथनारम्भे—

अनन्यगतयो मर्त्या भोगिनोऽपि परन्तपाः । ज्ञानवैराग्यरहिता ब्रह्मचर्य्यादिवर्जिताः ॥४०६॥
सर्व्वधर्म्मोज्झिता विष्णोर्नाममात्रैकजल्पकाः ।
सुखेन यां गतिं यान्ति न तां सर्व्वेऽपि धार्म्मिकाः ॥४०७॥

सदा सर्व्वत्र सेव्यत्वम्

विष्णुधर्म्मे क्षत्रबन्धूपाख्याने—

न देशनियमस्तस्मिन् न कालनियमस्तथा ।
नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति श्रीहरेर्नाम्नि लुब्धक ॥४०८॥

वदन् अन्यवार्त्तां कुर्व्वन्; वदन्तीत्यादि बहुत्वमार्षम्, किंवा स्वप्नादिक्रियाणां बहुत्वेन बहुत्वान्तर्भावात्। नमो नम इत्यन्तेन वन्द्यता सिद्धैव ॥४०४॥

न विद्यते अन्या नामव्यतिरिक्ता कापि गतिराश्रयोऽत्यन्तपापजात्यादिना कर्म्मादावनधिकारात् येषान्तेऽपि । अपि-शब्दस्य सर्व्वत्रैव सम्बन्धः । भोगिनः विषयभोगरताः, परमन्यं जनं तापयन्तीति परन्तपाः, नाममात्रमेवैकं जल्पन्ति, यथाकथञ्चिदश्रद्धयापि वाङ्मात्रेणोच्चारयन्ति तथा ते ॥४०६॥

हे लुब्धक ! तस्मिन् उक्तप्रभावे अनिर्व्वचनीयमाहात्म्ये वा नाम्नि ॥४०८॥

उक्त पुराण के यज्ञध्वजोपाख्यान के शेष भाग में श्रीसूत की उक्ति है—शयनकाल में, भोजनकाल में, गमन में स्थिति समय में, दण्डायमान होने के समय एवं कथा प्रसङ्ग में जो मानव श्रीहरिनाम ग्रहण करते हैं, उन सबको नित्य वारम्बार नमस्कार ॥४०४॥

श्रीनारायणव्यूह स्तव में लिखित है— स्त्रीजाति, शूद्र, पुक्कश, यही क्या ? अन्य कोई अन्त्यज भी भक्तियुक्त होकर श्रीहरिनाम कीर्त्तन करता है, तब उसको भी पुनः पुनः नमस्कार है ॥४०५॥

अगत्येकगतित्वम्

पद्मपुराण के बृहत् सहस्रनाम कथनारम्भ में उक्त है—जो अनन्यगति, नियत विषय भोगरत, परपीड़ा दायक, ज्ञान वैराग्य रहित, ब्रह्मचर्य्यादि शून्य एवं सर्व धर्म त्यागी है, वे भी यदि सामान्य श्रद्धा के सहित नित्य श्रीविष्णु का नामोच्चारण करते रहें तो सुख पूर्वक धर्मनिष्ठगणों की दुर्ल्लभ गति को प्राप्त कर सकते हैं ॥४०६-४०७॥

सदा सर्व्वत्र सेव्यत्वम्

विष्णुधर्म के क्षत्रबन्धूपाख्यान में लिखित है—हे लुब्धक ! श्रीहरि के नामकीर्त्तन में देश काल का नियम नहीं है, एवं उच्छिष्टादि युक्त अवस्था में भी नाम ग्रहण का निषेध नहीं है ॥४०८॥

स्कान्दे, पाद्मे वैशाख-माहात्म्ये, विष्णुधर्मोत्तरे च—

चक्रायुधस्य नामानि सदा सर्व्वत्र कीर्त्तयेत् । नाशौचं कीर्त्तने तस्य स पवित्रकरो यतः ॥४०९॥

पुनः स्कान्दे—

न देशकालावस्थासु शुद्ध्यादिकमपेक्षते । किन्तु स्वतन्त्रमेवैतन्नाम कामित-कामदम् ॥४१०॥

वैश्वानर-संहितायाम्—

न देशकालनियमो न शौचाशौचनिर्णयः । परं सङ्कीर्त्तनादेव राम रामेति मुच्यते ॥४११॥

वैष्णवचिन्तामणौ श्रीयुधिष्ठिरं प्रति श्रीनारदवाक्यम्—

न देशनियमो राजन् न कालनियमस्तथा । विद्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्त्तने ॥४१२॥

कालोऽस्ति दाने यज्ञे च स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे ।

विष्णुसङ्कीर्त्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीतले ॥४१३॥

तस्य चक्रायुधस्य कीर्त्तने अशौचं नास्ति, शुचिनैव कीर्त्तनं कार्य्यं, नैवाशुचिनेति व्यवस्था न विद्यते इत्यर्थः । तस्येति—नाम-नामिनोरभेदाभिप्रायेण, यतः स्वनामात्मकश्चक्रायुध एव पवित्रं करोतीति तथा । यथाचमनादिव्यतिरेकेणाशुद्धस्य श्रीयमुनादिजलाचमनादिनैव शुद्धिः, यथा च तत्राशुद्धेन कथं श्रीयमुनादिजलं स्प्रष्टव्यमिति शङ्का न सम्भवेत्, अनन्यगतित्वात्, तथात्रापीत्यर्थः । यद्वा, यतः स नामकीर्त्तकपुरुष एव अन्यमपि पवित्रं करोति, किं वक्तव्यं तस्याशौचमित्यर्थः ॥४०९॥

देशादीनां शुद्ध्यादिकं नाम कर्त्तृ नापेक्षते । तत्र अवस्थाः बाल्यादयो जागरादयः प्रमादोन्मादादयो वा । आदि-शब्देन स्वधर्म्माचरणादि, एतस्य भगवतो नाम, यद्वा, प्रकरणवशाद्भगवत एव नाम, एतत् सुप्रसिद्धा-निर्व्वचनीयमाहात्म्यमित्यर्थः । कामितं वाञ्छितं कामं पुरुषार्थविशेषं, यद्वा, काम्यत इति कामं फलं, यद्वा, कामितस्य कामयुक्तस्य काममभीष्टं ददातीति तथा तत् ॥४१०॥

परं केवलं, राम रामेति कीर्त्तनादेव ॥४११॥

पृथिवीतले सर्व्वत्रेत्यर्थः ॥४१३॥

स्कन्द एवं पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य में और विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है—जब श्रीहरि पवित्रकर हैं, तब उनका नाम कीर्त्तन करने में अशौच प्रभृति अपवित्रता नहीं है, सर्वदा उनका नामकीर्त्तन करना कर्त्तव्य है ॥४०९॥

पुनर्बार स्कन्दपुराण में लिखित है—भगवान् के नामकीर्त्तन में देश-काल और अवस्था विषय में शुद्धि की अपेक्षा नहीं है, यह स्वतन्त्र है और कामी को कामनादायक है । अर्थात् बाल्य, यौवन, प्रौढ़, वृद्ध यह सब समय में अथवा जाग्रतकाल, उन्मादावस्था, प्रमोदावस्था इत्यादि सब अवस्था में श्रीहरि ही सबके अवलम्बनीय हैं, उनको प्राप्त करने अथवा उनका नामकीर्त्तन के पक्ष में शौचाशौच, कालाकाल की अपेक्षा नहीं है ॥४१०॥

वैश्वानर संहिता में कथित है—'राम' 'राम' यह नाम कीर्त्तन करने से जीव मुक्त हो सकता है । इसमें देश काल का नियम नहीं है एवं शौचाशौच की अपेक्षा भी नहीं करनी पड़ती है ॥४११॥

वैष्णव चिन्तामणि में श्रीयुधिष्ठिर के प्रति श्रीनारद-वाक्य यह है—हे राजन् ! श्रीविष्णु के नामानुकीर्त्तन विषय में देश, काल का नियम नहीं है, इस विषय में सन्देह नहीं है । दान, यज्ञ, स्नान एवं मन्त्र जप प्रभृति यद्यपि कालादि सापेक्ष हैं किन्तु पृथिवी में श्रीहरि के नाम-सङ्कीर्त्तन में काल की अपेक्षा नहीं है ॥४१२-४१३॥

द्वितीयस्कन्धे (१।११)—

एतन्निर्व्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् । योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम् ॥४१४॥

मुक्तिप्रदत्वम्

वाराहे—

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः । सततं कीर्त्तयेद्भूमि याति मल्लयतां स हि ॥४१५॥

गारुड़े—

किं करिष्यति सांख्येन किं योगैर्नरनायक । मुक्तिमिच्छसि राजेन्द्र कुरु गोविन्दकीर्त्तनम् ॥४१६

स्कान्दे—

सकृदुच्चारितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥४१७॥

ब्रह्मपुराणे—

अप्यन्यचित्तोऽशुद्धो वा यः सदा कीर्त्तयेद्धरिम् । सोऽपि दोषक्षयान्मुक्तिं लभेच्चेदिपतिर्यथा ॥४१८

पाद्मे देवहूतिस्तुतौ —

सकृदुच्चारयेद्यस्तु नारायणमतन्द्रितः । शुद्धान्तःकरणो भूत्वा निर्व्वाणमधिगच्छति ॥४१९॥

एवं सदा-सेव्यत्वं लिखित्वा सर्व्वसेव्यत्वं लिखति—एतदिति । इच्छतां कामिनां तत्तत्फलसाधनमेतदेव, निर्व्विद्यमानानां मुमुक्षूणां मोक्षसाधनमेतदेव, तत्र तत्र च न काचिदपि विघ्नादिशङ्केत्याह— न कुतश्चिदपि भयं यस्मिन् तत् योगिनां ज्ञानिनां मुक्तानां वा फलञ्चैतदेव निर्णीतं, नात्र प्रमाणं वक्तव्यमित्यर्थः । एवं साधकानां सिद्धानाञ्च सेव्यत्वं दर्शितम् ॥४१४॥

हे भूमि ! मल्लयतां सायुज्यमुक्तिं, सांख्येन आत्मानात्मविवेकेन, योगैरष्टाङ्गादिभिः ॥४१५-४१६॥

मोक्षाय गमनं प्रति, आशुमोक्षप्राप्तये परिकरो बद्धः, साधनं सम्यगनुष्ठितमित्यर्थः ॥४१७॥

दोषाः कामक्रोधादयस्तेषां क्षयात् चेदिपतिः शिशुपालः ॥४१८॥

अतन्द्रितः नामोच्चारणादावनलसः सन्, ततश्च शुद्धान्तःकरणो भूत्वा ॥४१९॥

द्वितीय स्कन्ध में वर्णित है—हे नृप ! निर्विण्ण एवं अकुतोभय लाभेच्छु योगिगण के पक्ष में श्रीहरि-नामानुकीर्त्तन ही प्रशस्त है ॥४१४॥

मुक्तिप्रदत्वम्

वराहपुराण में लिखित है—हे पृथिवी ! जो मनुष्य सतत नारायण ! अच्युत ! अनन्त ! वासुदेव ! यह सब नाम कीर्त्तन करता है वह मनुष्य मेरी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है ॥४१५॥

गरुड़पुराण में लिखित है—हे नरनायक ! सांख्य, योग, किंवा अष्टाङ्गयोगादि के द्वारा क्या फल होगा ? यदि मुक्ति वाञ्छा हो तो गोविन्द कीर्त्तन करो ॥४१६॥

स्कन्दपुराण में उक्त है—जो व्यक्ति, एक बार मात्र 'हरि' यह वर्णद्वय का उच्चारण करता है वह व्यक्ति, आशु मोक्ष लाभ के निमित्त बद्धपरिकर होता है। अर्थात् उसके द्वारा अनुष्ठित साधन परिपूर्ण हुआ है ॥४१७॥

ब्रह्मपुराण में वर्णित है—जो मानव, अन्य मन से अथवा अशुद्ध अवस्था में भी सर्वदा श्रीहरिकीर्त्तन करता है, वह भी चेदिपति शिशुपाल के समान सकल दोष क्षय हेतु मोक्ष लाभ करता है ॥४१८॥

पद्मपुराणीय देवहूति संवाद में उक्त है—जो मानव, आलस्य वर्जन पूर्वक एक बार मात्र श्रीनारायण नामोच्चारण करता है, वह पवित्रान्तःकरण होकर निर्वाण पदवी का अधिकारी होता है ॥४१९॥

मात्स्ये—

परदाररतो वापि परापकृतिकारकः । स शुद्धो मुक्तिमाप्नोति हरेर्नामानुकीर्त्तनात् ॥४२०॥

वैशम्पायन-संहितायाम्—

सर्व्वधर्म्मवहिर्भूतः सर्व्वपापरतस्तथा । मुच्यते नात्र सन्देहो विष्णोर्नामानुकीर्त्तनात् ॥४२१॥

बृहन्नारदीये—

यथाकथञ्चित् यन्नाम्नि कीर्त्तिते वा श्रुतेऽपि वा ।
पापिनोऽपि विशुद्धाः स्युः शुद्धा मोक्षमवाप्नुयुः ॥४२२॥

भारतविभागे—

प्राणप्रयाणपाथेयं संसारव्याधिभेषजम् । दुःखशोकपरित्राणं हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥४२३॥

नारदीये—

नव्यं नव्यं नामधेयं मुरारे,-र्यद्यच्चैतद्गेयपीयूषपुष्टम् ।
ये गायन्ति त्यक्तलज्जाः सहर्षं, जीवन्मुक्ताः संशयो नास्ति तत्र ॥४२४॥

शुद्धः परदाररतत्वादिपापात् पवित्रः सन् ॥४२०॥

विशेषेण शुद्धाः सवासनसर्व्वपापतः पवित्राः, शुद्धा निष्पापास्तु मोक्षं प्राप्नुवन्ति । पापिनां विलम्बेन मोक्षः, सुकृतीनाञ्च सद्य एवेति ज्ञेयम् । यद्वा, विशुद्धाः सन्तः किं प्राप्नुवन्तीत्यपेक्षायामाह—शुद्धा इति अनुवादमात्रम् ॥४२२॥

प्राणस्य प्रयाणे पाथेयं पथि भक्ष्यसम्बलं परलोके सहायमित्यर्थः । संसाररूपस्य व्याधेर्भेषजं नाशकं मोक्षप्रदमित्यर्थः । इह लोके च दुःखशोकाभ्यां परित्राणं यस्मात्तत्; यद्वा, तयोः परित्राणरूपमेव; यद्वा, किं भगवदप्राप्त्या यौ दुःखशोकौ, ताभ्यां परित्राणं यस्मादिति श्रीवैकुण्ठलोकप्रापकत्वम् । यद्वा, किं बहुनोक्तेन, ऐहिकामुष्मिकाशेषदुःखशोकपरित्राणमेवेत्युपसंहारः । विष्णुधर्म्मे च—'प्राणकान्तारपाथेयम्' इति श्रीप्रह्लादेनोक्तम्; अर्थः स एव ॥४२३॥

नव्यमित्यादिना; नव्यं नव्यं किं वक्तव्यं, देहान्ते मुक्तिं ददातीति, देहे सत्यपि सद्यो ददातीति लिखति— नव्यमित्यादिना; नव्यं नव्यं प्रतिक्षणनूतनमित्यर्थः, अनेन माधुरीविशेषो दर्शितः । तमेवाह - गेयानां गानयोग्यानां गाथादीनाम्; यद्वा, गेयं परमश्लाघ्यं यत् पीयूषं मधुररसविशेषस्तेन पुष्टम् । एवम्भूतं मुरारेर्यत् नामधेयम्, एतद्ये गायन्ति, ते जीवन्मुक्ता एव; यद्यपीति पाठे यद्यपि गेयपीयूषपुष्टं परममादकमित्यर्थ इति जीवन्मुक्तताविरोधिचित्तक्षोभ-हेतुतोक्ता, तथापि जीवन्मुक्ता एव, तेनैव स्वतः संसारविस्मरणात् ॥४२४॥

मत्स्यपुराण में लिखित है—जो व्यक्ति, परदाररत, किंवा परापकारक है, वह व्यक्ति, हरिनाम कीर्त्तन से पापों से मुक्त होकर मुक्तिपद को प्राप्त करता है ॥४२०॥

वैशम्पायन संहिता में लिखित है—जो व्यक्ति, सकल धर्म वहिर्भूत, सकल पाप नुरक्त है, वह भी श्रीविष्णु के नामानुकीर्त्तन से मुक्त होता है, इसमें संशय नहीं है ॥४२१॥

बृहन्नारदीय पुराण में लिखित है—जिस किसी प्रकार से भगवन्नाम कीर्त्तन अथवा श्रवण करने से पापी लोक भी पापमुक्त होकर मुक्तिपद को प्राप्त करता है ॥४२२॥

भारतविभाग में उक्त है—'हरि' यह वर्णद्वय—प्राण प्रयाणपथ का पाथेय है, भवव्याधि की औषधि है, एवं दुःखनिवृत्ति का उपाय है ॥४२३॥

नारदपुराण में कथित है—श्रीमुरारि के जो सब नाम प्रतिक्षण में ही नूतनत्वनिबन्धन माधुर्य्य विस्तार

प्रथमस्कन्धे (१।१४)—

आपन्नं संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् । ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ।।४२५

तृतीये (९।१५) ब्रह्मस्तुतौ—

यस्यावतारगुणकर्म्मविड़म्बनानि, नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा, संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ।।४२६।।

षष्ठे (३।२४)—

एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां, संकीर्त्तनं भगवतो गुणकर्म्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि, नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ।।४२७।।

संसृतिमापन्नः प्राप्तो, विवशोऽपि, ततः संसृतेः गृणन्नेव सद्यो विमुच्येत इति जीवन्मुक्ततोक्ता; अत्र हेतुः- यत् यतो नाम्नो भयमपि स्वयं बिभेति ।।४२५।।

अवतारादीनां विड़म्बनमनुकरणमवलम्बनं वास्ति येषु, तत्रावतारविड़म्बनानि—देवकीनन्दन इत्यादीनि, गुणविड़म्बनानि—सर्व्वज्ञो भक्तवत्सल इत्यादीनि, कर्म्मविड़म्बनानि-गोवर्द्धनोद्धरणः कंसनिसूदन इत्यादीनि। असुविगमेऽपि विवशा अपि गृणन्ति उच्चारयन्ति केवलं, शमलं पापं, अपावृतं निरस्तावरणं, ऋतं ब्रह्म, सहसा सद्य एव प्राप्नुवन्ति, जीवन्मुक्ता भवन्तीत्यर्थः ।।४२६।।

भगवतो गुणानां कर्म्मणां नाम्नाञ्च; यद्वा, गुणकर्म्म-सम्बन्धिनां विचित्राणां नाम्नां बहूनां सम्यक् कीर्त्तनं पुंसामघनिर्हरणाय पापक्षयमात्राय भवतीति यत्, एतावता उक्तेन अलं प्रयोजनं नास्ति । कुतः ? अजामिलो महापातक्यपि नारायणेत्येव विक्रुश्य, न तत्तवतारसम्बन्धिगुणकर्म्ममाधुरीविशिष्टं नामविशेषं सम्यक् कीर्त्तयित्वा; तत्र च पुत्रं विक्रुश्य, न तु हरिम् । अघवान् अशुचिरपि अकृतप्रायश्चित्तोऽपीति वा, म्रियमाणः अस्वस्थचित्तोऽपि मुक्तिमवाप, न त्वघनिर्हरणमात्रं, तदानीमजामिलस्य देहस्य वर्त्तमानत्वेन जीवन्मुक्ततैव सिद्धा । अतो नामाभासेनापि यथाकथञ्चिज्जातेन मुक्तिरपि स्यात्, किमुत पापक्षय इति भावः ।।४२७।।

करते हैं, जो सब नाम, गीतग्रन्थ गाथादि के परम श्लाघ्य मधुर रसपूर्ण हैं, जो मानव, लज्जा त्याग पूर्वक आनन्द पूर्वक इन नामों का गान करते हैं, वे सब मानव जीवन्मुक्त हों, इसमें सन्देह नहीं है ।।४२४।।

प्रथमस्कन्ध में वर्णित है, घोर संसारी व्यक्ति, विवश होकर जिनका नाम स्मरण करने पर संसार बन्धन से आशु मुक्त होते हैं, एवं भय जिनके नामरव से भीत होता है ।।४२५।।

तृतीयस्कन्ध की ब्रह्मस्तुति में वर्णित है—जो मनुष्य, प्राणप्रयाण के समय विवश होकर भी आपके अवतार, गुण, कर्म प्रभृति का उल्लेख पूर्वक देवकीनन्दन, गोवर्धनधारी, कंसनिसूदन प्रभृति नाम कीर्त्तन करते हैं, वे सब अनेक जन्मार्जित पापराशि को परित्याग पूर्वक निरस्तावरण सत्य ज्योतिःस्वरूप आपको सद्य ही प्राप्त करते हैं, अतएव अज भगवान् की शरणागत होता हूँ ।।४२६।।

षष्ठस्कन्ध में वर्णित है—भगवान् के गुण कर्म एवं नामकीर्त्तन द्वारा पापीगण के जो पाप क्षय होते हैं, इस बात का प्रयोजन क्या है ? कारण, महापातकी अजामिल ने प्रायश्चित्त न करके भी म्रियमाणावस्था में निज पुत्र नारायण को पुकारकर मुक्ति प्राप्त की है, तब पाप नष्ट होने की बात ही और क्या कहूँ ।।४२७

श्रीवैकुण्ठलोक-प्रापकत्वम्

उक्तञ्च लैङ्गे श्रीनारदं प्रति श्रीशिवेन—

व्रजंस्तिष्ठन् स्वपन्नश्नन् श्वसन् वाक्यप्रपूरणे। नामसंकीर्त्तनं विष्णोर्हेलया कलिमर्द्दनम्।
कृत्वा स्वरूपतां याति भक्तियुक्तं परं व्रजेत् ॥४२८॥

नारदीये श्रीब्रह्मणा—

ब्राह्मणः श्वपचीं भुञ्जन् विशेषेण रजस्वलाम्। अश्नाति सुरया पक्वं मरणे हरिमुच्चरन् ॥४२९॥
अभक्ष्यागम्ययोर्जातं विहायाघौघसञ्चयम्। प्रयाति विष्णुसालोक्यं विमुक्तो भवबन्धनैः ॥४३०

बृहन्नारदीये शुकं प्रति श्रीबलिना—

जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। विष्णोलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्ल्लभम् ॥४३१॥

पाद्मे—

यत्र तत्र स्थितो वापि कृष्ण कृष्णेति कीर्त्तयेत्।
सर्व्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम् ॥४३२॥

तत्रैव वैशाखमाहात्म्ये अम्बरीषं प्रति नारदेन—

तदेव पुण्यं परमं पवित्रं, गोविन्दगेहे गमनाय पत्रम्।
तदेव लोके सुकृतैकसत्रं, यदुच्यते केशव-नाममात्रम् ॥४३३॥

हेलयापि कृत्वा स्वरूपतां ब्रह्मत्वं प्राप्नोति, मुक्तो भवतीत्यर्थः। भक्तियुक्तस्तु सन् नाम-सङ्कीर्त्तनं कृत्वा पर परमेश्वरं श्रीवैकुण्ठनाथं, यद्वा, उत्कृष्टपदं श्रीवैकुण्ठलोकं व्रजेत् ॥४२८॥

मरणेऽपि; भवबन्धनैः दुष्परिहारसंसारदुःखविशेषेण मुक्तः सन् ॥४२९-३०॥

पुनरावृत्तिदुर्ल्लभमपुनरावृत्तिकमित्यर्थः ॥४३१॥

गोविन्दगेहे श्रीवैकुण्ठलोके गमनार्थं पत्रं वाहनं सहायमित्यर्थः, सुकृतस्य एकं सत्रं स्थानम् ॥४३३॥

श्रीवैकुण्ठलोक प्रापकत्वम्

लिंगपुराण में नारद के प्रति श्रीशिव का कथन है—जब गमन, अवस्थान, शयन, भोजन, श्वासक्षेपण, एवं वाक्यप्रपूरण में हेल पूर्वक कलिमर्दन हरिनाम कीर्त्तन करके मुक्ति को प्राप्त होते हैं, तब भक्तिपूर्वक भक्त, उनको आह्वान कर निज निश्चय परमधाम में गमन करेंगे ॥४२८॥

नारदपुराण में श्रीब्रह्मा का कथन यह है—यदि ब्राह्मण, रजस्वला श्वपची गमन एवं सुरासिद्ध अन्न भक्षण करके भी मरणकाल में श्रीहरि को पुकारता है, तो अभक्ष्य भक्षण, अगम्या गमन प्रभृति द्वारा सञ्चित उत्कट पाप भार से एवं भवबन्धन छुटकारा प्राप्त कर विष्णु सालोक्य लाभ करता है ॥४२९-४३०॥

बृहन्नारदीय पुराण में शुक के प्रति श्रीबलि का कथन है—जिनके जिह्वाग्र में 'हरि' यह अक्षरद्वय विराजमान है, वे विष्णुलोक गमन करते हैं एवं उनको पुनर्वार संसार में प्रत्यावर्तन करना नहीं होता है ॥

पद्मपुराण में लिखित है – जिस किसी स्थान में रहकर यदि कोई 'कृष्ण कृष्ण' कहता है तो वह सकल पापों से मुक्त होकर परम गति को प्राप्त करता है ॥४३१-४३२॥

उक्त पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य में अम्बरीष के प्रति नारद की उक्ति है—केशव का एकमात्र नामोच्चारण ही पुण्यदायक, परमपवित्र, वैकुण्ठ गमन में सहायक एवं संसार में सुकृति का परम स्थान है ॥४३३॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

एवं संग्रहणोपुत्त्राभिधान-व्याजतो हरिम् । समुच्चार्य्यान्तकालेऽगाद्धाम तत् परमं हरेः ॥४३४॥

नारायणमिति व्याजादुच्चार्य्य कलुषाश्रयः । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥४३५॥

षष्ठस्कन्धे (२।४९)—

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किमुत श्रद्धया गृणन् ॥४३६॥

वामने—

ये कीर्त्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं, शङ्खाब्जचक्रशरचापगदासि-हस्तम् ।
पद्मालयावदनपङ्कजषट्पदाक्षं, नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते ॥४३७॥

आङ्गिरसपुराणे—

वासुदेवेति मनुज उच्चार्य्य भवभीतितः । तन्मुक्तः पदमाप्नोति विष्णोरेव न संशयः ॥४३८॥

नन्दिपुराणे—

सर्व्वदा सर्व्वकालेषु येऽपि कुर्व्वन्ति पातकम् ।
नामसङ्कीर्त्तनं कृत्वा यान्ति विष्णोः परं पदम् ॥४३९॥

एवमुक्तप्रकारेणेति तत्रापि श्रीभागवतवदजामिलोपाख्यानस्योपसंहारे प्रोक्तत्वात । संग्रहणी कामक्रोधेन संगृहीता वेश्या, तस्यां यो नारायणसंज्ञः पुत्रः, तस्याभिधानमाह्वानं, तद्व्याजेन अन्तकालेऽपि, तत् अनिर्व्वचनीयम् ॥४३४॥

कलुषाणां सर्व्वपापानामाश्रयोऽपि ॥४३५॥

धाम हरेः ॥४३६॥

तत् नाम, धामविशेषणं वा ॥४३८॥

सर्व्वदा सर्व्वावस्थायां, सर्व्वत्रेति वा पाठः; परं वैकुण्ठलोकम् ॥४३९॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखित है—इस प्रकार, दुराचार अजामिल ने वेश्या-पुत्र के नामाह्वानच्छल से मृत्युकाल में हरिनामोच्चारण कर श्रीहरि का परमधाम को प्राप्त किया। दारुण पापी अजामिल ने भी जब पुत्रनामच्छल से नारायण को पुकारकर वैकुण्ठ गमन किया, तब श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवन्नाम ग्रहण करने से फल क्या होगा, उसका कथन क्या करें? ॥४३४-४३५॥

षष्ठस्कन्ध में लिखित है—म्रियमाण अजामिल ने पुत्र के नाम से हरि का नाम ग्रहण किया था, इससे जब उसका उद्धार हुआ एवं वैकुण्ठ लाभ हुआ, तब श्रद्धापूर्वक नाम ग्रहण करने से जो पापमुक्त होकर वैकुण्ठ गति होगी, इसमें विचित्र क्या है?॥४३६॥

वामनपुराण में लिखित है—वरद, पद्मनाभ, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, हार, चाप एवं असिधर कमला के वदनपङ्कज के भ्रमर सदृश चक्षुः श्रीहरि का नाम कीर्त्तन जो मानव करते हैं, वे सब निश्चय ही वैकुण्ठधाम में गमन करते हैं ॥४३७॥

आङ्गिरस पुराण में वर्णित है—'वासुदेव' यह नामोच्चारण पूर्वक मनुष्य संसार भय से मुक्त होकर विष्णुपद लाभ करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥४३८॥

नन्दिपुराण में कथित है—सर्वदा सर्वकाल में जो लोक महापातक का अनुष्ठान करते हैं, वे नाम-सङ्कीर्त्तन कर विष्णु का परमपद लाभ करते हैं ॥४३९॥

विशेषतः कलौ, द्वादशस्कन्धे (३।५१)—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्त्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत् ॥४४०॥

गारुड़े अम्बरीषं प्रति श्रीशुकेन—

यदीच्छसि परं ज्ञानं ज्ञानाद्यत् परमं पदम् । तदादरेण राजेन्द्र कुरु गोविन्द-कीर्त्तनम् ॥४४१॥

श्रीभगवत्प्रीणनत्वम्

वाराहे—

वासुदेवस्य संकीर्त्या सुरापो व्याधितोऽपि वा । मुक्तो जायेत नियतं महाविष्णुः प्रसीदति ॥४४२

बृहन्नारदीये—

नामसंकीर्त्तनं विष्णोः क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु । करोति सततं विप्रास्तस्य प्रीतो ह्यधोक्षजः ॥४४३

विष्णुधर्म्मोत्तरे—

नामसंकीर्त्तनं विष्णोः क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु । यः करोति महाभाग तस्य तुष्यति केशवः ॥४४४

अथ श्रीभगवद्वशीकारित्वम्

महाभारते श्रीभगवद्वाक्यम्—

ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति । यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम् ॥४४५॥

परम्—उत्कृष्टं भगवद्भक्तिमाहात्म्यादिविषयकं ज्ञानम् ॥४४१॥

व्याधितो रोगी ॥४४२॥

क्षुत्तृड़ादिष्वपि यः करोति, यद्यपि क्षुत्तृड़ादिभिर्वैकल्ये सति नामसंकीर्त्तनमत्यन्ताभ्यासबलादेव जायते, अतस्तत्र तस्य प्राशस्त्यं सदा नामपरत्वं चोक्तं स्यात्, तथापि विवशत्वमात्रविवक्षया क्षुत्तृड़ादिष्वित्युक्तमिति ज्ञेयम्, एवमन्यत्राप्यूह्यम ॥४४४॥

दूरवासिनं दूरे वसन्तमपि, अतः साक्षादिव सम्बोधनं न घटते । तथापि हे गोविन्देति चुक्रोश आकारयामास;

विशेषतः कलिकाल में अनुष्ठित विषय का वर्णन द्वादशस्कन्ध में इस प्रकार है—हे राजन् ! कलि, निखिल दोषपूर्ण होने पर भी एक महान् गुण उसका है; कृष्णकीर्त्तन प्रभाव से ही कलिकाल में मानव बन्धनमुक्त होकर परमगति को प्राप्त करते हैं ॥४४०॥

गरुड़पुराण में अम्बरीष के प्रति श्रीशुक वाक्य यह है—हे राजेन्द्र ! यदि तुम, परम ज्ञान एवं उससे परमपद प्राप्त करने के इच्छुक हो तो, परमयत्न से गोविन्द कीर्त्तन करते रहो ॥४४१॥

श्रीभगवत्प्रीणनत्वम्

वराहपुराण में लिखित है—सुरापायी किंवा रोगग्रस्त मानव भी हरिकीर्त्तन करके मुक्ति लाभ करते हैं एवं महाविष्णु उनके प्रति सदा प्रसन्न रहते हैं ॥४४२॥

बृहन्नारदीयपुराण में वर्णित है—हे विप्रवृन्द ! क्षुधा, तृष्णा एवं प्रस्खलनादि विषय में जो लोक सतत श्रीविष्णु का नामसङ्कीर्त्तन करते हैं, अधोक्षज भगवान् उनके प्रति सर्वदा सन्तुष्ट होते हैं ॥४४३॥

विष्णुधर्मोत्तर में लिखित है—हे महाभाग ! जो मानव, क्षुधा, तृष्णा एवं रपटने के समय (प्रस्खलनादि-काल में) विष्णु का नाम कीर्त्तन करते हैं, केशव उनके प्रति प्रीत होते हैं ॥४४४॥

अथ श्रीभगवद्वशीकारित्वम्

महाभारत में भगवद् वाक्य यह है—विपत्ति में पड़कर द्रौपदी ने दूरस्थित मुझको 'हे गोविन्द' कहकर जो पुकारा, तज्जन्य मैं अतिशय ऋणी होगया हूँ, मेरा यह हृदय किसी प्रकार से दूर नहीं होता है।

आदिपुराणे श्रीकृष्णार्ज्जुनसंवादे—

गीत्वा च मम नामानि नर्त्तयेन्मम सन्निधौ । इदं ब्रवीमि ते सत्यं क्रीतोऽहं तेन चार्ज्जुन ।।४४६।।

गीत्वा च मम नामानि रुदन्ति मम सन्निधौ । तेषामहं परिक्रीतो नान्यक्रीतो जनार्द्दनः ।।४४७।।

एवं 'श्रुत्वा च मम नामानि' इत्यादि । ।।४४८।।

विष्णुधर्म्मे प्रह्लादेन—

जितन्तेन जितन्तेन जितन्तेनेति निश्चितम् । जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम् ।।४४९।।

स्वतः परमपुरुषार्थत्वम्

स्कान्दे काशीखण्डे, पाद्मे च वैशाखमाहात्म्ये—

इदमेव हि माङ्गल्यमेतदेव धनार्ज्जनम् । जीवितस्य फलञ्चैतद्यद्दामोदर-कीर्त्तनम् ।।४५०।।

यदेतत् मम ऋणं प्रवृद्धं, तस्याः परमवश्योऽस्मीत्यर्थः, परमार्त्या कीर्त्तनात् । अतः हृदयान्नापसर्पति, सदा तदेव विचारयामीत्यर्थः । तेषां तर्जनार्द्दनोऽहं जनैर्ज्जीवैः सर्व्वैः सेवितुमर्द्यते याच्यते, न तु प्राप्यते, तादृशोऽप्यहं, परिक्रीतः सर्व्वतोभावेन वशीकृतोऽहम् ।।४४५-४४७।।

तेन जितं, भगवान् वशीकृत इत्यर्थः । मुहुरुक्तिर्भक्तिविशेषोदयात् ।।४४९।।

माङ्गल्यं मङ्गलसमूहः, सर्व्वमङ्गलकर्म्मफलं वा, धनस्य पुरुषार्थत्वेन धनार्ज्जनस्यापि पुरुषार्थतया तत्-स्वरूपस्य नामकीर्त्तनस्यापि स्वतः परमपुरुषार्थत्वं सिद्धमेव । यद्वा, प्रेमलक्षणं धनमत्र ज्ञेयम् ।।४५०।।

'गोविन्द ! द्वारकावासिन् ! कृष्ण ! गोपीजनप्रिय ! कौरवैः परिभूतां मां किं न जानसि केशव ! हे नाथ ! हे रमानाथ ! व्रजनाथार्त्ति नाशन ! कौरवार्णव मग्नां मामुद्धरस्वजनार्दन ! कृष्ण ! कृष्ण ! महायोगिन् ! विश्वात्मन् ! विश्वभावन ! प्रपन्नां पाहि गोविन्द ! कुरुमध्येऽवसीदतीम्" । हे गोविन्द ! हे द्वारकावासिन् ! हे कृष्ण ! हे गोपीजनप्रिय ! हे केशव ! हे कौरव ! कौरवगण मुझको दुःख देते हैं, आप नहीं जानते हो ? हे नाथ ! हे जनार्दन ! आपने व्रजवासियों को बहुत कष्टों से उद्धार किया है, मैं कौरवरूपी सागर में निमग्न हूँ, मेरी रक्षा करो, हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वात्मन् ! आप विश्व को पालन करते हो, मैं विश्व से पृथक् नहीं हूँ, अतः शरण गत मुझको रक्षा करो । कुरुकुल के बीच में दुःख से अवसन्न हूँ"। इस प्रकार कथनरत द्रौपदी का स्मरणकर श्रीभगवान् ने उस प्रकार कही है । भावार्थ यह है कि, भक्त का एकान्तभाव से आह्वान भी भगवान् के पक्ष में असहनीय होता है ।।४४५।।

आदिपुराण के श्रीकृष्णार्जुन-संवाद में लिखित है—हे अर्जुन ! मैं तुम्हें सत्यकर कहता हूँ, जो मेरे नामों का गान करके मेरे सामने नृत्य करता है, मैं उसके हाथ बिक जाता हूँ । जो मेरे सामने मेरे नामों का गान करता हुआ रोदन करता है, मैं जनार्दन हूँ, अपर के द्वारा क्रीत न होने पर भी उसके द्वारा क्रीत होता हूँ ।।४४६-४४७।।

इस प्रकार 'मेरे नामसमूह का श्रवण कर' इत्यादि वाक्य का अर्थ भी है ।।४४८।।

विष्णुधर्म में प्रह्लाद ने कहा है—जिनकी रसना के अग्रभाग में 'हरि' यह अक्षरद्वय विराजमान हैं, उन्होंने निश्चय ही भगवान् को वशीभूत किया है, निःसन्देह वशीभूत किया है, निःसन्देह वशीभूत किया है ।।४४९।।

स्वतः परमपुरुषार्थत्वम्

स्कन्दपुराण के काशीखण्ड में, एवं पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य में उक्त है—दामोदर नाम कीर्त्तन ही सकल मङ्गलानुष्ठानों का फल है, यह ही धनार्जन एवं यही जीवनधारण का फल है ।।४५०।।

प्रभासखण्डे—

मधुरमधुरमेतन्मङ्गलं मङ्गलानां, सकलनिगमवल्लीसत्फलं चित्स्वरूपम् ।

सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा, भृगुवर नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम ॥४५१॥

विष्णुरहस्ये, विष्णुधर्म्मोत्तरे च—

एतदेव परं ज्ञानमेतदेव परन्तपः । एतदेव परं तत्त्वं वासुदेवस्य कीर्त्तनम् ॥४५२॥

भक्तिप्रकारेषु श्रैष्ठ्यम्

वैष्णवचिन्तामणौ श्रीशिवोमासंवादे—

अघच्छित्स्मरणं विष्णोर्बह्वायासेन साध्यते । ओष्ठस्पन्दनमात्रेण कीर्त्तनन्तु ततो वरम् ॥४५३

अन्यत्र च—

येन जन्मशतैः पूर्व्वं वासुदेवः समर्च्चितः । तन्मुखे हरिनामानि सदा तिष्ठन्ति भारत ॥४५४॥

एतत् कृष्णनाम कृष्णेति नाम कृष्णस्य नामेति वा मधुरादपि मधुरम्; चित् चैतन्य ब्रह्म तत्स्वरूपमिति परमफलरूपतोक्ता। अतः यथा कथञ्चित् सकृत् तत्कीर्त्तनादप्यानुषङ्गिकत्वेन सर्व्वस्यापि मोक्षो भवेदेवेत्याह—सकृदपीति । परीत्यर्द्धं अव्यक्तमसम्पूर्णमुच्चारितमपीत्यर्थः । हेलयापि वा, हे भृगुवर ॥४५१॥

तपश्चित्तैकाग्र्यं समाधिरित्यर्थः । तत्त्वं वस्तु, एवं साध्यानां परमज्ञानादीनां तादात्म्योक्त्या नामसंकीर्त्तनस्य परमफलता सिद्धैव ॥४५२॥

इत्थं नामकीर्त्तनस्य परमसाधनत्वं साध्यत्वञ्च लिखित्वा इदानीं स्वतः परमपुरुषार्थरूपाणां श्रवण कीर्त्तन-स्मरणादि-भक्तिप्रकाराणामपि मध्ये श्रीमन्नामकीर्त्तनस्य श्रैष्ठ्यं लिखन् तत्रादौ तेष्वेव परमश्रेष्ठत्वेन श्री-मुक्ताफलादिग्रन्थकाराणां सम्मतात् स्मरणादपि श्रैष्ठ्यं लिखति- अघेति । विष्णोः स्मरणमघं संसारदुःखं तन्मूलं पापं वा छिनत्तीति अघच्छिद्भवत्येव, किन्तु बहुलायासेनैव तत साध्यते, मनसो दुर्निग्रहत्वेन स्मरणस्य दुष्करत्वात् । कीर्त्तनन्तु ओष्ठस्पन्दनमात्रेणाघच्छित्, अतस्ततस्तस्मात् स्मरणात् कीर्त्तनं वरं श्रेष्ठम् । यद्वा, किञ्च ततः स्मरणात् कीर्त्तनं वरं, सर्व्वथा श्रेष्ठमेव, मनःश्रवणवागिन्द्रियादिव्याप्य-सुखविशेषस्यापादनात् । तच्च श्रीभागवतामृतोत्तरखण्डे विवृतमस्ति ॥४५३॥

अधुना स्मरणादीनामपि पूजाङ्गत्वात् पूजायाः श्रैष्ठ्यमभिप्रेत्य तस्या अपि सकाशान्नामसङ्कीर्त्तनस्य श्रैष्ठ्यं लिखति—येनेति । समर्च्चितः सम्यक् पूजितः ॥४५४॥

प्रभास खण्ड में वर्णित है—हे भृगुवर ! मधुर से मधुर, सब मङ्गलों का मङ्गल, निखिल निगमवल्ली का नित्य फल, चिन्मयस्वरूप यह श्रीकृष्ण नाम है। श्रद्धा अथवा हेला से एक बार मात्र भी यह नाम कीर्त्तित होकर नर मात्र को उद्धार करता है ॥४५१॥

विष्णुरहस्य एवं विष्णुधर्मोत्तर में लिखित है—श्रीहरि-कीर्त्तन ही परम ज्ञान, श्रेष्ठ तपस्या एवं श्रेष्ठ तत्त्व अभिहित हुआ है ॥४५२॥

भक्तिप्रकारेषु श्रेष्ठ्यम्

वैष्णव चिन्तामणि ग्रन्थ के श्रीशिवोमा संवाद में वर्णित है—श्रीविष्णु का पापनाशक स्मरण विपुल आयास से सम्पन्न होता है, किन्तु श्रीविष्णु नाम कीर्त्तन में ओष्ठ स्पन्दित होने से ही संसार भय प्रशमित होता है, एतज्जन्य नामस्मरण की अपेक्षा कीर्त्तन का माहात्म्य अधिक है ॥४५३॥

अन्यत्र भी वर्णित है—हे नृप ! जिन्होंने शत पूर्व जन्म में वासुदेव की सम्यक् पूजा की हे, उनके मुख में सर्वदा श्रीहरिनाम समूह विराजमान होते हैं ॥४५४॥

विशेषतः कलौ रहस्ये—

यदभ्यर्च्चर्य्य हरिं भक्त्या कृते क्रतुशतैरपि । फलं प्राप्नोत्यविकलं कलौ गोविन्दकीर्त्तनात् ॥४५५

विष्णुपुराणे—

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्च्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥४५६॥

द्वादशस्कन्धे (३।५२)—

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् ॥४५७॥

कृते सत्ययुगे इति तदानीं विशुद्धाशेषद्रव्यादि-सामग्रीसंसिद्धेः । तत्र च क्रतुशतैरित्यर्थः । यद्वा, क्रतुः कर्म्म, उपचारशतैरित्यर्थः । तत्रापि भक्त्या अभ्यर्च्चर्य्य अभितः पूजयित्वा यद्वा, अभ्यर्च्चर्य्येति पूजायां यत् फलं प्राप्नोतीत्यर्थः । अनन्यया भक्त्या श्रवण-स्मरण-भक्तिप्रकारेण च यत्, यज्ञशतैरपि यत्, तद्गोविन्देति-कीर्त्तनात् अविकलं सम्पूर्णं सकलं प्राप्नोतीत्यर्थः । तत्र च कलावित्यत्रेदं निगूढ़तत्त्वं स्थानेष्विति श्रीमथुरादि-स्थानवत्, कालेषु च मध्ये यथा श्रीकार्त्तिकादयस्त्रयो मासाः, यथा च तिथिषु एकादश्यादयः, तथा युगेषु मध्ये कलियुगं श्रीभगवत्प्रियं, तत्र च यथा कार्त्तिकादिमासेषु एकादश्यादिषु च स्वल्पमपि कृतं कर्म्म बहुल-फलं भवति, तथा कलावपि । एवमन्ययुगापेक्षया तस्य श्रेष्ठत्वेन तत्र कृतकर्म्मणां, विशेषतो भगवद्भजनस्य श्रैष्ठ्यं युक्तमेवेति । अनेनैवाभिप्रायेणोक्तं श्रीविष्णुपुराणे श्रीव्यासदेवेन 'कलिर्धन्यः' इति, द्वादशस्कन्धे च श्रीव्यासनन्दनेन 'गुणज्ञाः' इत्यादि; प्रथमस्कन्धे श्रीसूतेन (१८।७) 'कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत्' इति, एकादशस्कन्धे (५।३८) च श्रीकरभाजनेन—'कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम् । कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ॥' इत्यादि । अतएवास्मिन् युगश्रेष्ठ निजैश्वर्य्यविशेषप्रकट-नामरूपो भगवतो मुख्यावतारः, अतोऽस्य कलौ माहात्म्यविशेषो युक्त एव । ये च तत्र पापोपद्रवादिका विविध-धर्म्मादि-विघ्ना श्रूयन्ते, येभ्यो वहिर्दृष्ट्या कलेर्निन्दादिकं कथ्यते, ते तु श्रीमथुरादि-पुरपालकाः श्रीरुद्रगणादयो दैत्यराक्षसा अपि यथा श्रूयन्ते, तथैव ज्ञेयाः । इत्थमेव माहात्म्यविशेषोऽपि सुसिध्येत्, सर्व्वश्चाविरुद्धं स्यादिति दिक् ॥४५५॥

कृतयुगे परमशुद्धचित्ततया ध्यानस्य, त्रेतायाञ्च सर्व्ववेदप्रवृत्त्या यज्ञानां, द्वापरे च श्रीमूर्त्तिपूजाविशेष-प्रवृत्त्याऽर्च्चनस्य श्रैष्ठ्यमपेक्ष्य तत्तत्र पृथक् पृथगुक्तम् । एवमग्रेऽपि ज्ञेयम् । तच्च सर्व्वं समुचितं, कलौ श्रीकेशव-नाम-कीर्त्तनान्तर्भूतमेवेति सुखमाप्नोतीत्यर्थः । संकीर्त्य सम्यक् उच्चैरुच्चार्य्येति सद्यः स्वपरानन्दविशेषार्थमुक्तं, तेन च माहात्म्यविशेष एव सम्पद्यते ॥४५६॥

विष्णुं ध्यायत इति विष्णुध्यानकर्त्तुर्जनस्य यत् फलं स्यादिति कालत्रयसम्बन्ध्यशेष-सत्कर्म्मफलमभिप्रेतम् । एवमग्रेऽपि । एतेन श्रीविष्णुपुराण-वचनादस्य विशेषो द्रष्टव्यः, पुराणगुह्यत्वात् । परिचर्य्यायां पूजायां वर्त्तमानस्य जनस्य, हरेर्भगवतः हरीत्यक्षरद्वयस्य वा कीर्त्तनमात्रेण तत् सर्व्वं कलौ भवतीति ॥४५७॥

विशेषतः कलिकाल के निमित्त विष्णुरहस्य में वर्णित है—सत्ययुग में शत शत यज्ञानुष्ठान एवं भक्ति-पूर्वक श्रीहरि की पूजा से जो फल होता है, कलिकाल में गोविन्द कीर्त्तन से अविकल वह फल लाभ होता है ॥४५५॥

विष्णुपुराण में लिखित है—सत्ययुग में ध्यान, त्रेतायुग में यज्ञानुष्ठान, द्वापरयुग में जगत् पूज्य श्रीहरि की पूजा से जो फल लाभ होता है, कलियुग में श्रीहरिकीर्त्तन के द्वारा ही वह फल मिल जाता है ॥४५६॥

द्वादशस्कन्ध में लिखित है—सत्ययुग में श्रीविष्णु का ध्यान, त्रेता में यज्ञानुष्ठान, द्वापर में पूजानुष्ठान के द्वारा जो फल मिलता है, कलियुग में श्रीहरिकीर्त्तन के द्वारा ही वही फल मिल जाता है ॥४५७॥

एकादशे (५।३२)—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः संकीर्त्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥४५८

स्कान्दे च—

महाभागवता नित्यं कलौ कुर्व्वन्ति कीर्त्तनम् ॥४५९॥

बृहन्नारदीये नारदेनोक्तम्—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥४६०॥

अतएवोक्तं—

सकृदुच्चारयन्त्येव हरेर्नाम चिदात्मकं। फलं नास्य क्षमो वक्तुं सहस्रवदनो विधिः ॥४६१॥

पाद्मोत्तरखण्डे श्रीरामाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्रे श्रीशिवेन—

रकारादीनि नामानि शृण्वतो देवि जायते। प्रीतिर्मे मनसो नित्यं रामनामविशङ्कया ॥४६२॥

वैष्णवचिन्तामणौ च—

ईशोऽहं सर्व्वजगतां नाम्नां विष्णोर्हि जापकः। सत्यं सत्यं वदाम्येष हरेर्नाम गतिर्नृणाम् ॥४६३

त्विषा कान्त्या अकृष्णमिन्द्रनीलमणिवदुज्ज्वलमिति रूक्षतां व्यावर्त्तयति; यद्वा, त्विषा विशिष्टं कृष्ण-
मिति श्रीकृष्णावतारस्य तत्र प्राधान्यं दर्शयति। अङ्गानि हृदयादीनि, उपाङ्गानि कौस्तुभादीनि, अस्त्राणि
सुदर्शनादीनि, पार्षदाः सुनन्दादयः, तत्सहितम्। एकान्तिपक्षे—उपाङ्गानि वेण्वादीनि, अस्त्राणि पद्मादीनि,
पार्षदाः श्रीदामादय इति पूर्व्ववत् विज्ञेयम्। यज्ञैः अर्च्चनैः, सङ्कीर्त्तनं नामोच्चारणं गीतं स्तुतिश्च नाममयी,
तत्प्रधानैः, सुमेधसः विवेकिनः, एवमपि कलौ पूजातः श्रीमन्नामसंकीर्त्तनस्य माहात्म्यमेव सिद्धं, द्रव्यशुद्ध्या-
देरसम्भवात्, लिखितन्यायेन माहात्म्यविशेषाच्चेति दिक् ॥४५८॥

उपसंहरन् फलितं लिखति - सकृदिति त्रिभिः। सहस्रवदनः शेषः, विधिश्च ब्रह्मा; यद्वा, सहस्रवदनः
सन्नपि विधिः ॥४६१॥

रामनाम्नो विशङ्कया आशङ्कया नित्यं मम मनसः प्रीतिरानन्दो जायते; सम्पूर्णनामकीर्त्तनस्य तु
माहात्म्यं किं वक्तव्यमिति भावः ॥४६२॥

गतिः शरणं फलं वा, ममापि सेव्यत्वात् ॥४६३॥

एकादशस्कन्ध में लिखित है—जो कृष्ण वर्ण के हैं, एवं इन्द्रनीलमणिवत् उज्ज्वल कान्ति विशिष्ट हैं,
हृद्यादि अङ्ग, कौस्तुभादि उपाङ्ग, सुदर्शनादि अस्त्र एवं सुनन्दादि पार्षद परिवेष्ठित हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण
को आराधना सुबुद्धिमान् व्यक्तिगण, सङ्कीर्त्तन प्रधान यज्ञ के द्वारा करते रहते हैं ॥४५८॥

स्कन्दपुराण में लिखित है—महाभागवतगण, कलिकाल में नित्य श्रीहरि-कीर्त्तन करते रहते हैं ॥४५९॥

बृहन्नारदीय पुराण में श्रीनरद कहे हैं—श्रीहरि का नाम ही, नाम ही, नाम ही, मेरा जीवन है, इस
कलिकाल में श्रीहरिनाम व्यतीत जीव की दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है ॥४६०॥

अतएव कथित है—एक बार मात्र चिदात्मक श्रीहरि का नामोच्चारण करने पर जो फल लाभ होता
है, सहस्रमुख अनन्त एवं चतुर्मुख विधाता भी उसका वर्णन करने में सक्षम नहीं होते हैं ॥४६१॥

पाद्मोत्तरखण्ड के रामाष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र में श्रीशिव की उक्ति है—हे देवि ! सम्पूर्ण नामसङ्कीर्त्तन
की महिमा और क्या कहूँ ? जिन सब नामों के आदि में 'र' राम का प्रयोग है, उनको सुनकर राम नाम
की आशङ्का से सदा मेरे मन में आनन्द का उदय होता है ॥४६२॥

वैष्णवचिन्तामणि में लिखित है—मैं सदा श्रीविष्णु के नामसमूह का जप करके जगत् का अधीश्वर
हुआ हूँ। मैं पुनः पुनः सत्यकर कहता हूँ—हरिनाम ही मनुष्य की एकमात्र गति है ॥४६३॥

आदिपुराणे च श्रीकृष्णार्जुन-संवादे—

श्रद्धया हेलया नाम रटन्ति मम जन्तवः। तेषां नाम सदा पार्थ वर्त्तते हृदये मम ॥४६४॥

न नाम-सदृशं ज्ञानं न नाम-सदृशं व्रतम्। न नाम-सदृशं ध्यान न नाम-सदृशं फलम् ॥४६५

न नाम-सदृशस्त्यागो न नाम-सदृशः शमः। न नाम-सदृशं पुण्यं न नाम-सदृशी गतिः ॥४६६

किञ्च—

नामैव परमा मुक्तिर्नामैव परमा गतिः। नामैव परमा शान्तिर्नामैव परमा स्थितिः ॥४६७॥

नामैव परमा भक्तिर्नामैव परमा मतिः। नामैव परमा प्रीतिर्नामैव परमा स्मृतिः ॥४६८॥

नामैव कारणं जन्तोर्नामैव प्रभुरेव च। नामैव परमाराध्यो नामैव परमो गुरुः ॥४६९॥

किञ्च—

नामयुक्तान् जनान् दृष्ट्वा स्निग्धो भवति यो नरः।
स याति परमं स्थानं विष्णुना सह मोदते ॥४७०॥

तस्मान्नामानि कौन्तेय भजस्व दृढ़मानसः। नामयुक्तः प्रियोऽस्माकं नामयुक्तो भवार्ज्जुन ॥४७१

अथ श्रीभगवन्नाम-जपस्य स्मरणस्य च। श्रवणस्यापि माहात्म्यमीषद्भेदाद्विलिख्यते ॥४७२

फलं स्वर्गादि, गतिराश्रयः, स्थितिर्निष्ठा, परमाराध्यो जनो नामैव ॥४६५-४६६॥
विष्णुना मयैव ॥४७०॥

एवं नाम्नां कीर्त्तनमाहात्म्यं लिखित्वा जपादिमाहात्म्यलिखनमपि प्रतिजानीते—अथेति। ईषद्भेदात्, कीर्त्तनेन सह जपादेरल्पभेदाद्धेतोर्विशेषेण लिख्यते। तत्राग्रे लेख्यस्य वाचिकोपांशु-मानसिकभेदेन त्रिविधस्य जपस्य मध्ये ईषदोष्ठचालनेन शनैरुच्चारणरूपोपांशुजपोऽत्र ग्राह्यः, वाचिकस्य कीर्त्तनान्तर्गतत्वात्, मानसिकस्य च स्मरणात्मकत्वात्। क्वचिच्च नाम्नः स्मरणं शनैः शनैरीषदुच्चारणं ज्ञेयम्। तच्चाग्रे जन्माष्टमी-व्रतविध्यन्तरकथने 'हरिं स्मरन्' इत्यादिना व्यक्तं भावि ॥४७२॥

आदिपुराण के श्रीकृष्णार्जुन-संवाद में लिखित है—हे अर्जुन! श्रद्धा अथवा हेला से जो मेरा नाम जप करते हैं, उनका नाम सर्वदा मेरा हृदयाभ्यन्तर में जागरित रहता है। नाम सदृश ज्ञान, नाम सदृश व्रत, नाम सदृश ध्यान, नाम सदृश फल, नाम सदृश त्याग, नाम सदृशी शान्ति, नाम सदृश पुण्य, एवं नाम सदृश और नहीं है ॥४६४-४६६॥

और भी कथित है—नाम ही परमामुक्ति, नाम ही परमागति, नाम ही परमाशान्ति, नाम ही परमा-स्थिति, एवं नाम ही परमाभक्ति, नाम ही परमामति, नाम ही परमाप्रीति, नाम ही परमास्मृति, नाम ही जीवन का कारण, नाम ही प्रभु, नाम ही परमाराध्य विषय, एवं नाम ही परमगुरु है ॥४६७-४६९॥

और भी कथित है—नामपरायण जन को देखकर जो मनुष्य आनन्दित होता है, वह परमपद प्राप्तकर श्रीविष्णु के सहित आनन्दानुभव करता है। हे कौन्तेय! एतज्जन्य मैं कहता हूँ, तुम दृढ़ मानस से नाम भजन करते रहो। कारण, नामपरायण व्यक्ति मेरा प्रिय है, हे अर्जुन! तुम नामपरायण बनो ॥४७०-७१॥

अनन्तर भगवान का नाम जप, नामस्मरण, एवं श्रवणादि के माहात्म्य के सम्बन्ध में जो कुछ सामान्य भिन्नता है, उसका वर्णन कर रहा हूँ ॥४७२॥

अथ श्रीमन्नामजप-माहात्म्यम्

विष्णुरहस्ये श्रीभगवदुक्तौ—

सत्यं ब्रवीमि मनुजाः स्वयमूर्द्ध्वबाहु,-र्यो मां मुकुन्द नरसिंह जनार्द्दनेति ।
जीवन् जपत्यनुदिनं मरणे ऋणीव, पाषाणकाष्ठसदृशाय दद्याम्यभीष्टम् ।।४७३।।

काशीखण्डे अग्निविन्दुस्तुतौ—

नारायणेति नरकार्णवतारणेति, दामोदरेति मधुहेति चतुर्भुजेति ।
विश्वम्भरेति विरजेति जनार्द्दनेति क्वास्तीह जन्म जपतां क्व कृतान्तभीतिः ?।।४७४।।

पाद्मे वैशाखमाहात्म्ये यम-ब्राह्मण-संवादे—

वासुदेव-जपासक्तानपि पापकृतो जनान् । नोपसर्पन्ति वै विघ्ना यमदूताश्च दारुणाः ।।४७५।।

बृहद्विष्णुपुराणे—

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्ति-लक्षणम् । क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिवीजमनुत्तमम् ? ।।४७६।।

ऋणीवेति—'हा हन्त, अमुकस्य ऋणं धारयामि, न हि शोधितवानस्मि' इति यथा नित्यमृणदातुर्नाम जीवनसमये मरणे च जपति, तथा जीवन् सन्, मरणे म्रियमाणश्च सन् यो जपति, तस्मै पाषाणकाष्ठसदृशाय परमनीरसहृदयायापि ज्ञानादिराहित्येनाचेतनतुल्यायापि वा अभीष्टं तस्य मम वा परमप्रियं वस्तु ददामि, यद्वा, मरणे देहान्ते सति ददामि; ऋणी तस्य वश्यतां प्राप्तः सन् । इवेति लोकोक्तरीत्या । यद्वा, सकृन्नामैक-कीर्त्तनेनापि पाषाणादि-सदृशायाभीष्टं ददामि, योऽहं सोऽहं नित्यं जीवने मरणे च बहुविधनामजपेन ऋणीव भवामि । अन्यत् समानम् ।।४७३।।

नारायणेत्यादि-जपतां जनानां जन्म क्वास्ति ? अपि तु न कुत्रापि, मुक्तो भवतीत्यर्थः । अतएव कृतान्ताद्-यमात् कालाद् वा भीति क्व ? अपि तु न कुत्राप्यस्तीत्यर्थः । अत्र विगतं रजो यस्मादिति तत्सम्बोधनं—हे विरजः; सन्धिरार्षः, रजशब्दो वाऽदन्तः ।४७४।। विघ्नाः कामादयः, त्रितापा वा ।।४७५।।

क्व द्वयस्य विरोधोक्ततया भगवन्नामजपस्य स्वर्गप्राप्तिरतितुच्छत्वात् फलं न स्यादित्यभिप्रेतम् । तर्हि किन्तस्य फलं, तदाह—मुक्तेर्वीजं कारणमनुत्तमं परमोत्कृष्टमिति । योगाभ्यासादेरपि तस्मान्निकृष्टत्वं सूचितम् ।।४७६।।

अथ श्रीमन्नामजप-माहात्म्यम्

विष्णुरहस्य में श्रीभगवदुक्ति है—हे मानववृन्द ! मैं स्वयं ऊर्द्ध्वबाहु होकर सत्य कहता हूँ, जो मानव जीवद्दशा में प्रतिदिन एवं मरणकाल में हे मुकुन्द ! हे नरसिंह ! हे जनार्दन ! यह कहकर मेरा नाम जप करता है, कहने का क्या ? जपकारी यदि काष्ठ अथवा पाषाण तुल्य नीरस भी होता है तो, मैं ऋणी के समान उसको अभीष्ट प्रदान करता हूँ ।।४७३।।

काशीखण्ड की अग्निविन्दु स्तुति में कथित है—हे नारायण ! हे नरकार्णवतारण ! हे दामोदर ! हे मधुदैत्यघातिन् ! हे चतुर्भुज ! हे विश्वम्भर ! हे विरज ! हे जनार्दन ! इन सब नामों का जप जो मानव सर्वदा करते हैं, उनका जन्म अथवा यम भय उनको कैसे सम्भव होगा ? ।।४७४।।

पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य के यम-ब्राह्मण-संवाद में वर्णित है—पापिष्ठ व्यक्तिगण भी यदि हरिनाम जप में आसक्त होते हैं तो उन सबके निकट में विघ्न अर्थात् कामादि किंवा त्रिताप एवं भीषण यमदूतगण अग्रसर हो नहीं सकते हैं ।।४७५।।

बृहद्विष्णुपुराण में लिखित है—पुनरावृत्ति स्वर्ग गमन ही कहाँ है ? एवं अत्युत्तम मुक्तिकारण वासुदेव का जप ही कहाँ है ? अर्थात् उभय में सुमहान् प्रभेद विद्यमान है ।।४७६।।

श्रीमन्नामस्मरण-माहात्म्यम्

इतिहासोत्तमे—

स्वप्नेऽपि नामस्मृतिरादिपुंसः, क्षयं करोत्याहित-पापराशेः।
प्रयत्नतः किं पुनरादिपुंसः, प्रकीर्त्तिते नाम्नि जनार्द्दनस्य ॥४७७॥

लघुभागवते—

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्। स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे ॥४७८

पाद्मे देवहूतिस्तुतौ—

प्रयाणे चाप्रयाणे च यन्नाम-स्मरणान्नृणाम्। सद्यो नश्यति पापौघो नमस्तस्मै चिदात्मने ॥४७९

तत्रैवोत्तरखण्डे—

मन्नाम-स्मरणादेव पापिनामपि सत्वरम्। मुक्तिर्भवति जन्तूनां ब्रह्मादीनां सुदुर्लभा ॥४८०॥

ब्रह्मवैवर्त्ते—

यदनुध्यानदावाग्निदग्धकर्म्मतृणः पुमान्। विशुद्धः पश्यति व्यक्तमव्यक्तमपि केशवम् ॥४८१॥
तदस्य नाम जीवस्य पतितस्य भवाम्बुधौ। हस्तावलम्ब-दानाय प्रवीणो नापरो हरेः ॥४८२॥

आहितस्य सञ्चितस्य पापराशेः क्षयं करोति, प्रयत्नतो नाम्नि सङ्कीर्त्तिते सति पापराशेः क्षयः स्यादिति, किं पुनर्वक्तव्यमित्यर्थः ॥४७७॥

प्रयाणे मरणे, अप्रयाणे जीवने च ॥४७९॥

यस्य नाम्नोऽनुध्यानं चिन्तनमेव दावाग्निस्तेन कृत्वा दग्धानि कर्म्माण्येव तृणानि शीघ्रसमूलसुखदह्यत्वात् येन सः। तन्नाम अस्य साक्षान्निरन्तर-दुःखमनुभवतो भवाम्बुधौ पतितस्य जीवस्य हस्तावलम्बनदानाय समुद्धरणाय भवतीति द्वाभ्यामन्वयः। व्यक्ताव्यक्तत्वञ्च एकस्यैव सगुण-निर्गुणत्वादिना, तच्च श्रीभागवतामृतोत्तरखण्डे विवृतमेवास्ति। अतो हरेरन्यः प्रवीणः श्रेष्ठो नास्ति, स एव सर्व्वश्रेष्ठ इत्यर्थः ॥४८१॥

श्रीमन्नामस्मरण-माहात्म्यम्

इतिहासोत्तम में लिखित है—जब आदिपुरुष भगवान् का नामस्मरण स्वप्न में भी होने से सञ्चित पापराशि विनष्ट होती है, तब यत्नपूर्वक जनार्दन का नाम कीर्त्तन करने पर जो पापराशिक्षालित होगी इसको कहने की आवश्यकता ही क्या है? ॥४७७॥

लघुभागवत में वर्णित है—हे नृप! कलियुग में जो मानव, स्वयं श्रीहरि का नाम स्मरण करते हैं अथवा अपर को करवाते हैं, वे सब निश्चय ही भाग्यवान् एवं कृतार्थ हैं ॥४७८॥

पद्मपुराण की देवहूति स्तुति में उक्त है—मरणकाल में अथवा जीविनकाल में जिनका नामस्मरण करने पर मनुष्य की पापराशि सद्य विनष्ट होती है, उन चित्स्वरूप श्रीहरि को नमस्कार करता हूँ ॥४७९॥

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में लिखित है—मेरा नाम (हरिनाम) स्मरण मात्र से दारुण पातकवृन्द को भी ब्रह्मादि देववृन्द की सुदुर्लभ गति प्राप्त होती है ॥४८०॥

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में लिखित है—नाम चिन्तारूप दावानल संयोग से जीव के कर्मरूप तृणसमूह दग्ध होकर अव्यक्त केशव की व्यक्त मूर्त्ति का दर्शन लाभ होता है, इस प्रकार उन श्रीभगवन्नाम ही भवसागर मग्न जीव का हस्तावलम्बन दानस्वरूप है, अर्थात् उद्धार का कारण है। सत्य ही, श्रीहरिनाम व्यतीत भवबन्ध मोचन का श्रेष्ठ उपाय और दूसरा नहीं है ॥४८१-४८२॥

जावालिसंहितायाम्—

हरेर्नाम परं जप्यं ध्येयं गेयं निरन्तरम् । कीर्त्तनीयञ्च बहुधा निर्वृतीर्बहुधेच्छता ॥४८३॥

अथ श्रीभगवन्नाम-माहात्म्यम्

बृहन्नारदीये श्रीनारदोक्तौ—

यन्नाम-श्रवणेनापि महापातकिनोऽपि ये । पावनत्वं प्रपद्यन्ते कथं स्तोष्यामि क्षुद्रधीः ?४८४॥

इतिहासोत्तमे—

श्रुतं सङ्कीर्त्तितं वापि हरेराश्चर्य्यकर्म्मणः । दहत्येनांसि सर्व्वाणि प्रसङ्गात् किमु भक्तितः ?४८५॥

षष्ठस्कन्धे (१६।४४) चित्रकेतूक्तौ—

न हि भगवन्नघटितमिदं, त्वद्दर्शनान्नृणामखिलाघक्षयः ।
यन्नामसकृच्छ्रवणात्, पुक्कशोऽपि विमुच्यते साक्षात् ॥४८६॥ इति ।

श्रीमन्नाम्नाञ्च सर्व्वेषां माहात्म्येषु समेष्वपि ।
कृष्णस्यैवावतारेषु विशेषः कोऽपि कस्यचित् ॥४८७॥

श्रुतं सङ्कीर्त्तितमिति भावे निष्ठा । हरेर्नामात्मकस्य, नामेति शेषो वा ॥४८५॥

साक्षात् स्वयमेव विमुक्तो भवति, इत्यनन्यसाधनतोक्ता । यद्वा, साक्षादिति वर्त्तमानतच्छरीर एवेत्यर्थः । एतच्च प्रारब्धविनाशित्वे पूर्व्वं लिखितार्थमेव ॥४८६॥

एवं सामान्यतो नाम्नां सर्व्वेषामपि माहात्म्यं लिखित्वा इदानीं विशेषतो लिखन् तत्र माहात्म्यस्य साम्येऽपि किञ्चिद्विशेषं दृष्टान्तेन साधयति-श्रीमदिति; श्रीमतो भगवतः, श्रीमतां वा अशेषशोभासम्पत्त्यतिशय-युक्तानां नाम्नां कस्यचिन्नाम्नः कोऽपि माहात्म्यविशेषोऽस्ति । ननु चिन्तामणेरिव भगवन्नाम्नां महिमा सर्व्वोऽपि सम एव उचित इत्याशङ्क्य दृष्टान्तेन साम्येऽपि किञ्चिद्विशेषं दर्शयति—कृष्णस्यैवेति । यथा श्रीनृसिंह-रघुनाथादीनां महावताराणां सर्व्वेषां भगवत्तया साम्येऽपि 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'(श्रीभा १।३।२८) इत्युक्त्या कृष्णस्यावतारत्वेऽपि साक्षाद्भगवत्त्वेन कश्चिद्विशेषो दर्शितः, तद्वदित्यर्थः । एतच्च श्रीधरस्वामि-

---

जावाल संहिता में लिखित है—जो मानव, निरन्तर विविध सुखान्वेषण करते रहते हैं, उनके पक्ष में निरन्तर श्रीहरि का नाम जप, ध्यान, एवं कीर्त्तन करना कर्त्तव्य है ॥४८३॥

अथ श्रीभगवन्नाम-माहात्म्यम्

बृहन्नारदीय पुराण में श्रीनारद का कथन है—जिनके नाम श्रवण मात्र से महापातकिगण भी पवित्र होते हैं मैं अल्पमति उनका स्तव कैसे कर सकूँगा ? ॥४८४॥

इतिहासोत्तम में लिखित है— आश्चर्य्य कर्मा श्रीहरि का नाम श्रवण किंवा सङ्कीर्त्तन करने से भी जब पापसमूह दग्ध होते हैं, तब भक्तिपूर्वक श्रवण किंवा कीर्त्तन करने से जो फल होगा, उसका वर्णन और क्या करूँ ? ॥४८५॥

षष्ठस्कन्धस्थ चित्रकेतु की उक्ति में प्रकाशित है—हे भगवन् ! आपका नाम एक बार मात्र श्रवणकर पुक्कश व्यक्ति भी जब संसार बन्धन से मुक्त होता है, तब आपके दर्शन से मनुष्यगण की पापराशि विनष्ट नहीं होगी, इस प्रकार कहना अतीव असम्भव है ॥४८६॥

श्रीमान् भगवान् के नामसमूह का माहात्म्य समान होने पर भी भगवान् के अवतारसमूह के मध्य में श्रीकृष्ण के किसी रूप विशेष का माहात्म्य अत्यधिक है ॥४८७॥

अथ विशेषतः श्रीकृष्णावतार-माहात्म्यम्

ब्रह्माण्डपुराणे श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनाम-माहात्म्ये—

सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत् फलम् ।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत् प्रयच्छति ।।४८८।।
इदं किरीटी संजप्य जयी पाशुपतास्त्रभाक् ।
कृष्णस्य प्राणभूतः सन् कृष्णं सारथिमाप्तवान् ।।४८९।।

किमिदं बहुना शंसन् मानुषानन्दनिर्भरः । ब्रह्मानन्दमवाप्यान्ते कृष्णसायुज्यमाप्नुयात् ।।४९०।।

वाराहे च श्रीमथुरामाहात्म्ये—

तत्र गुह्यानि नामानि भविष्यन्ति मम प्रिये । पुण्यानि च पवित्राणि संसारच्छेदनानि च ।।४९१

तत्रैव विशेषतः श्रीकृष्णेति नाम-माहात्म्यम्

द्वारकामाहात्म्ये प्रह्लाद-बलि-संवादे—

अतीताः पुरुषाः सप्त भविष्याश्च चतुर्द्दश । नरस्तारयते सर्व्वान् कलौ कृष्णेति-कीर्त्तनात् ।।४९२

कृष्णकृष्णेति कृष्णेति स्वपन् जाग्रद्व्रजंस्तथा ।
यो जल्पति कलौ नित्यं कृष्णरूपी भवेद्धि सः ।।४९३।।

पाद्मेव्याख्यातम्; श्रीभागवतामृतोत्तरखण्डे विशेषतो निरूपितमस्त्येव । पूर्व्वं बहुविधकामोपहतचित्तान् प्रति तत्तत् कामसिद्धयर्थं तत्तन्नाम-विशेषमाहात्म्यं लिखितमत्र च सर्व्वफलसिद्धये नामविशेष-माहात्म्यमिति भेदो द्रष्टव्यः ।।४८७।।

कृष्णस्य कृष्णावतारसम्बन्धि नामैकमपि तत्फलम् ।।४८८।।

इदं श्रीकृष्णावतारसम्बन्धि नाम; बहुना किम्, इदं श्रीकृष्णावतार नाम । श्रीकृष्णेन सायुज्यं नित्य-संयोगम् ।।४९०।।

अथ विशेषतः श्रीकृष्णावतार-माहात्म्यम्

ब्रह्माण्डपुराण के श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनाम माहात्म्य में लिखित है—पवित्र सहस्रनाम तीन बार पाठ करने से जो फल प्राप्त होता है, श्रीकृष्ण के अवतार सम्बन्धि एक नाम का एक बार पाठ करने से ही वह फल मिलता है ।।४८८।।

किरीटी अर्ज्जुन, एकमात्र कृष्णनाम जप पूर्वक पाशुपतास्त्र प्राप्त कर संग्राम विजयी हुये थे । एवं श्रीकृष्ण के प्राणसखा होकर कृष्ण को सारथि रूप में प्राप्त किये थे । अधिक और क्या कहना है, श्रीकृष्णावतार नामोच्चारण करते करते मानव आनन्द विभोर होकर ब्रह्मानन्द प्राप्त कर अन्त में श्रीकृष्ण का नित्य संयोग लाभ करता है ।।४८९-४९०।।

वराहपुराण के श्रीमथुरा माहात्म्य में लिखित है—हे प्रिये ! उस श्रीकृष्णावतार में मेरे गुह्य नामसमूह मङ्गलावह, परमशोधक एवं संसारच्छेदक होंगे ।।४९१।।

तत्रैव विशेषतः श्रीकृष्णेति-नाम-माहात्म्यम्

द्वारकामाहात्म्य के प्रह्लाद-बलि-संवाद में वर्णित है—जो मनुष्य विशेषतः कलिकाल में 'कृष्णनाम' कीर्त्तन करता है, उसके द्वारा सात अतीत पुरुष एवं चौदह भविष्यत् पुरुषों का उद्धार होता है । कलियुग में जो व्यक्ति, स्वप्नावस्था में जागृत अवस्था में एवं गमन समय में नित्य 'कृष्ण ! कृष्ण' नामोच्चारण करता है, वह व्यक्ति कृष्णरूपी होता है ।।४९२-४९३।।

ब्रह्मवैवर्त्ते —

हनन् ब्राह्मणमत्यन्तं कामतो वा सुरां पिवन् ।
कृष्ण कृष्णेत्यहोरात्रं सङ्कीर्त्य शुचितामियात् ॥४६४॥

विष्णुधर्म्मे—

कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते । भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातककोटयः ॥४६५॥

नारसिंहे श्रीभगवदुक्तौ—

कृष्णकृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥४६६॥

गारुड़े, पाद्मे च —

संसार-सर्पसंदष्टं नष्टचेष्टैकभेषजम् । कृष्णेति वैष्णवं मन्त्रं श्रुत्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥४६७॥

प्रभासपुराणे नारदकुशध्वज-संवादे श्रीभगवदुक्तौ—

नाम्नां मुख्यतरं नाम कृष्णाख्यं मे परन्तप । प्रायश्चित्तमशेषाणां पापानां मोचकं परम् ॥४६८

गुह्यानीति माहात्म्यविशेषो दर्शितः, आनुषङ्गिक फलञ्चाह—पुण्यानि मङ्गलावहानि, पवित्राणि परम-शोधकानि, संसारच्छेदकानि मुक्तिदानीति । यद्वा, गुह्यत्वमेवाह—पुण्यस्वरूपाणि पवित्ररूपाणि च, तथा सम्यक् सारस्य मोक्षस्य छेदनानि मुमुक्षानिवर्त्तनेनैव तदेव निष्ठतापादकानीत्यर्थः । तत्र च हनन् इत्यनेन वर्त्तमाननिर्द्देशेनानिवृत्ति बोधयति । एवमन्यत्राप्यूह्यम् । अहोरात्रमेकमेव संकीर्त्य इति संकीर्त्तनस्य बाहुल्यमात्रमभिप्रेतम् । यद्वा, अहोरात्रं सुरां पिवन्नपीति सम्बन्धः ॥४६४॥

यस्य वाचि प्रवर्त्तते, श्रद्धादिकमन्तरेण साङ्केत्यादिना कथञ्चिदपि जिह्वायां स्वयमेवोदेतीत्यर्थः । तस्य सद्यो भस्मीभवन्ति । न केवलमेतावदेव, किन्तु परमशुभावहं परमसुखात्मकं चेत्याह—मङ्गलमिति ॥४६५॥

कृष्णेति नामैकं वा सकृत् प्रत्यहं स्मरति, जलमेकार्णवोदकं भित्त्वा पद्मं भूपद्मं पृथिवीमण्डलं यथा उद्धरामि; यद्वा, जलं भित्त्वा यथा पद्ममुद्भवति, तथा नरकनिमग्नमप्युद्धरामि । तत्र यथा पद्मस्य जल-सम्पर्को न स्यादेवं तस्य पुनर्नरकसम्बन्धो नैवेति मोक्षोऽभिप्रेतः, प्रारब्धकर्म्मनाशश्च दर्शितः । संसार एव सर्पस्तेन सम्यक् दष्टस्य, अतएव नष्टचेष्टस्य एकमद्वितीयं भेषजं तन्निवर्त्तकमित्यर्थः । वैष्णवमिति गारुड़ादि-मन्त्रतो विशिष्टतोक्ता ॥४६६-४६७॥

परं मोचकं परममुक्तिकरमित्यर्थः ॥४६८॥

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखित है—जो व्यक्ति निज हस्त से ब्रह्महत्या अथवा अपनी इच्छा से मदिरा पान करता है, अहोरात्र प्रतिदिन श्रीकृष्ण का नाम कीर्त्तनकर पवित्र होता है ॥४६४॥

विष्णुधर्म में लिखित है—हे राजेन्द्र ! मङ्गलमय कृष्ण नाम जिसके मुख से निर्गत होता है, उसके कोटि महापातक भस्मीभूत होते हैं ॥४६५॥

नृसिंहपुराण में श्रीभगवान् की उक्ति है—जो व्यक्ति, मेरा स्मरण, 'कृष्ण ! कृष्ण ! कृष्ण !' कहकर करता है, जिस प्रकार जल को भेदकर जलजपद्म का उद्भव होता है, उस प्रकार मैं उसको नरक से उद्धार करता हूँ ॥४६६॥

गरुड़पुराण एवं पद्मपुराण में लिखित है—जो व्यक्ति संसार विषधर के दंशन से निश्चेष्ट होगया है, वह एक बार मात्र औषधस्वरूप 'कृष्ण' यह वैष्णव मन्त्र श्रवणकर विष यातना से मुक्त होता है ॥४६७॥

प्रभासपुराण में नारद-कुशध्वज संवाद में श्रीभगवान् की उक्ति है—हे परन्तप ! मेरे नामसमूह के मध्य में कृष्ण नाम ही श्रेष्ठतर है, यह नाम अशेष पापों का प्रायश्चित्त स्वरूप एवं परम मुक्तिदायक है ॥४६८॥

पाद्मे—

यत्र यत्र स्थितो वापि कृष्णकृष्णेति कीर्त्तयेत् ।
सर्व्वपापविशुद्धात्मा स गच्छेत् परमां गतिम् ॥४९९॥

विष्णुधर्म्मोत्तरे श्रीकृष्णसहस्रनामस्तोत्रे—

वल्लवीकान्त किन्तैस्तैरुपायैः कृष्णनाम ते ।
किन्तु जिह्वाग्रगं जाग्रन्निरुन्धे हि महाभयम् ॥५००॥

तत्रैवान्यत्र—

सत्यं ब्रवीमि ते शम्भो गोपनीयमिदं मम । मृत्युसञ्जीवनीं नाम कृष्णाख्यामवधारय ॥५०१॥

भारतविभागे—

कृष्णः कृष्णः कृष्ण इत्यन्तकाले, जल्पन् जन्तुर्जीवितं यो जहाति ।
आद्यः शब्दः कल्पते तस्य मुक्त्यै, व्रीड़ानम्रौ तिष्ठतोऽन्यावृणस्थौ ॥५०२॥

अन्यत्रापि—

नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः । पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नाम-नामिनोः ॥५०३

परमां गतिं वैकुण्ठलोकमित्यर्थः ॥४९९॥

तैस्तैः कर्म्मज्ञानादिभिः श्रवणादिभक्तिप्रकारैश्च किम् ? जाग्रत् सदा प्रकाशमानं जिह्वाग्रगमपि सत् महाभयं संसारे निरुन्धे व्यावर्त्तयति; यद्वा, महत् अभयं मोक्षस्तमपि निरुन्धे, ततोऽपि परमानन्दरस-विशेषमयत्वात् ॥५००॥

मृत्युसञ्जीवनीं मृत्युतोऽपि सम्यक् जीवयति या विद्या ओषधिर्वा ताम् । मृतसञ्जीवनीति पाठो वा ॥५०१॥

अन्तकाले मरणसमयेऽपि, आद्यः प्रागुक्तः; शब्दः कृष्णनाम, अन्यौ द्वौ शब्दौ ऋणस्थौ ऋणिनौ सन्तौ तिष्ठतः, तद्वश्यतया कृष्णकृष्णेति सदा तन्मुखादिषु प्रादुर्भवतीति भावः । नाम-नामिनोरभेदेन नाम्न ऋणस्थत्वात् नामिनोऽपि ऋणस्थतता भगवद्वशीकारित्वं ज्ञेयम् ॥५०२॥

कृष्णेति नाम चिन्तामणिरिव चिन्तामणिः, सेवकस्य चिन्तितार्थप्रदत्वात्; कृष्णनाम्नः स्वरूपमाह—चैतन्येत्यादिविशेषणचतुष्केण । यद्यपि नामविशेषणत्वेन चैतन्यरसविग्रहादिपदानां नपुंसकत्वमुपयुज्यते, तथापि नाम-नामिनोरभेदविवक्षया कृष्ण इत्यस्य विशेषणत्वेन पुंस्त्वं, यथा—'नारायणो नाम नरो नराणां, प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्' इत्यादि ॥५०३॥

पद्मपुराण में लिखित है—जिस किसी स्थान में रहकर 'कृष्ण ! कृष्ण !' इस प्रकार कीर्त्तन करने से मानव समस्त पापों से मुक्त एवं विशुद्ध होकर परमागति को प्राप्त करता है ॥४९९॥

विष्णुधर्मोत्तर के सहस्रनाम-स्तोत्र में लिखित है—हे वल्लभीकान्त ! कर्मादि साधना से मेरा प्रयोजन क्या है ? आपका कृष्णनाम जिह्वाग्र में विद्यमान होने पर संसार भय की सम्भावना नहीं रहती है ॥५००॥

उक्त ग्रन्थ के अन्यत्र वर्णित है—हे शम्भो ! मैं सत्यकर तुमको कह रहा हूँ, मेरा कृष्णनाम अति गोपनीय है, इसको मृतसञ्जीवनी जानना ॥५०१॥

भारतविभाग में लिखित है—जो मानव मृत्यु समय में 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' कहकर जप करते करते जीवन त्याग करता है, उसकी मुक्ति के निमित्त प्रथमोच्चारित कृष्ण नाम ही कार्य्यकर है, तब अवशिष्ट नामद्वय कुछ भी कार्य्य नहीं कर पाये हैं, यह सोचकर लज्जावनत वदन से ऋणग्रस्त के समान अवस्थान करते हैं ॥५०२॥

अन्यत्र भी वर्णित है—कृष्णनाम चिन्तामणि स्वरूप है, स्वयं कृष्ण, चैतन्य रस मूर्त्ति पूर्ण, मायातीत, नित्यमुक्त हैं, कारण, नाम नामी में भेद नहीं है ॥५०३॥

अतएवोक्तम्—

तेभ्यो नमोऽस्तु भववारिधिजीर्णपङ्क-संमग्नमोक्षणविचक्षण-पादुकेभ्यः ।
कृष्णेति वर्णयुगलश्रवणेन येषा,-मानन्दथुर्भवति नर्त्तितरोमवृन्दः ॥५०४॥

किञ्च, द्वितीयस्कन्धे(३।२४)—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं, यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो, नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥५०५॥

इतिहासोत्तमे च—

नाम्नि सङ्कीर्त्तिते विष्णोर्यस्य पुंसो न जायते ।
सरोमपुलकं गात्रं स भवेत् कुलिशोपमः ॥५०६॥

अथ श्रीमन्नामकीर्त्तन- नत्यता

कात्यायन संहितायाम्—

नामसंकोर्त्तनाज्जातं पुण्यं नोपचयन्ति ये । नानाव्याधिसमायुक्ताः शतजन्मसु ते नराः ॥५०७
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः । यन्मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवं न कीर्त्तयेत् ॥५०८

एवं कृष्णनाम-माहात्म्यविशेषं लिखित्वा अधुना तच्छ्रवणानन्दितान् प्रणमन् तमेव परिपोषयन् लिखति —तेभ्य इति । भववारिधेर्जीर्णे पुरातने पङ्के संमग्नस्य मोक्षणे विचक्षणा अभिज्ञा पादुकापि येषां तेभ्यः ॥

इत्थं परममाहात्म्यविशेषवतो भगवन्नाम्नः श्रवणादिनाप्यानन्दरहितान् प्रसङ्गान्निन्दति—तदश्मेति द्वाभ्याम् । अश्मवत् सारः स्थिरांशः काठिन्यं यस्य तत् । विक्रियालक्षणम्—अथेति । गात्ररुहेषु लोमसु हर्ष उद्गमः ॥५०४-५०५॥

तेषु तेषु असंख्येषु जन्मसु नानाविधव्याधियुक्ता भवन्ति । मुहूर्त्तं क्षणं वापि वासुदेवं न कीर्त्तयेदिति यत्, सैव हानिः पुरुषार्थक्षयः, तदेव महत् छिद्रं, कर्म्मसाङ्गताया अन्तरायो वा । स एव मोहोऽज्ञानं, स एव च विभ्रमः भ्रान्तिविशेषः, संसारभ्रमणं मरणं वा ॥५०८॥

अतएव उक्त है—जिनकी पादुका भवार्णव के जीर्ण पङ्क में निमग्न जनगण के उद्धार कार्य्य में सुदक्ष है, 'कृष्ण' यह वर्णद्वय श्रवण से जिनके आनन्दाश्रु अविरल निपतित होता है, एवं हर्षरोमाञ्च उद्भूत होता है, उन भक्तवृन्द को नमस्कार ॥५०४॥

और भी द्वितीयस्कन्ध में वर्णित है—श्रीहरिनाम ग्रहण करने पर भी जिसका हृदय विकार प्राप्त नहीं होता है, नेत्र प्रेमाश्रुपूर्ण नहीं होता है, रोमसमूह हर्षोद्गत नहीं होते हैं, हाय ! उसका हृदय को पाषाण सदृश कठिन जानना होगा ॥५०५॥

इतिहासोत्तम में लिखित है—विष्णु का नाम सङ्कीर्त्तन से जिसका गात्र रोमाञ्चित नहीं होता है, वह व्यक्ति वज्रवत् कठिन है ॥५०६॥

अथ श्रीमन्नामकीर्त्तन-नित्यता

कात्यायन संहिता में उक्त है—जो सब मनुष्य नामसङ्कीर्त्तनजात पुण्य संग्रह नहीं करते हैं, वे शत शत जन्म में भी विविध व्याधिग्रस्त होते हैं, जो मुहूर्त्त, अथवा जो क्षण, हरिकीर्त्तन से व्यतीत नहीं होता है, उसी को महाहानि, महाच्छिद्र मोह एवं विभ्रम जानना चाहिये ॥५०७-५०८॥

पाद्मे वैशाख-माहात्म्ये यमब्राह्मण-संवादे—

अवमत्य च ये यान्ति भगवत्कीर्त्तनं नराः । ते यान्ति नरकं घोरं तेन पापेन कर्म्मणा ॥५०९॥

श्रुतयश्च—

ॐ आस्य जानन्तो नाम चिद्विविक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥५१०॥

ॐ तत् सत् ॐ पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवश्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायान्ते रणयन्तः संदृष्टौ ॥५११॥

एवं नामसंकीर्त्तनस्य नित्यतां लिखित्वा नामकीर्त्तनश्रवणानुमोदनादिनित्यतामपि लिखति— अवमत्येति। ये भगवत्कीर्त्तनमनादृत्यान्यतो यान्ति ॥५०९॥

चैतन्यदेवं तं वन्दे यस्य नाम-समाश्रयात् । प्राप्नुयादधिकारित्वं सर्व्वत्रानधिकार्य्यपि ॥

स्मृत्युक्तमेवार्थं श्रुतिभिः प्रमाणयन् लिखति—श्रुतयश्चेति । आस्य एतदित्यर्थः, हे विष्णो एतन्नाम जानन्तः । यद्वा, आ अस्येति पदद्वयम्, अस्य प्रकटानन्ताद्भुतमाहात्म्यस्य तव नाम आ सम्यक् जानन्तः विचारयन्तः नामैव विविक्तन ब्रुवाणा नामेव भजामहे । तच्च कतमत् ? चित किञ्चित्, न तत्र नियम इत्यर्थः । अनेन सर्व्वस्यैव नाम्नः साम्यमभिप्रेतम् । यद्वा, कीदृशम् ? चित्ज्ञानस्वरूपं, महः सर्व्वप्रकाशकं, तत एव सर्व्ववेदाद्याविर्भावात् । तथा चोक्तं श्रीब्रह्मणा नाममयाष्टादशाक्षरमन्त्रप्रसङ्गे तापनीयश्रुतौ (१।२८) —तेष्वक्षरेषु भविष्यज्जगद्रूपं प्रकाशयत्' इति । यद्वा, महः परमानन्दम्, एवं ब्रह्मस्वरूपमित्यर्थः । पुनश्च कीदृशम् ? सुमतिं सुष्ठु मन्यत इति तथा तत् सुज्ञेयं, न चात्मस्वरूपादिवत् दुर्ज्ञेयं, न चात्मस्वरूपादिवत् दुर्ज्ञेयमित्यर्थः । यद्वा, मतिर्विद्या शोभनविद्यारूपम्, एवं साध्यत्वं साधनत्वं चोक्तम् । अतस्तदेव भजनीयं भजामह इति ॥५१०॥

किञ्च, देवस्य मायया क्रीड़तोऽपि, यद्वा, परमपूज्यस्य तव पद्यते ज्ञायत इति पदं स्वरूपं पदारविन्दं वा, प्रति नमसा नत्या व्यन्तः तन्निर्व्वचने विवादं कुर्व्वाणाः । यद्वा, पदमेव नमस्कारद्वारा व्यन्तः सन्तन्वन्तः प्रकटयन्त इत्यर्थ । तदेव रणयन्तः अन्योऽन्यं कीर्त्तयन्तश्च । संदृष्टौ सम्यगवधारणे सति अन्ते पश्चात्; यद्वा, तन्निष्ठायाञ्च सत्यां भद्राय आत्मनः श्रेयसे; यद्वा, भद्रायेत्यस्यैव विवरणं सन्दृष्टाविति सम्यक्दर्शने निमित्ते, त्वां साक्षाद्द्रष्टुमित्यर्थः । तव नामान्येव चित् चैतन्यरूपाणि दधिरे धृतवन्तः, निश्चयेनाश्रितवन्त इत्यर्थः । कीदृशं पदम् ? अवश्रवे समस्तात् श्रूयमाणे श्रवसि कीर्त्तौ विषये आपन्नानां भक्तानां यशो गायतामित्यर्थः । मृक् मृजा परिशोधनं, तां तनोतीति आपन्नमृक्तम् । यद्वा, मार्ष्टि शुध्यतीति मृक्, तस्य भावो मृक्ता, आपन्नानां मृक्ता यस्मात्; पुनः कीदृशम् ? तत् सत् परब्रह्मस्वरूपमित्यर्थः । यद्वा, श्रवस्यवश्रव इति नामान्येव दधिर इत्यत्र हेतुः—नाम्नामेव माहात्म्यविशेषे श्रूयमाणे सतीत्यर्थः ॥५११॥

पद्मपुराण के यम-ब्राह्मण-संवाद में उक्त है—जो मनुष्य, भगवत् कीर्त्तन को लक्ष्य न करके अर्थात् अनादर करके अन्यत्र गमन करते हैं, वे उस पाप कर्मानुष्ठान निबन्धन नरक में अवस्थान करते हैं ।।५०९।।

कारणश्रुति में लिखित है—हे विष्णो ! आपके यह ज्ञान स्वरूप, सर्वप्रकाशक, एवं सुज्ञेय नाम का भजन हम सब विचार पूर्वक करते हैं । हे परमपूज्य ! आपके चरणकमल में पुनः पुनः प्रणाम करते हैं । कारण, उक्त श्रीचरणकमल का माहात्म्य श्रवण कर भक्तजनगण यशः एवं मोक्ष के अधिकारी हो सकते हैं । जो व्यक्ति, उक्त चरणकमल के निर्वाचन निमित्त वाद-विवाद में प्रवृत्त होते हैं, एवं परस्पर कीर्त्तन कर उसका अवधारण करते हैं । उनके हृदय में आसक्ति का विकाश होने पर वे सब आपको साक्षात् देखने के निमित्त चैतन्य स्वरूप आपका नामाश्रय करते हैं । सविस्मय से कहते हैं—उन प्राचीन, प्रसिद्ध, पूर्णपदार्थ श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में तुम जिस प्रकार जानते हो, उसी प्रकार कीर्त्तन करके जन्म सफल करो । हे विष्णो!

ॐ तमु स्तोतारः पूर्व्वं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्त्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विविक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥५१२॥ इत्याद्या इति।

ईदृशे नाममाहात्म्ये श्रुति-स्मृति-विनिश्चिते।
कल्पयन्त्यर्थवादं ये ते यान्ति घोरयातनाम् ॥५१३॥

अथ श्रीभगवन्नामार्थवादकल्पनादूषणम्

कात्यायनसंहितायाम्—
अर्थवाद हरेर्नाम्नि सम्भावयति यो नरः। स पापिष्ठो मनुष्याणां निरये पतति स्फुटम् ॥५१४॥

ब्रह्मसंहितायाम् बौधायनं प्रति श्रीभगवदुक्तौ—
यन्नामकीर्त्तनफलं विविधं निशम्य, न श्रद्दधाति मनुते यदुतार्थवादम्।
यो मानुषस्तमिह दुःखचये क्षिपामि, संसारघोरविविधार्त्तिनिपीड़िताङ्गम् ॥५१५॥

किञ्च, उ विस्मये निर्द्धारे वा। तं प्रसिद्धं भगवन्त श्रीकृष्णं स्तोतारः स्तुध्वमित्यर्थः। कथम् ? यथाविद यथा जानीथ, तथैव न तत्स्तोत्रादिनियम इत्यर्थः। कथम्भूतम् ? पूर्व्वं पुरातनं, न त्वधुनावतीर्णत्वेन नूतनमित्यर्थः। एवमवतारित्वमुक्तम्। किञ्च, ऋतस्य वेदस्य गर्भं तात्पर्य्यगोचरमित्यर्थः। यद्वा, ऋतस्य ब्रह्मणः गर्भं सारभूतं सच्चिदानन्दघनमित्यर्थः। ततश्च जनुषा पिपर्त्तन पूर्णा भवत, जन्मानि समापयतेत्यर्थः। यद्वा, तं देवं जनुषा पिपर्त्तन स्वच्छन्दचरितेन वहुविधेन जन्मना पूरयत, मत्स्याद्यवतारैरन्वितं परिपूर्णं वर्णयतेत्यर्थः। किञ्च, अस्य देवस्य नाम च आ विविक्तन, सम्यक् कीर्त्तयत। हे जानन्तः, भो विद्वांसः, यद्वा, आजानन्तः सर्व्वोत्कृष्टतयाऽवधारयन्तः सन्तः। हे विष्णो वयन्तु स्तोतुं चासमर्थाः, केवलं तव नामैव भजामहे। अन्यत् पूर्व्ववत्। यद्वा, हे विष्णो यथा विदन्तीति यथाविदः सन्तो यथाविद्यस्तथेत्यर्थः। तं नामरूपं त्वां स्तोतारः स्तुवन्तः। अतएव जनुषा पिपर्त्तनः जन्मनः पूर्त्तिं कुर्व्वाणाः। आजानन्तः विचारयन्तः, विविक्तन कीर्त्तयन्तश्च तव नाम भजामहे। तमित्यत्र तदिति वा पाठः। ततश्च तन्नमैवैकं स्तोतार इत्यादीनां कर्म्म। तस्यैव विशेषणं पूर्व्वमित्यादि। यद्वा, हेतौ शतृङ्। तं त्वां स्तोतुमाज्ञातुं कीर्त्तयितुञ्च तव नामैव भजामहे, त्वन्नामसेवनेनैव तव स्तुतिः सम्यक् ज्ञानं कीर्त्तनञ्च सम्पद्यत इत्यर्थः। अन्यत् समानम्। अलमतिविस्तरेण ॥

एवं बहुल-स्मृति-श्रुतिवचनैः श्रीमन्नाम-माहात्म्यं निर्धार्य्य तत्र कथञ्चिदप्यर्थवादो न कल्पयितव्य इति दुष्टमीमांसकान् शिक्षयन्निव लिखति—ईदृश इति। अर्थवादकल्पना चात्र न घटत इति अजामिलोपाख्याने श्रीधरस्वामिपादैस्तथा भगवन्नामकौमुदीकार-श्रीलक्ष्मीधर-स्वामिपादार्दाभिश्च सन्यायं व्याख्यातमस्त्येवेति, किमत्र लिखनप्रयासेन ॥५१३॥ यः सम्भावयत्यपि, किं पुनः कल्पयेदिति ॥५१४॥

यदिति 'यः' इत्येव वा पाठः। न श्रद्दधाति, न विश्वसिति, प्रत्युत योऽर्थवादं मनुते। संसारे विविधा या आर्त्तयः, ताभिर्निपीड़िताङ्गं यथा स्यात्तथा क्षिपामि ॥५१५॥

किस प्रकार स्तव अथवा कीर्त्तन करना होता है, यह हम सब नहीं जानते हैं। अतएव सर्वदा नाम ग्रहण करना ही हमारा नित्य कार्य्य है ॥५१०-५१२॥

जो मनुष्य, श्रुति स्मृति निर्धारित इस प्रकार नाम-माहात्म्य विषय में अर्थवाद की कल्पना करते हैं, वे नरकादि की दारुण यातना को प्राप्त करते हैं ॥५१३॥

अथ श्रीभगवन्नामार्थवादकल्पनादूषणम्

कात्यायनसंहिता में लिखित है—जो मनुष्य श्रीहरि के नाम में अर्थवाद की सम्भावना करता है, मनुष्यों के मध्य में वह मनुष्य पापिष्ठ है, वह निश्चय ही नरक में निपतित होता है ॥५१४॥

ब्रह्मसंहिता में बौधायन के प्रति श्रीभगवदुक्ति में प्रकाशित है—जो मनुष्य, नामसङ्कीर्त्तन के विविध

जैमिनिसंहितायाञ्च—

श्रुति-स्मृति-पुराणेषु नाममाहात्म्यवाचिषु। येऽर्थवाद इति ब्रूयुर्न तेषां निरयक्षयः ॥५१६॥

तस्मिंश्च भगवन्नाम्नि जगदेकोपकारिणि। विश्वैकसेव्ये मतिमानपराधान् विवर्ज्जयेत् ॥५१७॥

यत उक्तं पाद्मे श्रीनारदं प्रति श्रीसनत्कुमारेण—

सर्व्वापराधकृदपि मुच्यते हरिसंश्रयः ॥५१८॥

हरेरप्यपराधान् यः कुर्य्यात् द्विपदपांशनः। नामाश्रयः कदाचित् स्यात्तरत्येव स नामतः ॥५१९॥

नाम्नोऽपि सर्व्वसुहृदो ह्यपराधात् पतत्यधः ॥५२०॥

अथ नामापराधाः

तं प्रति तेनैवोक्ताः—

सतां निन्दा नाम्नः परममपराधं वितनुते, यतः ख्यातिं यातं कथमु सहते तद्विगरिहाम।

शिवस्य श्रीविष्णोर्य इह गुणनामादि सकलं,धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः ॥५२१॥

निरयाणां क्षयो नाशो न भवति, किन्तु सदा निरयेषु वसन्तीत्यर्थः ॥५१६॥

एवं श्रीभगवन्नाम्नोऽशेषदोषहरणाखिल गुणमयत्वादिमाहात्म्यविशेषं विलिख्य तेन चाविनीतानामुच्छृङ्खल-तया श्रीवैष्णवादिष्वपराधमाशङ्क्य तन्निवारणाय नामापराधान् लिखिष्यन् आदौ विभीषिकार्थमपराधफलमग्रे दर्शयन्, तांस्त्याजयति—तस्मिंश्चेति। अपराधविवर्ज्जने हेतुः—जगदेकोपकारिणीति, विश्वैकसेव्य इति च॥

सर्व्वान् अपराधान् पापानि करोतीति तथा सोऽपि हरिसंश्रयः भगवन्तं प्रपन्नः सन् मुच्यते, ततो मुक्तो भवति। हरेरपराधान् पूर्व्वलिखितान् श्रीवाराहोक्तान् द्वात्रिंशदादीन्। द्विपदेषु नरेषु पांशनः अधमः। स यदि कदाचिन्नामाश्रयः नामकीर्त्तकृत् स्यात्, तदा नामप्रभावतः तरति, हरिविषयकापराधेभ्योऽपि मुच्यते एव। सर्व्वसुहृदः जगदुपकारपरस्यापि नाम्नोऽपराधात् हि निश्चितं अधः पतति, नरकं गच्छति ॥५१७-५२०॥

यतः सद्भ्यः ख्यातिं प्रसिद्धिं प्राकट्यं वा प्राप्तं नाम। उ खेदे, तेषां विगर्हां कथं सहते? अपि तु सोढुं न शक्नुयादेव; अतोऽयमेकोऽपराधः। अस्य च मुख्यत्वादादौ निर्द्देशः। आदि-शब्देन रूप-लीलादि, धियापि हरिनाम्नि अहितमपराधं करोतीति तथा सः ॥५२१॥

फलश्रुति को श्रवण कर उसमें विश्वास नहीं करता है, प्रत्युत उसको अर्थवाद समझता है, मैं संसार की विविध यातना से उसका अङ्ग पीड़ित करके उसको इस जगत् में दुःखराशि में निक्षेप करता हूँ ॥५१५॥

जमिनी सहिता में लिखित है—जो मानव, नाम-माहात्म्य वाचक श्रुति स्मृति एवं पुराणसमूह को अर्थवाद कहते हैं, अर्थात् वह वास्तविक अर्थ नहीं है, प्रशंसावाद है, इस प्रकार कहते हैं, उनके नरक का कभी क्षय नहीं होता है। अतः बुद्धिमान् मानव, जगत् के एकमात्र उपकारी एवं विश्व संसार के एकमात्र सेव्य, उन श्रीभगवान् के नाम के प्रति अपराध समूह का वर्जन करें ॥५१६-५१७॥

कारण पद्मपुराण में श्रीनारद के प्रति श्रीसनत्कुमार की उक्ति है—जिसने सब प्रकार के अपराध अथवा पापाचरण किया है, वह मनुष्य श्रीहरिचरणाश्रय ग्रहण करने से पापों से मुक्त हो जाता है एवं जो नराधम श्रीहरि के निकट में अपराध करता है, वह यदि विपदनाशन श्रीहरिनाम का आश्रय ग्रहण करता है, तो उस नाम के प्रभाव से भगवदपराध से मुक्त हो जाता है, अतएव सर्व सुहृद् नाम के प्रति अपराध अनुष्ठित होने पर निश्चय ही अधःपतित होकर नरक-वास होगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥५१८-५२०॥

अथ नामापराधाः

उक्त पुराण में ही श्रीनारद के प्रति श्रीसनत्कुमार कहे हैं—साधुवृन्द की निन्दा, श्रीनाम के निकट

गुरोरवज्ञा श्रुतिशास्त्रनिन्दनं, तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनम् ।
नाम्नो बलाद्यस्य हि पापबुद्धि,-र्न विद्यते तस्य यमैर्हि शुद्धिः ।।५२२।।
धर्म्मव्रतत्यागहुतादिसर्व्व,-शुभक्रियासाम्यमपि प्रमादः ।
अश्रद्दधाने विमुखेऽप्यश्रृण्वति, यश्चोपदेशः शिवनामापराधः ।।५२३।।
श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितोऽधमः । अहं ममादिपरमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ।।५२४

श्रुतीनां धर्म्मशास्त्राणाञ्च निन्दनम् । तथेत्युक्तसमुच्चये । अर्थवादो यस्तस्य कल्पनं, यद्वा, हरिनाम्नार्थवादः कल्पनमेव, न तु तत्त्वतो घटत इत्यर्थः । कल्प्यन इति वा पाठः । यद्वा, हरिनाम्नि कल्पनञ्च, तन्माहात्म्यार्थ-परित्यागेन दुर्बुद्धया वृथार्थान्तरकल्पना चैकोऽपराध इत्यर्थः । नाम्नो बलात् नामग्रहणेन पापक्षयो भवेदिति नाम्नां प्रभावज्ञानेन पापे बुद्धिरपि, किं पुनः प्रवृत्तिः । यद्वा, अकारप्रश्लेषेण नाम्नां बलमज्ञात्वा यस्य पापे बुद्धिरित्यर्थः; तस्य यमैः बहुलव्रतादिभिरहिंसादिभिर्द्वादशीभिर्वा; यद्वा, बहुभिः धर्म्मराजैः चिरकालं तत्कृत-यातनाभोगेनापीत्यर्थः ।।५२२।।

धर्म्मादीनां सर्व्वासां शुभक्रियाणां साम्यं नाम्ना तुल्यत्वमपि प्रमादः अपराध इत्यर्थः । यद्वा, धर्म्मादि-शुभक्रियासाम्यमेकोऽपराधः; प्रमादः— नाम्न्यनवधानताप्येकः, एवमत्रापराधद्वयम् । ततश्च तथार्थवादो हरिनाम्नि कल्पनमित्यत्रैकापराधो ज्ञेयः । किञ्च, अश्रद्दधानादौ जने य उपदेशः, स शिवनाम्नि अपराधः, श्रीभगवता सह श्रीशिवस्याभेदेन शिवेत्युक्तिः ।।५२३।।

नाम्नि प्रीतिः श्रद्धा भक्तिर्वा, तया रहितः सन्, यः अहंममादिपरमः, अहन्ता ममता च, आदि-शब्देन विषयभोगादिकं चैव परमं प्रधानं, न तु नामग्रहणं यस्य तथाभूतः स्यात, सोऽप्यपराधकृत । यद्वा, धर्म्म-व्रतेत्याद्यर्द्धश्लोकेनैक एकापराधः । अहंममादीत्यर्द्धश्लोके चास्मिन् एकः । एवं अपराधा दश, ये ज्ञात्वापि न वर्ज्जयन्ति, सहसा नाम्नोऽपराधान् दशेति तत्रैवोक्तेः । ततश्चायमर्थः—यः प्रीतिरहितो नाम्न्येव, सोऽधमः नामापराधीत्यर्थः । यद्वा, योऽधमः प्रीति-रहितः, सोऽपराधकृदित्युत्तरेणान्वयः । किञ्च, नाम्न्येव विषये याऽहंममतादिपरमः—अहं बहुतरनाम-कीर्त्तक इतस्ततो नामकीर्त्तनञ्च मत्प्रवर्त्तितमेव, मया समो नामकीर्त्तन-परोऽन्यः कः ? मदीयजिह्वाधीनमेव नामेत्यादिकमेव परमं प्रधानं, नामकीर्त्तनञ्च कदाचित् सिध्यति न वा यस्य तथाभूतो यः, सोऽपीति । अतएवादिष्टं भगवता— 'तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना । अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ।।' (श्रीशिक्षाष्टकम् ३) इति ।।५२४।।

भयङ्कर अपराध का विस्तार करती है, कारण, जिन नामनिष्ठ साधुगण से जगत् में श्रीकृष्णनाम महिमा प्रचारित होती है, श्रीनाम उन सब साधु की निन्दा को सहन कैसे करेंगे ? सुतरां साधुनिन्दा श्रीहरिनाम के पक्ष में सह्य होने वाली नहीं है । जो मानव, इस जगत् में श्रीविष्णु के एवं श्रीशिव के नाम, रूप, गुण, लीला प्रभृति को भेद-भाव से देखता है, वह व्यक्ति, निश्चय ही नामापराधी है । जो मनुष्य, गुरु की अवज्ञा करता है, अर्थात् आदर नहीं करता है, श्रीहरिनाम-माहात्म्य को अति स्तुति कहता है, भगवान् के नाम-समूह को कल्पित मानता है, नाम ग्रहण करने पर जब पाप क्षय होता है, अतएव पाप से डर क्या है, नित्य पाप भी करूँगा और शुद्धिहेतु नाम भी करलूँगा, इस प्रकार बुद्धि से जो नाम ग्रहण करता है, उसकी शुद्धि यमनियम ध्यान धारणादि प्रक्रिया समूह के द्वारा अथवा बहुल यमयातना भोग के द्वारा भी नहीं होती है । धर्म, व्रत, दान और होमादि प्राकृत शुभ कार्य्य के सहित अप्राकृत नाम ग्रहण की समता करना, नाम ग्रहण एवं श्रवण में अनवधान होना, अर्थात् असावधानी से ध्यान न देना, यह भी एक नामा-पराध है । अविश्वासी, श्रद्धाहीन अथवा नाम सुनने में विमुख मनुष्य को उपदेश प्रदान करना भी मङ्गल-

जाते नामापराधेऽपि प्रमादेन कथञ्चन । सदा सङ्कीर्त्तयन्नाम तदेकशरणो भवेत् ॥५२५॥

अपराधभञ्जनम्

उक्तञ्च तेनैव तत्र—

नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् । अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्येवार्थकराणि च ॥५२६॥

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम् ।
तच्चेद्देह-द्रविण-जनता-लोभ-पाषण्ड-मध्ये
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ॥५२७॥

कथञ्चन प्रमादेन भ्रमेण जाते सति तत् नामैव एकं शरणमाश्रयो यस्य तथा, तथाभूतो भवेत्, सर्व्वथा नामपरो भवेदित्यर्थः ॥५२५॥

यस्मात् अविश्रान्तं सततं प्रयुक्तानि कीर्त्तितानि सन्ति तानि नामान्येवार्थकराणि सर्व्वप्रयोजन-सम्पादकानि ॥५२६॥

एतदेव परिपोषयन् नामकीर्त्तने लाभ-पूजाख्यात्यर्थतां परित्याजयति— नामैकमित्यादि । वाचि गतं प्रसङ्गाद्वाङ्मध्ये प्रवृत्तमपि, स्मरणपथगतं कथञ्चिन्मनःस्पृष्टमपि, श्रोत्रमूलं गतं किञ्चित् श्रुतमपि, शुद्धवर्णं वा अशुद्धवर्णमपि वा, व्यवहितं शब्दान्तरेण यद्व्यवधानं, वक्ष्यमाण-नारायणशब्दस्य किञ्चिदुच्चारणानन्तरं प्रसङ्गादापतितं शब्दान्तरं तेन रहितं सत्; यद्वा, यद्यपि 'हलं रिक्तम्' इत्यादुक्तौ हकाररिकारयोर्वृत्त्या हरीति नामास्त्येव, तथा 'राजमहिषी' इत्यत्र रामनामापि, एवमन्यदप्यूह्यम्; तथापि तत्तन्नाममध्ये व्यवधायकमक्षरान्तरमस्तीत्येतादृश-व्यवधानरहितमित्यर्थः । यद्वा, व्यवहितञ्च तद्रहितञ्चापि वा तत्र व्यवहितं नाम्नः किञ्चिदुच्चारणानन्तरं कथञ्चिदापतितं शब्दान्तरं समाधाय पश्चान्नामावशिष्टाक्षरग्रहणमित्येवं-रूपं, मध्ये शब्दान्तरेणान्तरितमित्यर्थः, रहितं पश्चादवशिष्टाक्षरग्रहणवर्जितं, केनचिदंशेन हीनमित्यर्थः । तथापि तारयत्येव, सर्व्वेभ्यः पापेभ्योऽपराधेभ्यश्च संसारादप्युद्धारयत्येवेति सत्यमेव । किन्तु नामसेवनस्य मुख्यं यत् फलं, तन्न सद्यः सम्पद्यते । तथा देहभरणाद्यर्थमपि नामसेवनेन मुख्य फलमाशु न सिध्यतीत्याह— तच्चेदिति । तन्नाम चेत् यदि देहादिमध्ये निक्षिप्तं, देहभरणाद्यर्थमेव विन्यस्तं, तदापि फलजनकं न भवति किम् ? अपि तु भवत्येव, किन्तु अत्र इहलोके शीघ्रं न भवति, किन्तु विलम्बनैव भवतीत्यर्थः ॥५२७॥

मय श्रीहरिनाम के निकट अपराध है । श्रीभगवान् के सहित श्रीशिव का अभेद ज्ञान से ही यहाँ 'शिव' शब्द का प्रयोग हुआ है । जो व्यक्ति अत्यद्भुत नाम-माहात्म्य श्रवण करके भी उसमें प्रीति अनुरक्ति प्रकाश नहीं करता है, एवं 'मैं, मेरा' इत्यादि ज्ञान अथवा विविध प्रकार के भोगों में तत्पर होता है, किन्तु नाम ग्रहण नहीं करता है, वह मानव भी निश्चय नामापराधी है ॥५२१-५२४॥

अनवधानतावशतः, अथवा अपर किसी कारण से नामापराध अनुष्ठित होने पर नामैकशरण होकर सर्वदा नाम सङ्कीर्त्तन करना चाहिये ॥५२५॥

अपराधभञ्जनम्

उक्त पुराण में ही श्रीसनत्कुमार कहे हैं—नामापराध युक्त जनगण के समस्त पाप विनाश श्रीहरिनाम ही करते हैं, एवं अविश्रान्त भाव से नाम ग्रहण करने पर प्रयोजन साधित होता है, अर्थात् नामापराध रहित होकर सर्वदा श्रीहरिनाम ग्रहण करने पर श्रीहरिनाम का जो फल श्रीकृष्ण-प्रेम है, उसका लाभ भी होता है ॥५२६॥

हे विप्र ! केवलमात्र भगवान् का एक नाम, प्रसङ्ग क्रम से जिसके वचनगत, कथञ्चित् स्मृति-पथगत,

अतएवोक्तं श्रीनारदेन बृहन्नारदीये—

महिम्नामपि यन्नाम्नः पारं गन्तुमनीश्वराः । मनवोऽपि मुनीन्द्राश्च कथं तं क्षुण्णधीर्भजे ?५२८॥

इति ।

इत्थं श्रीकृष्णपादाब्जे भक्तिः कार्या सदा बुधैः ।
सा च तस्य प्रसादेन महापुण्यात् प्रजायते ॥५२९॥

अथ श्रीमद्भक्तेर्दुर्लभत्वम्

स्कान्दे श्रीपराशरोक्तौ—

नह्यपुण्यवतां लोके मूढानां कुटिलात्मनाम् । भक्तिर्भवति गोविन्दे स्मरणं कीर्तनं तथा ॥५३०॥

एवन्तु संहरन् श्रीमन्नाममाहात्म्यस्यानन्त्यमेव प्रकटं लिखति— महिम्नामिति । [illegible] पुनस्तत्त्वमनुभवितुमिति ॥५२८॥

चैतन्यचन्द्रं तं वन्दे वर्षन् भक्तिरसं निजम् । [illegible] ॥

एवं भक्त्याङ्गानि लिखित्वा इदानीं समग्रां भक्तिं लिखन् आदौ [illegible] लिखति—इत्थमिति । महापुण्यात् यस्तस्य श्रीकृष्णस्य [illegible] जायते । [illegible] पुण्यविशेषार्थप्रयत्नाय लिखितम् । यद्वा, तस्य प्रसादेन [illegible] यद्यपि तस्य प्रसाद एव भक्तिप्रादुर्भावे स्वतन्त्रो विशेषो हेतुः, [illegible] सत्यास्तस्याः समूलता शोभाविशेषश्च सम्पद्यत इति तथा लिखितम् । [illegible] ज्ञान-द्वारा मोक्षो जन्यत इति, अतएव प्र-शब्दः । एवञ्च 'जन्मकोटि [illegible]' इत्यादि-वचनान्यप्युपपद्यन्त इति दिक् ॥५२९॥

अपुण्यवतामेव लक्षणम्—मूढानामिति कुटिलात्मनामिति च । भक्तिः पूजा परिचर्यादिलक्षणा, मुख-

---

स्मरण-पथगत, अथवा श्रोत मूलगत होता है, वह यदि शुद्ध वर्ण, अशुद्ध वर्ण, अथवा खण्डोच्चारित होता है, तो भी वह नाम ग्रहणकारी का उद्धार करता है, यह सत्य है, किन्तु, नामग्रहण का मुख्य जो फल है, वह सद्यः उत्पन्न नहीं होता । अर्थात् 'हलं रिक्त' 'राजमहिषी' शब्द द्वय से हरि एवं राम नाम का ग्रहण होता है, किन्तु वह 'ल' 'ज' से व्यवहित है । ऐसा होने पर भी उच्चारणकारी व्यक्ति का नाम ग्रहण होता है, एवं फलस्वरूप उसका उद्धार भी होता है । किन्तु श्रीकृष्ण में ममता नहीं होती है । उसी प्रकार देह, अर्थ, परिवार एवं सर्वस्वलोभी शास्त्राविश्वासी व्यक्ति के निकट श्रीहरिनाम उपस्थित होने पर भी आशु फलद नहीं होता है । अर्थात् देहादि पोषणहेतु श्रीहरिनाम का विनियोग होने पर सत्वर श्रीकृष्ण प्रीति नहीं होती है, किन्तु विलम्ब से होती है, अर्थात् महत् सङ्ग से दोषापसारण होने से श्रीकृष्ण-प्रीति होती है ॥५२७॥

अतएव बृहन्नारदीय पुराण में श्रीनारद ने कहा है—महात्मा मनु प्रभृति एवं अन्यान्य मुनीन्द्रवृन्द, जिस नाम की महिमा का पार प्राप्त करने में अक्षम हैं, मैं क्षीणबुद्धि होकर किस प्रकार उस नाम का भजन कर सकूँगा ?॥५२८॥

इस प्रकार विचक्षण व्यक्तिगण सर्वदा श्रीकृष्णपादपद्म में भक्ति का विधान करते रहते हैं । वह भक्ति सहज लभ्य नहीं है, बहु जन्मार्जित महापुण्य के फल से यदि श्रीकृष्ण प्रसाद लाभ होता है तो कृष्ण प्रसाद रूप महापुण्य से ही भक्ति प्राप्ति होती है ॥५२९॥

अथ श्रीमद्भक्तेर्दुर्लभत्वम्

स्कन्दपुराण में श्रीपराशर की उक्ति है—दुष्कृतशाली, कुटिलहृदय एवं मूढ़मति जनगण की श्रीगोविन्द

तत्रैव श्रीब्रह्मोक्तौ —

निमिषं निमिषार्द्धं वा मर्त्यानामिह नारद । नादग्धाशेषपापानां भक्तिर्भवति केशवे ।।५३१।।

योगवाशिष्ठे—

जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः । नराणां क्षीणपापानां कृष्णे भक्तिः प्रजायते ।।५३२।।

आदिवाराहे—

जन्मान्तरसहस्रेण समाराध्य वृषध्वजम् । वैष्णवत्वं लभेद्धीमान् सर्व्वपापक्षये सति ।।५३३।।

बृहन्नारदीये यज्ञध्वजनृपोपाख्यानान्ते—

जन्मकोटि-सहस्रेषु पुण्यं यैः समुपार्ज्जितम् । तेषां भक्तिर्भवेच्छुद्धा देवदेवे जनार्द्दने ।।५३४।।

सुलभं जाह्नवीस्नानं तथा चातिथि-पूजनम् । सुलभाः सर्व्वयज्ञाश्च विष्णुभक्तिः सुदुर्लभा ।।५३५

इतिहास-समुच्चये शिलोञ्छवृत्तिवाक्ये—

गङ्गायां मरणञ्चैव दृढ़ा भक्तिश्च केशवे । ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ।।५३६।।

साध्यं स्मरणं कीर्त्तनञ्च न भवति, न सिध्यति । यद्वा, भक्तिः समग्रा न भवतीति किं वक्तव्यं, तदङ्गमपि स्मरणं कीर्त्तनञ्च न भवतीत्यर्थः; यद्वा, सर्व्वेषु अङ्गेषु स्मरणकीर्त्तनयोरेव परममुख्यत्वात् भक्तेस्तत्प्रधानता-विवक्षया लक्षणमेवोद्दिष्टम्— स्मरणं कीर्त्तनञ्चेति । यद्वा, समुच्चये तथा-शब्दः । तथा तेन विशुद्धत्वादि-प्रकारेण सकामत्वादि-प्रकारेणापीति वा ।।५३०।।

निमिषमपि निमिषार्द्धमपि भक्तिर्न भवति ।।५३१।।

एवं पुण्यहीनानां पापिनाञ्च कदाचिदपि न जायत इति दौर्लभ्यं लिखितम् । अधुना समूलाखिलपाप-क्षयेणैव जायत इति लिखति— जन्मान्तरेति । क्षीणानि सवासनं क्षयं गतानि पापानि येषां तेषामेव ।।५३२।।

अधुना महापुण्यसञ्चयेनैव जायत इति परमं दौर्लभ्यं लिखति—जन्मेत्यादिना साध्यत इत्यन्तेन । शुद्धा ज्ञान-कर्म्माद्यसंमिश्रिता ।।५३३-५३४।।

सुदुर्लभेति—गङ्गास्नानादि-जनितपुण्यतोऽपि, विशिष्टतरपुण्येनैव जायत इति सूचितम् । तत्र लिखितमेव —'सा च तस्य प्रमादेन महापुण्यात् प्रजायते' इति ।।५३५।।

ब्रह्मविद्याप्रबोधः—भक्तितत्त्वज्ञानम् ।।५३६।।

चरणों में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है, यहाँ तक कि श्रीगोविन्द का नामस्मरण एवं नामकीर्त्तन में भी उन सबका अधिकार नहीं होता है ।।५३०।।

स्कन्दपुराण में ब्रह्मा की उक्ति है—हे नारद ! जिनकी अशेष पापराशि दग्ध नहीं हुई है, संसार में उन सब व्यक्ति की निमेष अथवा तदर्द्धकाल भी श्रीकेशव के श्रीचरणों में भक्ति नहीं होती है ।।५३१।।

योगवाशिष्ठ में लिखित है—जो सब मनुष्य सहस्र सहस्र जन्म, तपस्या, ज्ञान एवं समाधि के द्वारा पाप क्षय किये हैं, श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में भक्ति उन सबकी होती है ।।५३२।।

आदि वराहपुराण में लिखित है—जो बुधव्यक्ति, सहस्र जन्मान्तर में वृषध्वज श्रीशिव की आराधना करके सर्वविध पाप क्षय किये हैं, वे ही वैष्णव हो सकते हैं ।।५३३।।

बृहन्नारदीय पुराण के यज्ञध्वज नृप के उपाख्यान के अन्त में वर्णित है—जिन पुरुषों ने सहस्र सहस्र कोटि जन्म में पुण्य सञ्चय किया है, उन्हीं की देवदेव जनार्दन में शुद्धाभक्ति होती है ।।५३४।।

पृथिवी में गङ्गा स्नान एवं अतिथि सेवा दुर्लभ नहीं है, एवं सर्व यज्ञानुष्ठान भी दुर्लभ नहीं है, किन्तु विष्णुभक्ति अतिशय दुर्लभ है ।।५३५।।

इतिहाससमुच्चय के शिलोञ्छवृत्तिवाक्य में प्रकाशित है—जाह्नवी सलिल में देह विसर्जन, केशव में

अगस्त्यसंहितायाम्—

व्रतोपवासनियमैर्जन्मकोट्याप्यनुष्ठितैः । यज्ञैश्च विविधैः सम्यग्भक्तिर्भवति केशवे ।।५३७।।

विष्णुधर्मोत्तरे—

दिवसं दिवसार्द्धं वा मुहूर्त्तञ्चैकमेव वा । नाशाच्चाशेषपापस्य भक्तिर्भवति केशवे ।।५३८।।

अनेकजन्मसाहस्रैर्नानायोन्यन्तरेषु च । जन्तोः कलुषहीनस्य भक्तिर्भवति केशवे ।।५३९।।

दशमस्कन्धे गोपीः प्रति उद्धवोक्तौ (४७।२४)—

दानव्रततपोहोमजप-स्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ।।५४०।।

श्रीभगवद्गीतासु च (७।२८)—

येषां त्वन्तं गतं पापं जनानां पुण्यकर्म्मणाम् । ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः ।।५४१।।

पञ्चमस्कन्धे परीक्षितं प्रति श्रीबादरायणिना (६।१८)—

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां, दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ।
अस्त्वेवमङ्ग भजतां भगवान् मुकुन्दो, मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम् ।।५४२

येषां पुण्यव्रतानि षष्ठकालभोजनादि-नियमाः, चान्द्रायणादीनि वा, उपवासा एकादश्यादिषु अन्न-वर्ज्जनादिलक्षणाः, नियमाः चातुर्म्मास्यादिव्रतानि शौचादयो वा द्वादश, तैः । अपि-शब्द एव-शब्दार्थे ।।५३७

श्रेयोभिः—श्रेयःसाधनैः सर्व्वपुरुषार्थैर्वा ।।५४०।।

येषान्तु पुण्याचरणशीलानां सर्व्वश्रेयःप्रतिबन्धकं पापमन्तं गतं विनष्टं, ते द्वन्द्वनिमित्तेन मोहेन, यद्वा, द्वन्द्वैः सुखदुःखादिभिः तत्कारणाज्ञानेन च विनिर्मुक्ताः, यद्वा, अकार-प्रश्लेषेण अद्वन्द्वमोहाश्च ते निर्मुक्ताश्च निःशेषेण मुक्ताः सन्तः, दृढ़व्रता एकान्तिनः सन्तो मां भजन्ते ।।५४१।।

अधुना श्रीभगवतोऽप्यदेयत्वेन दौर्लभ्यविशेषं लिखति—राजन्निति । अङ्ग हे राजन्, भवतां पाण्डवानां यदूनाञ्च पतिः पालकः, गुरुरुपदेष्टा, दैवमुपास्यः, कुलपतिर्नियन्ता, किं बहुना क्व च कदाचित् वः पाण्डवानां किङ्करोऽपि आज्ञानुवर्त्ती । अस्तु नामैवं, तथाप्यन्येषां नित्यं भजतामपि मुक्तिं ददाति, न तु कदाचिदपि

दृढ़ा भक्ति का उद्भव' अथवा तत्त्वज्ञान का आविर्भाव, यह सब स्वल्प तपस्या के फल नहीं हैं ।।५३६।।

अगस्त्य संहिता में लिखित है—कोटि जन्म में अनुष्ठित व्रत, उपवास, नियम एवं विविध प्रकार के यज्ञानुष्ठानरत व्यक्ति में केशव-भक्ति का सम्यक् उदय होता है ।।५३७।।

विष्णुधर्मोत्तर में लिखित है—जिस मानव की अशेष पापराशि विनष्ट हुई है, वह व्यक्ति, एक दिवस के निमित्त, अर्ध दिवस के निमित्त केशव के प्रति भक्तिमान् ही हो सकता है । अनेक सहस्र जन्मों में विविध योनि में भ्रमण के पश्चात् निष्पाप होने पर केशव के प्रति भक्ति हो सकती है ।।५३८-५३९।।

दशमस्कन्ध में गोपीगण के प्रति उद्धव की उक्ति में प्रकाशित है—दान, व्रत, तपस्या, होम, जप, वेद-पाठ इन्द्रिय संयम प्रभृति शुभकर विविध साधन के द्वारा श्रीकृष्ण में भक्ति का आविर्भाव होता है ।।५४०।।

श्रीमद्भगवद्गीता में लिखित है—पुण्य कर्मानुष्ठान परायण जिन मनुष्यों का पाप क्षय हुआ है, वे सुख, दुःख एवं मोह मुक्त होकर एकान्त भाव से मेरा भजन करते हैं ।।५४१।।

पञ्चमस्कन्ध में परीक्षित् के प्रति श्रीशुकदेव कहे हैं—हे राजन् ! भगवान् मुकुन्द, तुम्हारे एवं यादवों के पालक, उपदेष्टा, उपास्य, प्रिय, कुलपति हैं एवं कभी कभी पाण्डवों के आज्ञानुवर्त्ती के समान आचरण भी करते हैं, एवं उपासक को सहज से मुक्ति प्रदान करते हैं, तथापि सहसा प्रेम भक्ति प्रदान नहीं करते हैं ।।५४२।।

पाद्मे श्रीप्रह्लादस्तुतौ—

लक्षेषु शृणुते कश्चित् कोटिष्वेकस्तु बुध्यते । भक्तितत्त्वं परिज्ञाय कश्चिदेव समाचरेत् ।५४३॥
पूजया हसते भक्तिर्जपतस्त्रस्यति स्फुटम् । समाधियोगाच्च वहिः सा भक्तिः केन गृह्यते ?॥५४४॥

षष्ठस्कन्धे वृत्रोपाख्यानान्ते (१४।२)—

देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीनाञ्चामलात्मनाम् । भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥५४५॥ इति ।

श्रीमद्भक्त्यै नमस्तस्यै यस्या माहात्म्यमन्दरम् ।
यत्प्रभावेण लोलोऽयं कीटोऽप्युद्धर्त्तुमिच्छति ॥५४६॥

सप्रेमभक्तियोगम् । यद्वा, भजतां यज्ञादिना सेवमानानाम्; यद्वा, स्वधर्म्माचरणादिना भगवदाज्ञाप्रतिपालन-रूपां भक्तिं कुर्व्वतामपि श्रवणादिभक्तियोगं न ददाति । एवं भगवत्प्रसादैकलभ्यता, अन्यथा च परमदौर्ल्लभ्य-मिति दर्शितम् । एवञ्च श्रवणादिकमपि यो न ददाति, स वो वश्य इति पाण्डवानां माहात्म्यञ्च सिद्धमिति दिक् ॥५४२॥

भक्तेस्तत्त्वं परमानन्दघनत्वं माहात्म्यं वा लक्षेषु लोकेषु मध्ये कश्चिदेव शृणोति, बुध्यते अवधारयति, समाचरेत्, भक्तिं करोति ।५४३॥

या भक्तिः पूजया सकामजपाङ्गपूजाविधिना हसति, तामुपहसतीत्यर्थः, तया प्रायस्तुच्छफलावाप्तेः । जपतो मन्त्रजपात् त्रस्यति बिभेति दूरमपसरतीत्यर्थः । प्रायो मन्त्रजपे विविधकामानामेव क्वचिन्मुक्तेरेव च सिद्धयुक्तेः । समाधिलक्षणात् योगाच्च वहिः, तेनाप्यप्राप्येत्यर्थः । तस्य शून्यमयत्वेन तत्र श्रवणादिभक्तेर-प्रवृत्तेः । केन गृह्यते, आत्मसात् क्रियते ? अपि तु भगवत्प्रसादं विना न केनाप्यात्मसात् कर्त्तुं शक्यते इत्यर्थः ॥५४४॥

शुद्धसत्त्वमयानामपि देवानाममलात्मनां निर्म्मलचित्तानामपि ऋषीणाम्;प्रायेणेति—कदाचित् कस्यचिदेव जायत इत्यर्थः ॥५४५॥

एवं परमदौर्ल्लभ्येन भक्तेर्माहात्म्यं लिखित्वा, इदानीं परमपि कियन्माहात्म्यविशेषं लिखन् आदौ भक्त्या भक्तिमेव तत्सिद्धये प्रणमति—श्रीमदिति । माहात्म्यमेव मन्दरो नाम महापर्व्वतः परमविस्तीर्णत्व-गुणत्वादिना, तं कीटतुल्यः क्षुद्रतरोऽप्ययं जनो यस्याः भक्तेः प्रभावेण लोलः सन् उद्धर्त्तुं समाहर्त्तुमिच्छति । अतोऽशक्येऽपि कर्म्मणि प्रवृत्तिस्तत्शक्तिप्रेरणयैव, न मे स्वत इति तन्महिम्नैव तन्माहात्म्यं किञ्चिल्लेख्यमिति भावः ॥५४६॥

पद्मपुराण की प्रह्लादस्तुति में वर्णित है—लक्ष लक्ष मानवों के मध्य में कोई एक व्यक्ति भक्तितत्त्व का श्रवण करता है, किन्तु कोटि व्यक्ति के मध्य में कोई एक व्यक्ति उसको समझ पाता है, उसके मध्य में कोई व्यक्ति जानकर आचरण करता है ॥५४३॥

सकामभाव से पुजा करने से भक्ति हास्य करती है, अर्थात् उपहास करती है, और सकाम भाव से जप करने पर भक्ति भीता होती है । एवं सकाम भाव से समाधिस्थ होने पर भक्ति बाहर भगकर चली जाती है, सुतरां इस प्रकार भक्ति को कौन मनुष्य प्राप्त कर सकता है ?॥५४४॥

षष्ठस्कन्ध के वृत्रोपाख्यानान्त में लिखित है—शुद्ध सत्त्व देवता एवं निर्म्मलात्मा ऋषियों की भी मुकुन्द-चरणों में प्रायशः भक्ति नहीं होती है, किन्तु असुर कुलोत्पन्न वृत्तासुर में भक्ति उदय किस प्रकार से हुई थी ?॥५४५॥

जिसका माहात्म्य मन्दर पर्वत के तुल्य श्रेष्ठ है, उसी श्रीमती भक्तिदेवी को नमस्कार करता हूँ । इसके प्रभाव से कीट सदृश अति सामान्य व्यक्ति 'मैं' लोभ परायण होकर तदीय माहात्म्य समुद्धार के निमित्त प्रयास कर रहा हूँ ॥५४६॥

अथ श्रीभगवद्भक्तिमाहात्म्यं, तत्रादौ भक्तिमतः कथञ्चिदापतितेऽपि पापे प्रायश्चित्तान्तर-निरसनत्वम्

पाद्मे वैशाखमाहात्म्ये नारदाम्बरीषसंवादे—

यथाग्निः प्रसमिद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
पापानि भगवद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात् ॥५४७॥

षष्ठे अजामिलोपाख्यानारम्भे (१।१५)—

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।
अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥५४८॥

एकादशे श्रीभगवदुद्धव-संवादे (१४।१९)—

यथाग्निः सुसमृद्धार्च्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् । तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥५४९

पाकाद्यर्थमपि प्रज्ज्वालितोऽग्निर्यथा काष्ठानि भस्मीकरोति, तथा भगवदर्थमप्यनुष्ठीयमाना भक्तिः सर्व्वाण्येव पापानि तत्क्षणात् पापोत्पत्तिसमकाल एव दहति ॥५४७॥

'तपसा ब्रह्मचर्य्येण शमेन च दमेन च । त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥ देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्म्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः । क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥' (श्रीभा ६।१।१३-१४) इत्युक्तस्य प्रायश्चित्तस्यातिदुष्करत्वान्मुख्यमेवान्यत् प्रायश्चित्तमाह—केचिदिति । केचिदित्यनेन एवम्भूता भक्तिः प्रधाना विरला इति दर्शयति । केवलया तपआदिनिरपेक्षया; वासुदेवपरायणा इति नाधिकारिविशेषणमेतत, किन्तु अन्येषामश्रद्धया तत्राप्रवृत्तेरर्थात्तेष्वेव पर्य्यवसानादनुवादमात्रम् । कार्त्स्न्येन मूलतोऽङ्गतश्चेत्यर्थः । तदानुरूपो दृष्टान्तः—भास्करो नीहारं तत्कृततम इव । एवमत्र समूलसाङ्गाशेषपापनाशोऽभिप्रेतः । पूर्व्वश्च अनलो वेणुगुल्ममिवेति अनलस्य भूम्यन्तर्गतदहनाशक्त्या भस्मादेरपि विद्यमानतया समूलाशेषपापनिवृत्तिरुक्ता । एवमपि पूर्व्वतोऽस्य विशेषोऽवगन्तव्यः ॥५४८॥

आस्तां तावदुत्तमभक्तेः कथा, यथाकथञ्चित् भक्त्यापि स्वत एव समूलाशेषपापक्षयः स्यादित्याह—यथेति । पाकाद्यर्थमपि प्रज्ज्वालितोऽग्निर्यथा काष्ठानि भस्मीकरोति, तथा रागादिनापि कथञ्चिन्मद्विषया सती भक्तिः समस्तपापानीति । भगवानपि स्वभक्तमाश्चर्य्येण सम्बोधयति—अहो उद्धव ! विस्तरेण शृण्विति ॥५४९॥

अथ श्रीभगवद्भक्तिमाहात्म्यं, तत्रादौ भक्तिमतः कथञ्चिदापतितेऽपि पापे प्रायश्चित्तान्तर-निरसनत्वम्

पद्मपुराण के वैशाख-माहात्म्य में नारदाम्बरीष संवाद में लिखित है—अग्नि जिस प्रकार प्रज्वलित होकर काष्ठराशि को दग्ध करता है, उसके समान भगवान् के प्रति भक्ति करने से, भक्ति समस्त पापराशि को तत्क्षणात् अर्थात् पापोत्पत्ति के समय ही दग्ध कर देती है ॥५४७॥

षष्ठस्कन्ध में अजामिलोपाख्यान के आरम्भ में लिखित है—कतिपय वासुदेव परायण व्यक्ति, सूर्य्योदय में जिस प्रकार (कुहरा) नीहार विनष्ट होता है, उस प्रकार भगवान् में अचलाभक्ति स्थापन कर पापराशि को विदूरित करते हैं ॥५४८॥

एकादशस्कन्ध के श्रीभगवदुद्धव-संवाद में लिखित है—हे उद्धव ! जिस प्रकार भावादि कार्य्य के निमित्त प्रदीप्त अग्नि, स्वीयशिखा विस्तार कर काष्ठराशि को भस्म करती है, उस प्रकार मद्विषयिणी भक्ति समग्र पापराशि को विनष्ट कर देती है ॥५४९॥

अतएवोक्तं तत्रैव श्रीकरभाजनेन (श्रीभा (११।५।४२)—

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य, त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।
विकर्म्म यच्चोत्पतितं कथञ्चिद्,-धुनोति सर्व्वं हृदि सन्निविष्टः ॥५५०॥

द्वारकामाहात्म्ये चन्द्रशर्म्माणं प्रति श्रीभगवता—

मद्भक्तिं वहतां पुंसामिह लोके परेऽपि वा। नाशुभं विद्यते किञ्चित् कुलकोटिं नयेद्दिवम् ॥५५१

विषयभोगेऽपि तद्दोषनिराकरणम्

एकादशस्कन्धे तत्रैव (१४।१८)—

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः। प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूयते ॥५५२

कर्म्माधिकारनिरसनत्वं तत्रैव (श्रीभा (११।२०।६)—

तावत् कर्म्माणि कुर्व्वीत न निर्व्विद्येत यावता। मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥५५३

'देवर्षि-भूताप्तनृणाम्' (श्रीभा ११।५।४१) इति निरन्तरपूर्व्वश्लोकेन विहितकर्म्मनिवृत्तिमुक्त्वा निषेधनिमित्तप्रायश्चित्तनिवृत्तिमाह—स्वपादेति। त्यक्तः अन्यस्मिन् देहादौ देवान्तरे भावो येन, अतएव तस्य विकर्म्मणि प्रवृत्तिर्न सम्भवति। यच्च कथञ्चित् प्रमादादिना उत्पतितमकस्मात् प्राप्तं भवेत्,तदपि हरिर्धुनोति। ननु यमस्तन्न मन्येत, तत्राह—परेशः परमेश्वरः। ननु 'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे' इति भगवद्वचनात् स्वाज्ञाभङ्गं कथं सहेत? तत्राह—प्रियस्य। ननु नायं पापक्षयार्थं भजते, तत्राह—हृदि सन्निविष्टः, न हि वस्तुशक्तिरर्थितामपेक्षत इत्यर्थः ॥५५०॥

अशुभं पापममङ्गलं वा पापमूलकं, तेषां कुलकोटिं भक्तिरेव दिवं श्रीवैकुण्ठलोकं प्रापयति ॥५५१॥

विषयैर्बाध्यमान आकृष्यमाणोऽपि, अतः प्रायोऽजितेन्द्रियः, प्रगल्भया समर्थया, परमपदप्रदानशक्ताया अपि भक्तेर्विषयाभिभवतो रक्षणं कतरत् प्रयोजनमिति भावः ॥५५२॥

भक्तिमतः कर्म्मानधिकारात् कर्म्मत्यागेऽपि न दोषः स्यादिति भक्तेर्माहात्म्यं लिखति—तावदिति। कर्म्माणि नित्यनैमित्तिकादीनि, यावता यावत् न निर्व्विद्येत, कर्म्मफलेषु ऐहिकामुष्मिकविषयभोगेषु वा विरक्तो न स्यात्। श्रद्धा विश्वासः प्रीतिर्वा; आदि-शब्देन कीर्त्तनादि-भक्तिप्रकाराः; निर्व्वेदे जाते मत्कथाश्रवणादि-श्रद्धायां वा जातायां न कुर्य्यादित्यर्थः। कर्म्मणां सावधित्वेन साध्ये सिद्धे साधनपरित्यागोपपत्तेः। वा-शब्देन पूर्व्वतोऽस्य पक्षस्याधिक्यं सूचितं, 'ये वा मयीशे' (श्रीभा ५।५।३) इतिवत्। वैराग्ये जातेऽपि कर्म्मत्यागो युक्तः, किं पुनर्वैराग्यस्य फले श्रवणादौ जाते सतीति भावः ॥५५३॥

अतएव एकादशस्कन्ध में करभाजन की उक्ति है—अन्य भाव परित्याग पूर्वक स्वीय प्रिय परमेश्वर के पादमूल का भजन जो मानव करते हैं, यह देखकर परमेश्वर कृष्ण, उनके हृदय में प्रविष्ट होकर, उनके हृदय में जो कुछ विकर्म सहसा उपस्थित होता है, तत्समुदाय को विनष्ट कर देते हैं ॥५५०॥

द्वारकामाहात्म्य में चन्द्रशर्मा के प्रति भगवान् का वाक्य है—जो मेरी भक्ति का वाहन हैं, अर्थात् भक्ति का अनुष्ठान करते हैं, उनका इस लोक में एवं परलोक में किसी प्रकार का अमङ्गल नहीं हो सकता। वस्तुतः भक्ति उनके कोटि कुल को दिव्यधाम में प्रतिष्ठित करती है ॥५५१॥

विषयभोगेऽपि तद्दोषनिराकरणम्

एकादशस्कन्ध के उस स्थान में वर्णित है—यद्यपि मेरा भक्त, अजितेन्द्रियता के कारण विषय में आकृष्यमाण होता है, तथापि प्रगल्भ भक्ति के प्रभाव से वह कभी विषय में निमग्न नहीं होता है ॥५५२॥

कर्माधिकार निरसनत्वम्

एकादशस्कन्ध में ही उक्त है—यावत् पर्य्यन्त काम्य कर्मादि में निर्वेद उपस्थित नहीं होता है यावत्

अतएवोक्तं प्रथमस्कन्धे (५।१७)—

त्यक्त्वा स्वधर्म्मं चरणाम्बुजं हरे,-र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं, को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्म्मतः ॥५५४॥

एकान्तिलक्षणे यच्च लिखितं शरणागतौ । लेख्यञ्च तत्तद्वचनैरेतत् सुदृढ़तामियात् ॥५५५॥

मनःप्रसादकत्वम्

प्रथमस्कन्धे (२।६)—

स वै पुंसां परो धर्म्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥५५६॥

अतएवोक्तमेकादशे (१४।२२)—

धर्म्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भक्त्यपेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि ॥५५७

'नैष्कर्म्म्यमप्यच्युतभाववर्जितम्' (श्रीभा १।५।१२) इत्यादिना काम्यकर्म्मादेरनर्थहेतुत्वात्तद्विहाय हरेर्लीलादिवर्णनारूपा भक्तिः कार्य्येत्युक्त्वा, इदानीं नित्यनैमित्तिकादिस्वधर्म्मनिष्ठामप्यनादृत्य केवलं हरिभक्तिरेव कार्य्येत्याह—त्यक्त्वेति । स्वधर्म्मं निजनिजवर्णाश्रमधर्म्मं त्यक्त्वा; ननु स्वधर्म्मत्यागेन भजन भक्तिपरिपाकेण यदि कृतार्थो भवेत्तर्हि न काचिच्चिन्ता, यदि पुनरपक्व एव म्रियते, ततो भ्रश्येत वा, तदा च स्वधर्म्म-त्यागनिमित्तोऽनर्थः स्यात, इत्याह—ततो भजनात् पतेत् कथञ्चित् भ्रश्येत् म्रियते वा यदि, तथापि भक्तिरसिकस्य कर्म्मानधिकारान्नानर्थशङ्का । अङ्गीकृत्याप्याह— वा-शब्दः कटाक्षे यत्र क्व वा नीचयोनावपि अमुष्य भक्तिरसिकस्य अभद्रमभूत् किम् ? नाभूदेवेत्यर्थः । भक्तिवासनासम्भावनादिति भावः । अभजद्भिस्तु केवलं स्वधर्म्मतः को वार्थः प्राप्तः ? अभजतामिति षष्ठी सम्बन्धमात्रविवक्षया । अतएव श्रीभगवद्गीतासु (१८।६६) सर्व्वान्ते सर्व्वोपदेशसारः—'सर्व्वधर्म्मान् परित्यज्य' इति; एकादशस्कन्धे च (१२।१४)— 'तस्मात् त्वमुद्धवोत्सृज्य' इत्यादि । तच्च सर्व्वमग्रे शरणापत्तौ लेख्यमेव ॥५५४॥

एकान्तिप्रकरणे 'आज्ञायैवम्' (श्रीभा ११।११।३२) इत्यादिना यल्लिखितं, तच्चाग्रे शरणागतिप्रकरणे सर्व्वधर्म्मान्' इत्यादिना लेख्यम् । एतत् कर्म्माधिकार-निरसनं तात्पर्य्यद्वारा सुदृढं भवतीत्यर्थः ॥५५५॥

वै प्रसिद्धौ निर्द्धारे वा, पर उत्कृष्टो धर्म्मः स एव; यतो धर्म्मात्; अहैतुकी—हेतुः फलानुसन्धानं, तद्रहिता अप्रतिहता विघ्नैरनभिभूता;यया भक्त्या आत्मा चित्तं स्वयमेव सुष्ठु प्रसीदतीति आनुषङ्गिकफलमुक्तम्॥५५६

अपेतं रहितम् ॥५५७॥

पर्य्यन्त मत्कथा श्रवणादि में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है, तावत्काल पर्य्यन्त काम्य कर्मानुष्ठान करते रहो ॥

अतएव प्रथमस्कन्ध में उक्त है—स्वधर्म परित्याग पूर्वक श्रीहरिचरणपद्म की आराधना करते करते यदि कोई मानव अपक्वदशा में स्खलित अथवा मृत हो तो, स्वधर्म त्याग निबन्धन उसका अमङ्गल नहीं होता । हरिपादपद्म भजन व्यतीत स्वधर्माचरण से किसकी अर्थवृद्धि हुई है ?॥५५३-५५४॥

पूर्व में एकान्ति लक्षण में जो जो लिखा गया है, एवं शरणापत्ति प्रकरण में जो जो लिखा जायेगा, उन सब वचनों के अनुसार काम्यकर्माधिकार निरसन की दृढ़ता उपस्थित होगी ॥५५५॥

मनःप्रसादकत्वम्

प्रथमस्कन्ध में लिखित है—जिससे इन्द्रिय ज्ञानातीत भगवान् में श्रवणादि लक्षणा फलाभिसन्धान वर्जिता अप्रतिहता भक्ति होती है, वह ही मानवों का परम धर्म है, उसी भक्ति के प्रभाव से मानवों के हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न होती है ॥५५६॥

अतएव एकादशस्कन्ध में उक्त है—मुझ में भक्ति करने से जिस प्रकार आत्म पवित्रता होती है, सत्य एवं दया समन्वित धर्मानुष्ठान अथवा तपस्या सहित विद्यानुशीलन,-यह भक्ति रहित आत्मा को उस प्रकार सम्यक् प्रकार से पवित्र करने में सक्षम नहीं है ॥५५७॥

परमपावनत्वम्

तत्रैव (श्रीभा ११।१४।२१)—

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपचानपि सम्भवात् ।।५५८।।

षष्ठे (३।२२)—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्म्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ।।५५९।।

अतएवोक्तं पाद्मे—

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैः किं बहुविस्तरैः । वाजपेयसहस्रैः किं भक्तिर्यस्य जनार्द्दने ।।५६०

सर्व्वगुणादिसेव्यताकारित्वम्

पञ्चमस्कन्धे प्रह्लादोक्तौ (१८।१२)—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना, सर्व्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा, मनोरथेनासति धावतो वहिः ।।५६१।।

सम्भवात् जातिदोषादपि पुनाति ।।५५८।।

तस्य भगवतो नामग्रहणादिभिरिति भक्तेर्नामग्रहणप्रधानताभिप्रेता ।।५५९।।

मन्त्रैः साधितैः किम् ? ।।५६०।।

अकिञ्चना निष्किञ्चना शुद्धा वा । सर्व्वे देवाः सर्व्वैर्गुणैर्धर्म्मज्ञानादिभिः सह सम्यगासते, नित्यं वसन्ति । महतां गुणाः ज्ञानवैराग्यादयः प्रेमविकारा वा, कुतो भवन्ति ? तत्र हेतुः– असति विषयसुखे तुच्छमोक्ष-सुखे वा मनोरथेन वहिर्भक्तेर्दूरे धावतः ।।५६१।।

परमपावनत्वम

एकादशस्कन्ध में लिखा है—जो व्यक्ति, निष्ठा के सहित मुझमें भक्ति करता है, वह श्वपचादि जाति दोष से मुक्त होकर पवित्र होता है ।।५५८।।

परमधर्म्मत्वम्

षष्ठस्कन्ध में लिखित है—नामसङ्कीर्त्तनादि द्वारा भगवान् के प्रति जो भक्तियोग है, वह ही इस जगत् में मानवों का उत्कृष्ट धर्म शब्द से अभिहित है ।।५५९।।

अतएव पद्मपुराण में उक्त है—जिनकी दृढ़ाभक्ति, जनार्दन में है, उनको विविध मन्त्र जप, अनेक शास्त्रानुसन्धान एवं सहस्र वाजपेय यज्ञानुष्ठान की आवश्यकता क्या है ? ।।५६०।।

सर्व्वगुणादिसेव्यताकारित्वम्

पञ्चमस्कन्ध में प्रह्लादोक्ति में प्रकाशित है—भगवान् में जिनकी अकिञ्चना भक्ति है, उनके शरीर में समस्त सद्गुण एवं देववृन्द विराजित होते हैं, किन्तु जिन व्यक्ति के चित्त में हरिभक्ति नहीं है, उसमें ज्ञान-वैराग्यादि गुण, किंवा देवता का आविर्भाव कैसे सम्भव होगा ? सुतरां वह व्यक्ति, मनोरथ से भक्ति-व्यतीत तुच्छ विषय भोग के प्रति धावित होता है ।।५६१।।

अहङ्कारोन्मूलनत्वम्

चतुर्थे श्रीध्रुवं प्रति मनूक्तौ (११।३०)—

त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त, आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या,-ग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढ़म् ॥५६२॥

श्रीपृथुं प्रति श्रीसनकादिभिः (श्रीभा ४।२२।३९)—

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या, कर्म्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयो निरुद्ध,-स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ॥५६३॥

'आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृक्' (श्रीभा ४।११।२९) इति पूर्व्वमुक्तं तदन्वेषणफलमाह—त्वमिति । तदान्वेषणकाल एव, प्रत्यगात्मनि परमात्मनि सर्व्वान्तर्यामिणीत्यर्थः । अनन्ते अपरिच्छिन्ने, आनन्दमात्रे सुखघनमूर्त्तौ भगवति श्रीकृष्णे, परमां निष्कामां विशुद्धां वा, शनकैर्विधायेति परमभक्तेर्दुर्ल्लभतया क्रमेणैव तत्सिद्धेः । यद्वा, शनकैः चिरं क्रमेण योऽविद्यारूपो ग्रन्थिः, तमिति दुर्भेद्यतोक्ता; ननु तादृशस्य तदैव कथं विभेदो घटते ? तत्राह—उपपन्नाः सम्पन्नाः समस्ताः शक्तयो यस्मिन्; यद्वा, उपपन्नानां प्रपन्नानां समस्ताः शक्तयो यस्मात्तस्मिन्निति । एवं प्रत्यगात्मादि-भगवन्माहात्म्यज्ञानेन पूर्व्वं निष्कामभक्त्यचरणादहङ्कारा-द्यनपगमेन वैरेण कुवेरानुचरास्त्वया घातिता इति श्रीध्रुवं प्रति मनोर्वाक्याभिप्रायः । स च केवलं श्रीशिव-सखानुगरक्षार्थमेव विभीषिकयान्याथाभासत इत्यूह्यं, यथाकथञ्चिद्भक्त्या मुक्तेरपि सुसिद्धेः ॥५६२॥

एवं तादृशज्ञानेन परमभक्त्याहङ्कारोन्मूलनं लिखित्वा इदानीं कथञ्चिदपि भजनेन तच्च स्यादिति दर्शयति —यत्पादेति; यस्य पादपङ्कजयोः पलाशानि अङ्गुलयः, तेषां विलासः कान्तिः, तस्य भक्त्या स्मृत्या; यद्वा, नृत्यगीतादिविलासरूपयापि भक्त्या, कर्म्माण्याशेरते यस्मिन्निति कर्म्माशयोऽहङ्कारः, तद्रूपं हृदयग्रन्थिं कर्म्मभिरेव ग्रथितं दृढ़ं बद्धं, सन्तो वैष्णवा उद्ग्रथयन्ति मोचयन्ति । रिक्ता निर्व्विशेषा सर्व्वमूर्द्धन्या मतिर्येषाम्, निरुद्धः प्रत्याहृतः स्रोतोगण इन्द्रियवर्गो यैः, अरणं शरणम्; स्रोतोगणशब्देनेदं सूच्यते, यथा गङ्गादिप्रवाहस्य कथञ्चिदपि यत्नान्निरोधः सम्भवेदेवमिन्द्रियस्यापि । भवतु वा कस्यचिदिन्द्रियस्य, सर्व्वस्य तु न भवत्येव; यदि वा कदाचित् कस्यचिद्यतेः सर्व्वनिरोधो भवतु नाम, तथाप्यहङ्कारोन्मूलनं सम्यग् न स्यादेवेति । अतः श्लेषेण रिक्तमतयः निर्बुद्धय एवेत्युक्तम् । यथा सन्तो भक्त्योद्ग्रथयन्ति, यतयश्च तद्वन्नेति सङ्ख्यः पृथक्त्वेन निर्द्देशाद्भक्तिविमुखानां यतीनां तदितरत्वमप्युक्तम् । एवं तेषां भक्त्यनादरेण निन्देति दिक् ॥५६३॥

अहङ्कारोन्मूलनत्वम्

चतुर्थ स्कन्ध में श्रीध्रुव के प्रति मनु की उक्ति है—सबके अन्तरात्मा, त्रिविध परिच्छेद वर्जित, आनन्दैकरस एवं सर्व शक्ति का आधार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अहैतुकी, अव्यवहिता भक्ति का अनुशीलन कर क्रमशः तुम 'मैं मेरा' इत्यादि अविद्याग्रन्थि को छेदन कर सकोगे ॥५६२॥

श्रीपृथु के प्रति श्रीसनकादि की उक्ति है—जिनके चरणकमल की अङ्गुलि विलास के प्रति भक्ति प्रदर्शन करके साधुगण, अहङ्कार रूप सुदृढ़ हृदय ग्रन्थि को छेदन कर सकते हैं, उनके प्रति भक्तिविमुख होकर यतिगण, निर्विषय एवं निरुद्ध मति होकर भी उस प्रकार सहज से कर्मबन्धन छेदन करने में सक्षम नहीं हैं । अतएव तुम, सर्वशरण्य वासुदेव का भजन सर्वान्तःकरण से करो ॥५६३॥

सर्व्वमार्गाधिकत्वम्

तृतीये श्रीकापिलेये (२५।१९)—

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ।
सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ।।५६४।।

षष्ठे च (१।१७)—

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ।
सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ।।५६५।।

अतएवोक्तं द्वितीये श्रीबादरायणिना (२।३३-३४)—

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह । वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ।।५६६।।

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत् ।।५६७।।

योगिनामपि ब्रह्मसिद्धये आत्मतत्त्व-परिस्फूर्त्तये मुक्तये इत्यर्थः । भक्त्या सदृशः शिवो निर्व्विघ्नो मङ्गल-रूपो वा पन्था नास्ति ।।५६४।।

अयं पन्था भक्तिमार्गः सध्रीचीनः समीचीनः, यतः क्षेमः कल्याणम् । क्षेमत्वे हेतुः—न कुतश्चिद्विघ्नादेर्भयं यस्मिन् । यद्वा, क्षेमः मङ्गलरूपोऽकुतश्चिद्भयश्च । तदेवाह—यत्र यस्मिन् मार्गे सुशीलाः कृपालवः साधवो निष्कामाः, अतो न ज्ञानमार्गवदसहायतानिमित्तं भयं, नापि कर्म्ममार्ग वत् मत्सरादियुक्तेभ्यो भयं, तेषां सङ्गत्या च सर्व्वथा क्षेममेवेति भावः ।।५६५।।

अधुना सर्व्वमार्गफलत्वेन भक्तेः सर्व्वमार्गाधिकत्वमेव द्रढ़यति—न हीति द्वाभ्याम् । सन्ति च संसरतः पुंसो बहवो मोक्षमार्गाः, किन्तु यतः पथोऽनुष्ठिताद्भक्तियोगो भवेत्, अतोऽन्यः शिवः सुखरूपो निर्व्विघ्नश्च पन्था नास्त्येवेत्यर्थः ।।५६६।।

अतस्तदाह—भगवान् ब्रह्मा कूटस्थः निर्व्विकारः एकाग्रचित्तः सन्नित्यर्थः, त्रिः त्रीन् वारान् कार्त्स्न्येन साकल्येन ब्रह्म वेदमन्वीक्ष्य विचार्य्य, यतः आत्मनि हरौ रतिर्भवेत् तदेव मनीषया अध्यवस्यत् सन्मार्गत्वेन सद्वस्तुत्वेन वा निश्चितवान् । एवं रतिहेतुत्वेन भक्तियोगस्यैव सन्मार्गत्वं दर्शितम् । यद्वा, कार्य्यकारणयोर-भेदविवक्षया रतिरेव भक्तियोग इत्यभिप्रेतम् । यद्वा, यतो भक्तियोगात्, तदिति 'तम्' इति भक्तियोग-माहात्म्यमुक्तम् ।।५६७।।

सर्व्वमार्गाधिकत्वम्

तृतीय स्कन्ध में श्रीकपिलदेव की उक्ति है—योगिवृन्दों की मुक्ति की सिद्धि विषय में, अखिलात्मा श्रीभगवान् में विहित भक्तियोग के सदृश मङ्गलदायक द्वितीय पन्था नहीं है ।।५६४।।

षष्ठस्कन्ध में वर्णित है—इस जगत् में विघ्नहीन होने के कारण, भक्तिपथ परम मङ्गलदायक है, अतएव उक्त पथ ही समीचीन है । नारायण परायण सुशील साधुगण ही इस पथ का यथार्थ पथिक हैं ।।५६५।।

अतएव द्वितीय स्कन्ध में श्रीशुकाचार्य्य ने कहा है—वासुदेव भगवान् में भक्तियोग अनुष्ठित होने पर जिस प्रकार सुख लाभ होता है, संसारीजन के पक्ष में उस प्रकार मङ्गलकर पन्था द्वितीय दृष्ट नहीं होता है । भगवान् चतुरानन, श्रीहरि में मन आसक्त किस प्रकार से हो सकता है । मन ही मन इसकी चिन्ता करके वारत्रय समग्र वेद विचार करने में प्रवृत्त हुये थे अनन्तर एकाग्रचित्त से भावना के द्वारा बुद्धि स्थिर किये थे, कि भक्तियोग ही श्रेष्ठ पथ है ।।५६६-५६७।।

सर्व्वार्थसाधकत्वम्

बृहन्नारदीये श्रीनारदोक्तम्—

यथा समस्तलोकानां जीवनं सलिलं स्मृतम् । तथा समस्तसिद्धीनां जीवनं भक्तिरिष्यते ॥५६८॥

जीवन्ति जन्तवः सर्व्वे यथा मातरमाश्रिताः ।
तथा भक्तिं समाश्रित्य सर्व्वा जीवन्ति सिद्धयः ॥५६९॥

ध्वजारोपण-माहात्म्ये श्रीविष्णुदूतोक्तौ—

महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्व्वपातकैः । ईप्सितां भगवद्भक्त्या लभते परमां गतिम् ॥५७०॥

पाद्मे वैशाखमाहात्म्ये यम-ब्राह्मण-संवादे—

अपत्यं द्रविणं दारा हारा हर्म्म्यं हया गजाः । सुखानि स्वर्गमोक्षौ च न दूरे हरिभक्तितः ॥५७१

प्रथमस्कन्धे (२।७)—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः । जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानञ्च यदहैतुकम् ॥५७२॥

एकादशे च भगवदुद्धवसंवादे (२०।३२-३३)—

यत् कर्म्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् । योगेन दानधर्म्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥५७३॥

समस्तानां सिद्धीनामर्थानां जीवनं भक्तिरेवेति, तां विना न स्युरित्यर्थः ॥५६८॥

जीवन्ति—सिध्यन्ति ॥५६९॥

ईप्सितामभीष्टां परमामुत्कृष्टां गतिं फलम् ॥५७०॥

हारा मनोहराः मुक्तावल्यो वा, तैश्च सर्व्वाणि भूषणानि उपलक्ष्यन्ते; सुखानि राज्यादिसम्पत्तयो हरिः-भक्तितो दूरे न भवन्ति, किन्तु तदाश्रितानि, अतएव लभ्यन्त इत्यर्थः ॥५७१॥

अहैतुकं शुष्कतर्काद्यगोचरम् औपनिषदमित्यर्थः । यद्वा, निष्कामजनप्राप्यपदं यत् मोक्षाख्यं वा श्रीवैकुण्ठाख्यं तच्च । यद्वा, फलाभिसन्धिरहितं प्रेम च जनयतीत्यर्थः ॥५७२॥

इतरैस्तीर्थयात्राव्रतादिभिरपि श्रेयःसाधनैर्यद्भाव्यं सत्त्वशुद्ध्यादि तत् सर्व्वमनायासेनैव लभते । तथा

सर्व्वार्थसाधकत्वम्

बृहन्नारदीय पुराण में श्रीनारद का कथन है— जिस प्रकार जल समस्त लोकों का जीवन है, उस प्रकार भक्ति ही सर्वसिद्धि का जीवन स्वरूप है, अर्थात् भक्ति व्यतीत कोई भी अर्थ सिद्ध नहीं होता है ॥५६८॥

जिस प्रकार जठरधारिणी जननी की अनुकम्पा से जीवसमूह की जीवन रक्षा होती है, उस प्रकार भक्ति के आश्रय में समस्त सिद्धि सफल होती हैं ॥५६९॥

ध्वजारोहण माहात्म्य में श्रीविष्णुदूतोक्ति यह है—मनुष्य जिस किसी महापातक में अथवा सर्वपातकों में क्यों न लिप्त हो, केवलमात्र भगवान् में भक्ति प्रतिष्ठित रखकर ईप्सित परागति को प्राप्त कर सकता है ॥५७०॥

पद्मपुराण के वैशाख माहात्म्य में यम-ब्राह्मण-संवाद से प्रकाशित है—पुत्र, वित्त, स्त्री, मुक्तामाला, अट्टालिका, अश्व, हस्ती, राज्यादि सम्पत्ति, स्वर्ग एवं मोक्ष,–इनमें से कोई भी हरिभक्ति से दूर में अवस्थित नहीं हैं, अर्थात् श्रीहरिभक्ति के पक्ष में यह सब दुर्लभ नहीं है ॥५७१॥

प्रथम स्कन्ध में उक्त है—वासुदेव भगवान् में भक्तियोग अनुष्ठित होने पर आशु वैराग्य एवं अहैतुक ज्ञान का उदय होता है ॥५७२॥

एकादश स्कन्ध के भगवदुद्धव-संवाद में वर्णित है— कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योगसाधन, दान

सर्व्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा । स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथञ्चिद्यदि वाञ्छति ॥५७४॥

अतएवोक्तं द्वितीये (३।१०)—

अकामः सर्व्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः । तीव्रेन भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥५७५॥

मोक्षाधिकत्वम्

तृतीये कापिलेये (२५।३२)—

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी । जरयत्याशु या कोषं निगीर्णमनलो यथा ॥५७६

पञ्चमे श्रीऋषभदेवचरितान्ते (६।१७)—

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिन-संसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं न एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्व्वार्थाः ॥५७७॥

स्वर्गमपवर्गं मद्धाम च वैकुण्ठं लभत एव । यदि वाञ्छतीति वाञ्छा तु नास्तीत्युक्तम । तत्र कथञ्चिदिति स्वर्गापवर्गयोस्तुच्छतामनुभवितुम् । किंवा स्वर्गे देवताः श्रीविष्णुं द्रष्टुं स्वर्गं भक्तिविघ्नसांसारिकदुःख-तरणार्थश्चापवर्गं वैकुण्ठलोके साक्षात् मत्सेवार्थं चेत्येवं-प्रकारेण वाञ्छन्ति चेदित्यर्थः । वैकुण्ठवाञ्छा च तत्रत्यविभूतिश्रवणाद्भक्तिरसप्लुतत्वेनानन्यापेक्ष्यत्वाद्वा ॥५७३-५७४॥

अकामः एकान्तभक्तः, सर्व्वकामः—'ब्रह्मवर्च्चसकामस्तु' (श्रीभा २।३।२) इत्याद्यष्टश्लोकोक्त-ब्रह्मवर्च्चस-कामः । उक्तानुक्ताखिलकामो वा उदारधीर्महाबुद्धिश्चेत्, तदा परं पुरुषं श्रीकृष्णं भजेत् । तीव्रेन दृढेन; यद्वा, अकामो वैराग्यकामः, उदारधीः भगवदेकप्राप्तिकामो वा, अन्यत् समानम् ॥५७५॥

अनिमित्ता निष्कामा; सिद्धेर्मुक्तेरपि गरीयसी । मुक्तिश्चानुषङ्गिकी भवत्येवेत्याह— या भक्तिः कोषं लिङ्गशरीरं जरयति क्षपयति । प्रयत्नं विनैव सिद्धौ दृष्टान्तः—निगीर्णं भुक्तमन्नं जाठरोऽग्निर्यथा जरयतीति । 'देवानां गुणलिङ्गानाम्' (श्रीभा ३।२५।३२) इत्यादिश्लोकोऽत्र न संगृहीतः । तत्र भक्तिलक्षणोक्तेर्गरीयस्त्वञ्च, भक्तेस्तत्रैवोक्तं 'नैकात्मतां ये स्पृहयन्ति केचित्' (श्रीभा ३।२५।३४) इत्यादिश्लोकपञ्चकेन । तदत्रानुपयोगान्न संगृहीतम् । एवमन्यदप्यूह्यम् ॥५७६॥

भगवति तस्मिन् वासुदेवे एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्त्तत इति पूर्व्वगद्याद्भक्तिरनुवर्त्तत एव । अतो

धर्म, एवं अन्यान्य श्रेयः साधक शुभ कर्म द्वारा लभ्य समुदाय फल ही मेरे भक्त, भक्तियोगावलम्बन से प्राप्त होते हैं । स्वर्ग, अपवर्ग, वैकुण्ठ की इच्छा होने पर भी उसको आयत्त में कर सकते हैं ॥५७३-५७४॥

अतएव द्वितीयस्कन्ध में उक्त है— अकाम, सर्वकाम, अथवा मोक्षकाम उदार बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति, अनन्य तीव्र भक्ति के द्वारा परम पुरुष की आराधना करते हैं ॥५७५॥

मोक्षाधिकत्वम्

तृतीय स्कन्ध की श्रीकपिलोक्ति में वर्णित है—मुक्ति की अपेक्षा निष्काम भक्ति श्रेष्ठ है कारण उक्त भक्ति के आनुषङ्गिक रूप में ही मुक्ति आ जाती है । जठराग्नि जिस प्रकार भुक्त अन्न को बिना प्रयत्न से परिपाक करता है, उस प्रकार भगवद्भक्ति आशु लिङ्ग देह को विनष्ट करती है ॥५७६॥

पञ्चम स्कन्ध के ऋषभदेव के चरितान्त में वर्णित है—कविगण, जिसमें संसार ताप संतप्त आत्मा को स्नान कराकर परमानन्द उपभोग करते हैं, एवं जिसकी सहायता से परम पुरुषार्थ रूप मुक्ति, प्रार्थना व्यतीत भगवत् कृपा से स्वतः आविर्भूत होने पर भी उसमें आग्रह नहीं करते हैं, वह भगवद्भक्ति ही समस्त पुरुषार्थ की विधात्री है । अतएव भक्तगण, भगवान् के चिह्नित पुरुष होने के कारण स्वभावतः ही उनके सर्वविध पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं ॥५७७॥

द्वादशे च श्रीमार्कण्डेयमुद्दिश्य श्रीशिवोक्तौ (१०।६)—

नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत ।
भक्तिं परां भगवति लब्धवान् पुरुषेऽव्यये ॥५७८॥

अतएवोक्तं पञ्चमे श्रीभगवन्तमुद्दिश्य बादरायणिना १४।४३)—

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्, प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्,-सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥५७९॥

एकादशे च भगवता (१४।१४)—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं, न सार्व्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा, मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ॥५८०॥

यस्यां भक्तावेव, न तु योगादिषु अनुसवनमविरतं चात्मानं स्नापयन्त इति परमानन्दरसमयत्वं सूचितम् । आत्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि; यद्वा, आत्यन्तिकं सायुज्यरूपमपि । अतः परमपुरुषार्थमप्यपवर्गं मोक्षम्; यद्वा, अपवर्गं मोक्षमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थं श्रीवैकुण्ठलोकमपि । एवं सतीदं गद्यमग्रे स्वतः परमपुरुषार्थतायां द्रष्टव्यम् । एवमन्यदपि ज्ञेयम् । स्वयमासादितमात्मनैव प्राप्तं, यद्वा, भगवता स्वयमेव दीयमानमपि अनादरे हेतु;—भगवदीयत्वेनैव परितः समाप्ताः सम्यक्प्राप्ताः सर्व्वे पुरुषार्था यैः ॥५७७॥

आशिषः अभ्युदयलक्षणाः, उत स्मितौ; तत्र हेतुः—भक्तिमिति, अव्यये परिपूर्णे पुरुषे श्रीकृष्णे ॥५७८॥

य एवम्भूतोऽसौ नृपः, स क्षित्यादीन् नैच्छदिति यत्, तदुचितम् । सदयावलोकां भरतस्य दया यथा भवति एवमलोको यस्यास्तामिति परिजनावलोकः श्रियामुपचर्य्यते । यद्वा, साक्षाद्भूतां भरतं कृपयावलोकयन्तीमपि सर्व्वसम्पदधिष्ठात्रीं लक्ष्मीमेव । यतो मधुद्विषः सेवायां भक्तौ कस्यांचिद्वा परिचर्य्यायामपि अनुरक्तं मनोऽपि, न तु प्रवृत्तं सर्व्वेन्द्रियं येषां तेषां महतामभवः मोक्षोऽपि फल्गुः, तुच्छ एव ॥५७९॥

रसाधिपत्यं पातालादि-स्वाम्यम्, अपुनर्भवं मोक्षमपि, पारमेष्ठ्याद्यपुनर्भवान्तेष्वेषु क्रमेण श्रीभगवद्भक्ते-र्न्यूनतया तेषां न्यूनताभिप्रायेणैवं व्याख्येयम् । पारमेष्ठ्यमपि नेच्छति, किं पुनर्महेन्द्रधिष्ण्यमित्यादि । मद्विना मां हित्वा अन्यन्नेच्छति, अहमेव तस्य श्रेष्ठ इत्यर्थः । यद्वा, मद्विना मद्भक्तिं विना अन्यत् श्रीवैकुण्ठवासादिक-मपि नेच्छतीत्यर्थः ॥५८०॥

द्वादश स्कन्ध में श्रीमार्कण्डेय के प्रति श्रीशिवोक्ति में प्रकाशित है—इन ब्रह्मर्षि, जब अव्यय पुरुष में पराभक्ति लाभ किये हैं, तब आर किसी प्रकार आशीर्वाद अथवा मुक्ति लाभ की आकाङ्क्षा नहीं करते हैं ॥५७८॥

अतएव पञ्चम स्कन्ध में श्रीभगवान् को उद्देश्य करके बादरायणि ने कहा है—नरपति की मनोवृत्ति भगवद्भक्ति के निमित्त अतिशय लोलुप है । अतएव दुस्त्यज राज्य, धन, जन, पुत्र, कलत्रादि अथवा सुरवर वाञ्छित जो राजलक्ष्मी, दया के आस्पद होने के निमित्त उनके प्रति दीनभाव से अवलोकन करते हैं, परन्तु राजा, उनकी भी कामना नहीं करते, यह उनका उचित है, कारण, जिनका मन, अन्तर्य्यामी श्रीहरि की सेवामें अनुरक्त है, उनके पक्ष में परमपुरुषार्थविधायक मोक्ष भी तुच्छपदार्थ में परिगणित होता है ॥५७९॥

एकादशस्कन्ध में श्रीभगवान् की उक्ति है—जो भक्त, मुझमें एकान्त भाव से आत्मसमर्पण किये हैं, वह भक्त, मुझको छोड़कर ब्रह्मलोक, सुरलोक, सार्वभौमत्व, पातालाधिपत्य, निर्वाण मुक्ति प्रभृति की कामना नहीं करते हैं ॥५८०॥

अतएवोक्तं षष्ठे श्रीरुद्रेण (१७।३१)—

वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् । ज्ञानवैराग्यवीर्य्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ।।५८१।।

विष्णुपुराणे च श्रीप्रह्लादेन—

धर्म्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिता त्वयि ।।५८२।।

अतएवोक्तं नारसिंहे—

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोये,-ष्वक्रीतलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्त्या सुलभ्ये पुरुषे पुराणे, मुक्तौ किमर्थं क्रियते प्रयत्नः ? ।।५८३।।

अतएवोक्तं प्रथमस्कन्धे—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्व्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ।।५८४

तदेव सर्व्वनैरपेक्ष्येण द्रढ़यति—वासुदेव इति द्वाभ्याम् । ज्ञानवैराग्ययोर्वीर्य्यं बलं येषां, तयोरपि वीर्य्यं येभ्य इति वा; व्यपाश्रयः विशिष्टबुद्ध्या आश्रयणीयोऽर्थो नास्ति ।।५८१।।

करे स्थिता अधीनाभूदित्यर्थः । अतस्तस्यामादरो नास्तीति भावः । यद्वा, स्वाश्रितेभ्यो मुमुक्षुभ्यो दातुं करे गृहीतेत्यर्थः । अतस्तस्यां स्वार्थाभावान्नैरपेक्ष्यमेव सिद्धम् । समस्तजगतां साधकानां सिद्धानाञ्च सर्व्वेषां मूले आश्रये, अतो मूलापेक्षया पत्रादिस्थानीयान्युपेक्ष्याण्येवेति भावः ।।५८२।।

अक्रीतेषु च तेषु तथापि लभ्येषु सत्सु । यद्वा, भावे क्तः; क्रयं विनापि लभ्येष्वित्यर्थः । एवं भक्तिसाधनानां सुलभता दर्शिता, भक्त्या च सुलभे पुरारि नवः पुराणः श्रीकृष्ण इत्यर्थः, तस्मिन् इति भजनीयस्य सुसाध्यता दर्शिता । मुक्त्यै प्रयत्नः किमर्थं क्रियते, आनुसाङ्गिकत्वेन तस्याः स्वत एव सिद्धेः । किंवा साध्ये सिद्धे साधनप्रयासानुपयोगात् । परमवस्तुनि सुलभे तुच्छवस्त्वर्थं प्रयासोऽनुचित इति ।।५८३।।

आत्मारामा ब्रह्मनिष्ठा अपि, अतएव निर्ग्रन्था ग्रन्थेभ्यो निर्गताः । तदुक्तं श्रीगीतासु (२।५२)—'यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्व्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।।' इति । यद्वा, ग्रन्थिरेव ग्रन्थः, निवृत्तहृदयग्रन्थय इत्यर्थः । ननु मुक्तानां किं भक्त्येत्यादि-सर्व्वाक्षेप-परिहारार्थमाह—इत्थम्भूतगुण इति । अत्यनिर्व्वचनीयपरमाकर्षक-भक्तिगुणत्वादित्यर्थः । तच्च श्रीभागवतामृतोत्तरखण्डे व्युत्पादितमेवास्ति ।। ।।५८४।।

अतएव षष्ठस्कन्ध में श्रीरुद्रोक्ति यह है—जिसमें ज्ञान एवं वैराग्य है, जो प्रभावसम्पन्न वासुदेव में एकान्तभक्ति निष्ठ हैं, वे भक्ति की अपेक्षा, अपर पदार्थ को उत्कृष्ट मानकर स्वीकार अथवा उसका आश्रय ग्रहण नहीं करते ।।५८१।।

विष्णुपुराण में श्रीप्रह्लाद की उक्ति है—समस्त जगत् के मूलस्वरूप आपमें जिसकी भक्ति प्रतिष्ठित है, धर्म, अर्थ, अथवा काम में उसकी उपादेय बुद्धि क्यों होगी? कारण, मुक्ति उसके करतलगत होती है ।।५८२

अतएव नृसिंहपुराण में उक्त है—जिस प्रकार क्रय न करने से भी पत्र, पुष्प, फल एवं जल सहज से ले सकता है, उस प्रकार भक्ति प्रभाव से पुराण पुरुष भगवान् को सहज से प्राप्त करने में सक्षम होने पर, किस हेतु मुक्तिलाभ के निमित्त मानव प्रयत्न करेंगे ।।५८३।।

अतएव प्रथमस्कन्ध में उक्त है—कर्मबन्धन मुक्त ब्रह्मनिष्ठ मुनिगण भी उरुक्रम श्रीकृष्ण में अहैतुकी भक्ति करते रहते हैं। श्रीकृष्ण में एवम्भूत आकर्षणी शक्ति है ।।५८४।।

श्रीवैकुण्ठलोकप्रापकत्वम्

वामने—

येषाञ्चक्रगदापाणौ भक्तिरव्यभिचारिणी । ते यान्ति नियतं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ।।५८५।।

स्कान्दे—

मुनिर्जाप्यपरो नित्यं दृढ़भक्तिर्जितेन्द्रियः । स्वगृहेऽपि वसन् याति तद्विष्णोः परमं पदम् ।।५८६

तृतीय-स्कन्धे श्रीवैकुण्ठवर्णने (१५।२५)—

यद्वै व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या, दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।

भर्त्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग,-वैक्लव्यवाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ।।५८७।।

दशमे च श्रीब्रह्मस्तुतौ (१४।५)—

पुरेह भूमन् बहवोऽपि योगिन,-स्त्वदर्पितेहा निजकर्म्मलब्धया ।

विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया, प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम ।।५८८।।

योगेश्वरो भक्तियोगप्राप्यः ।।५८५।।

जाप्यं भगवतो मन्त्रः नाम वा, तत्परः अतो दृढ़भक्तिः, अतएव जितेन्द्रियः, विपरीतो वा हेतुहेतुमद्भावः ।।५८६।।

यच्च नोऽस्माकं सर्व्वदेवानामुपरिस्थितं व्रजन्ति । के ? अनिमिषां देवानामृषभः श्रेष्ठो हरिस्तस्यानुवृत्त्या भक्त्या दूरे यमो येषां ते; यद्वा, दूरीकृतयमनियमाः । दूरेऽहम् इति पाठे दूरीकृताहङ्कारा इत्यर्थः । स्पृहणीयं करुणादि भगवद्भजनादि वा शीलं स्वभावो येषाम् । यद्वा, अस्मत्प्रार्थ्यं शीलं येषाम् । किञ्च, भर्त्तुर्हरेर्यत् सुयशस्तस्य मिथः कथनेन यः प्रेमाविर्भावस्तेन वैक्लव्यं वैवश्यं, तेन या वाष्पकला, तया सह पुलकीकृतमङ्गं येषां ते । इत्यनुवृत्तिलक्षणमुक्तम् । यद्वा, तथाभूताः सन्तो व्रजन्तीति गमनप्रकारः; यद्वा, न उपरीति व्रजतां विशेषणं, निरहङ्कारत्वादप्यसक्तोऽपि येऽधिकास्ते इत्यर्थः ।।५८७।।

भक्त्यैव वैकुण्ठप्राप्तिर्नान्यथेत्यत्र सदाचारं प्रमाणयति—पुरेति । भूमन् ! हे अपरिच्छिन्नमाहात्म्य,

---

श्रीवैकुण्ठलोकप्रापकत्वम्

वामनपुराण में उक्त है—चक्र एवं गदापाणि श्रीभगवान् में जिनकी अव्यभिचारिणी भक्ति है, वे सब भक्तियोग द्वारा प्राप्य श्रीहरि के नित्यधाम में गमन करते हैं ।।५८५।।

स्कन्दपुराण में लिखित है—जो मुनि नित्य भगवान् के नाम मन्त्र का जप करते रहते हैं, एवं भगवान् के प्रति दृढ़ भक्ति, तथा जितेन्द्रिय हैं, वे गृहस्थ होने पर भी श्रीविष्णु के उस परमधाम में गमन करते हैं ।।

तृतीयस्कन्ध के वैकुण्ठ वर्णन में लिखित है—जो अहङ्कार वर्जित, एवं देवगण की अपेक्षा समधिक योगशक्ति सम्पन्न हैं, वे सब मनुष्य वैकुण्ठ लोक गमन करने में समर्थ हैं । वे सब सतत देवादिदेव श्रीहरि के प्रति भक्तिनिबन्धन इस प्रकार प्रभावविशिष्ट होते हैं कि, कृतान्त भी उनके समीप पहुँचने को साहसी नहीं होते । उनके भक्ति के सम्बन्ध में और अधिक क्या कहूँ ? जब वे परस्पर उत्तम श्लोक श्रीहरि के गुण कीर्त्तन में अनुरागी होते हैं, तब अवशता एवं वाष्प निर्गमवशतः उनके देह पुलकित होते हैं, उनके स्वभाव सबको वाञ्छनीय है ।।५८६-५८७।।

दशमस्कन्ध की श्रीब्रह्म स्तुति में वर्णित है—हे अपरिच्छिन्न माहात्म्य ! पुराकाल में इस जगत् में अनेकानेक योगपथावलम्बि जनगण, योगबल से आपकी स्वरूपोपलब्धि करने में असमर्थ होकर यावतीय लौकिक चेष्टासमूह आपको समर्पण किये हैं, अनन्तर निजकर्मार्पणलब्ध एवं भवदीय कथा श्रवण जनित भक्तिलाभ पूर्वक आत्मतत्त्व अवगत् होकर महासुख से दिव्य गति को प्राप्त किये हैं ।।५८८।।

श्रीभगवत्तोषणम्

बृहन्नारदीये भगवत्तोषप्रश्नोत्तरे—

सर्व्वदेवमयो विष्णुः शरणार्त्तिप्रणाशनः। स्वभक्तवत्सलो देवो भक्त्या तुष्यति नान्यथा ॥५८६

सप्तमस्कन्धे श्रीप्रह्लादस्य बालोपदेशे (७।५१-५२)—

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरात्मजाः। प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५८०॥

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च। प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विड़म्बनम् ॥५८१

श्रीनृसिंहस्तुतौ च (श्रीभा ७।६।९)—

मन्ये धनाभिजन-रूप-तपःश्रुतौज,-स्तेज प्रभाव-बलपौरुष-बुद्धियोगाः।

नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो, भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥५८२॥

अन्यत्रापि—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का

कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किन्तत् सुदाम्नो धनम् ?

इहलोके पूर्व्वं योगिनोऽपि सन्तः योगैर्ज्ञानमप्राप्य पश्चात्त्वदर्पितेहा त्वयि अर्पिता लौकिक्यपि ईहा चेष्टा यैस्ते, निजकर्म्मलब्धया त्वदर्पितैर्निजैः कर्म्मभिर्धर्म्मलक्षणैर्लब्धया। अर्पिता लौकिक्यपि ईहा च निजकर्म्माणि च तैर्लब्धयेत्येकं वा पदम्। कथोपनीतया कथया त्वत्समीपं प्रापितया, यद्वा, कथया उपस्थापितया कथाप्रधानयेत्यर्थः; यद्वा, कथाप्रवर्त्तितयेत्यर्थः। भक्त्यैव विबुध्य तत्त्वं ज्ञात्वा अज्ञः सुखेनैव ते परां परमां गम्यत इति गतिं गम्य-पदं प्राप्ताः ॥५८८॥

हे असुरात्मजाः! देवत्वादिकं मुकुन्दस्य प्रीणनाय नालं न समर्थम्; वृत्तं सदाचारः, अमलया निष्कामया विशुद्धया वा; विड़म्बनं नटनमात्रं, न तु तात्त्विकमित्यर्थः ॥५९०-५९१॥

अभिजनः सत्कुले जन्म, रूपं सौन्दर्य्यं, तपः स्वधर्म्माचरणं, श्रुतं पाण्डित्यं, ओजः इन्द्रियनैपुण्यं, तेजः कान्तिः, प्रभावः प्रतापः, बलं शरीरशक्तिः, पौरुषम् उद्यमः, बुद्धिः प्रज्ञा, योगोऽष्टाङ्गः; एते धनादयो द्वादशापि गुणाः परस्य पुंसः श्रीकृष्णस्य तवाराधनाय साधनाय भजनोपकरणायापि न भवन्ति, किमुत त्वत्तुष्ट्यै। हि यतः केवलया भक्त्यैव गजेन्द्राय तुष्टोऽभवत् ॥५९२॥

श्रीभगवत्तोषणम्

बृहन्नारदीय पुराण के भगवत्तोषण प्रसङ्ग में कथित है—जो शरणागत व्यक्ति का दुःख दूर करते हैं, भक्तवत्सल, सर्वदेवमय वह श्रीहरि, भक्तियोग के द्वारा ही सन्तुष्ट होते हैं, अपर किसी प्रकार साधनों से तुष्ट नहीं होते हैं ॥५८९॥

सप्तमस्कन्ध के श्रीप्रह्लादकृत बालकोपदेश में वर्णित है—हे असुरात्मजगण! ब्राह्मत्व, देवत्व, ऋषित्व, सद्वृत्त, अथवा बहुज्ञता, यह सब मुकुन्द को सन्तुष्ट करने में अक्षम हैं। दान, तपस्या, यज्ञानुष्ठान, पवित्रता व्रतादि अपर प्रकार धर्मानुष्ठान, कुछ भी श्रीहरि को प्रीतिदायक नहीं हैं। श्रीहरि, निर्मल प्रीतियोग में ही प्रीति का अनुभव करते हैं, एतद्भिन्न समस्त ही अभिनय मात्र हैं ॥५९०-५९१॥

नृसिंह स्तुति में उक्त है—मैं मानता हूँ,-अर्थ प्राचुर्य्य, सत् कुल में जन्म, देह सौन्दर्य्य, स्वधर्माचरण, पाण्डित्य, इन्द्रिय पटुत्व, कान्ति, प्रताप, शारीर बल, उद्यम, प्रज्ञा, अष्टाङ्ग योग, यह सब श्रीहरि को प्रसन्न करने में समर्थ नहीं हैं। कारण, भगवान्, गजेन्द्र के प्रति केवल मात्र भक्ति के द्वारा सन्तुष्ट हुये थे ॥

वंशः को विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः ॥५९३॥

अतएवोक्तं श्रीभगवता (श्रीगी ९।२६)—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥५९४

प्रथमस्कन्धे श्रीहनूमतोक्तम्—

न जन्म नूनं महतो न सौभगं, न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस,-श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥५९५॥

श्रीभगवत्सङ्गमकत्वम्

श्रीभगवद्गीतासु (११।५४)—

भक्त्या त्वनन्यया शक्यो अहमेवम्विधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुञ्च तत्त्वेन प्रवेष्टुञ्च परन्तप ॥५९६

व्याधस्याचरणं किं, ध्रुवस्य च वयः किं, विदुरस्य वंशः कुलं कः ? अपि तु न कोऽपि, दास्यां जातत्वात् । यादवपतेरुग्रसेनस्य । अतः कर्म्मवयोविद्यादिभिर्गुणैर्न तुष्यति, किन्तु केवलं भक्त्यैव । यतः भक्तिरेव प्रिया प्रीतिकरी यस्य सः ॥५९३॥

भक्त्या प्रीत्या उपहृतं स्वीकृतं यथा स्यात्तथा अश्नामि । प्रयतात्मनो निष्कामस्य ॥५९४॥

न तस्य तोषहेतुः सत्कुलजन्मादि, किन्तु भक्तिरेवेत्याह—न जन्मेति । महतः पुरुषाज्जन्म, यद्वा, महतो वैष्णवस्यापि न तोषहेतुः, कुतो भगवत इत्यर्थः । सौभगं सौन्दर्य्यम् ; आकृतिर्जातिः, यद्यस्मात् तैर्जन्मादिभिर्विसृष्टान् त्यक्तानपि नो वनचरान् बत अहो लक्ष्मणाग्रजोऽपि सखित्वेन कृतवान् ॥५९५॥

तर्हि केनोपायेन त्वं प्राप्तुं शक्यः ? तत्राह—भक्त्येति; अनन्यया मदेकनिष्ठया विशुद्धया वा भक्त्या; एवम्भूतो विश्वरूपोऽपरिच्छिन्नोऽथच श्रीदेवकीगर्भजातः श्रीयशोदालालितो दामोदरो नित्यकिशोरश्चेत्यादि-रूपः । तत्त्वेन परमार्थतो ज्ञातुं शक्यः; शास्त्रतः प्रवेष्टुञ्च यन्मयत्वेन नित्यनिकटवर्त्तित्वादिना वाहं ज्ञातुं शक्यः, न चान्यैरुपायैः ॥५९६॥

भक्त्यैव सकलमलापगमतो भगवत्सङ्गमो नान्यथेति सदृष्टान्तमाह—यथेति । यथा अग्निना ध्मातं

अन्यत्र भी वर्णित है – व्याध का आचरण, ध्रुव की वयस, अवस्था, कुब्जा का क्या सुन्दर रूप, सुदामा का क्या धन, विदुर की क्या वंश मर्य्यादा, यादवपति उग्रसेन का क्या पराक्रम था ? किन्तु इनके प्रति भगवान् के प्रसन्न होने का कारण, एकमात्र भक्ति थी, और इसी के कारण, माधव 'भक्ति प्रिय' नाम से अभिहित होते हैं । कर्म, विद्यादि गुणसमूह के द्वारा माधव वशीभूत नहीं होते हैं ॥५९२-५९३॥

अतएव इसके सम्बन्ध में श्रीभगवान् की उक्ति यह है—निष्काम व्यक्ति, मुझको भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ समर्पण करता है, मैं भक्तिपूर्वक दिये हुये उन सब पदार्थों को भोजन करता हूँ ॥५९४॥

पञ्चमस्कन्ध में श्रीहनूमान की उक्ति है– सत्कुल में जन्म-परिचय, रूप-गौरव, वाक्पटुता, बुद्धिचातुर्य अथवा प्रख्यात जाति, इन सब वस्तुओं के द्वारा भगवत् प्रीति संघटित नहीं होती है । केवल भक्ति ही भगवत् प्रीति का एकमात्र कारण है । यदि ऐसा न होता तो, उक्त सद्गुणादि हीन हमको वनचर जानकर भी भक्ति से बाध्य होकर श्रीरामचन्द्र हमारे साथ मित्रता क्यों करते ? ॥५९५॥

श्रीभगवत्सङ्गमकत्वम्

भगवद्गीता में उक्त है—हे परन्तप अर्जुन ! केवलमात्र निर्मल भक्ति के प्रभाव से लोक मुझको जान सकते हैं, देख सकते हैं, एवं मुझमें प्रविष्ट हो सकते हैं ॥५९६॥

एकादशस्कन्धे च श्रीभगवदुद्धवसंवादे (१४।२५)—

यथाग्निना हेममलं जहाति, ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्म्मानुशयं विधूय, मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥५९७॥

किञ्च, (श्रीभा ११।१८।४५)—

भक्त्योद्धवानपायिन्या सर्व्वलोकमहेश्वरम् । सर्व्वोत्पत्त्ययं ब्रह्म कारणं नोपयाति सः ॥५९८॥

श्रीभगवद्वशीकारित्वम्

पाद्मे कार्त्तिक-माहात्म्ये श्रीनारदशौनक-संवादे—

भुक्ति मुक्ति हरिर्दद्यादर्च्चितोऽन्यत्र सेविनाम् । भक्तिञ्च न ददात्येष यतो वश्यकरी हरेः ॥५९९

तत्रैव वैशाखमाहात्म्ये श्रीनारदाम्बरीषसंवादे—

मायाजानिरमायोऽसौ भक्त्या राजन्नमायया ।
साध्यते साधुपुरुषैः स्वयं जानाति तद्भवान् ॥६००॥

तापितमेव हेम सुवर्णमन्तर्मलं जहाति, न क्षालनादिभिः स्वं निज रूपञ्च भजते । कर्म्मानुशयं कर्म्मवासनां, मां भजते, मया सङ्गममापद्यते ॥५९७॥

महेश्वरत्वे हेतुः—सर्व्वस्योत्पत्त्यप्ययौ यस्मात्तम्, अतएव तस्य कारणं मा मां ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहम्; यद्वा, ब्रह्मणो वेदस्य जीवतत्त्वस्य वा कारणं परब्रह्मरूपं मां देवकीनन्दनमुपयाति सामीप्येन प्राप्नोति, नित्यसङ्गितया मिलतीत्यर्थः ॥५९८॥

अन्यत्र श्रीमथुरेतरस्थाने अर्च्चितः सन् सेविनां भजतामपि भक्तिं प्रेमलक्षणाम्; यद्वा, सेविनां पूजा-परिचर्य्याकारिणामपि समग्रां भक्तिं न ददाति ॥५९९॥

माया जाया अधीना यस्य स मायाजानिः, अतः स्वयममायः मायाविकाररहितः । यद्वा, न विद्यते माया यस्मात् सः भक्तानां मायानिवर्त्तकइत्यर्थः । अमायया विशुद्धया भक्त्या, साधुभिः पुरुषैः । यद्वा, साधु यथा स्यात्तथा, यत् साध्यते वशीक्रियते तद्भवानेव स्वयं जानाति, भवता तद्वशीकरणात्, अतस्तन्मया किं निर्व्वचनीयमित्यर्थः ॥६००॥

एकादशस्कन्ध के श्रीभगवदुद्धव-संवाद में लिखित है—जिस प्रकार सुवर्ण, अग्नियोग से उत्तप्त होकर निज अन्तरस्थ मालिन्य परित्याग पूर्वक विशुद्ध रूप प्राप्त कर पवित्र होता है, उस प्रकार आत्मा, भक्ति-योग के द्वारा कर्मवासना परित्याग पूर्वक मेरा भजन करता है ॥५९७॥

और भी वर्णित है—हे उद्धव ! जो मानव, अविचलित भक्ति योग के द्वारा, सर्व लोकमहेश्वर, एवं सृष्टि स्थिति- लय के एकमात्र कारण स्वरूप मेरी आराधना करता है, वह परब्रह्म मुझको प्राप्त करता है ॥५९८॥

श्रीभगवद्वशीकारित्वम्

पद्मपुराण के कार्त्तिक-माहात्म्य में श्रीनारद एवं शौनक-संवाद में लिखित है—मथुरा व्यतीत अन्य स्थान में श्रीहरि की पूजा करने पर, श्रीहरि सेवकवृन्द को भुक्ति, यहाँ तक कि मुक्तिदान भी करते हैं, किन्तु प्रेमलक्षणा भक्ति प्रदान नहीं करते हैं, कारण, प्रेममय श्रीहरि, केवल उसी में विशेष बाध्य हैं ॥५९९

उक्त पद्मपुराण वैशाख माहात्म्य में श्रीनारद एवं अम्बरीष के कथोपकथन से प्रकाशित है—हे राजन्! माया जिनकी अधीन है, अर्थात् मायाधीश हैं, अतएव स्वयं माया विचार रहित साधु पुरुषवृन्द, उनको विशुद्ध भक्ति के द्वारा वशीभूत करते हैं, यह विषय भवदीय गोचरीभूत है ॥६००॥

एकादश-स्कन्धे च तत्रैव (१४।२०।२१)—

न साधयति मां योगो न साङ्ख्यं धर्म्म उद्धव।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्ज्जिता ॥६०१॥

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ॥६०२॥

स्वतः परम-पुरुषार्थता

तृतीयस्कन्धे श्रीकापिलेये (२९।१३)—

सालोक्य-सार्ष्टि-सामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत। दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥६०३

नवम-स्कन्धे चाम्बरीषोपाख्याने श्रीभगवदुक्तौ (४।६७)—

मत्सेवया प्रतीतन्ते सालोक्यादिचतुष्टयम्।

नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविप्लुतम् ॥६०४॥इति।

माहात्म्यं यच्च भगवद्भक्तानां लिखितं पुरा। तद्भक्तेरपि विज्ञेयं तेषां भक्त्यैव तत्त्वतः ॥६०५

न साधयति न वशीकरोति; ऊर्ज्जिता परमसमर्था ॥६०१॥

श्रद्धया या भक्तिस्तया, सतां भक्तानां प्रिय आत्मा आत्मनोऽपि सकाशात् प्रिय इत्यर्थः। यद्वा, आत्मापि अप्रियो यस्मात् स परमप्रियतम इत्यर्थः ॥६०२॥

सालोक्यं मया सह एकस्मिन् लोके वासं, सार्ष्टिं समानैश्वर्य्यं, सामीप्यं निकटवर्त्तित्वं, सारूप्यं समान-रूपताम्, एकत्वं सायुज्यम्, उत अपि दीयमानमपि मया; मत्सेवनं मद्भक्तिम् ॥६०३॥

'वशे कुर्व्वन्ति मां भक्त्या' (श्रीभा ९।४।६६) इति दुर्व्वाससं प्रति श्रीभगवता पूर्व्वश्लोकत उक्तम्। ननु तेषामपेक्षितं किञ्चिदन्यत् प्रदायात्मानं स्वतन्त्रयति चेत्तत्राह—मत्सेवयेति; प्रतीतं स्वतः प्राप्तमपि, आदि-शब्देन सारूप्यसामीप्य-सायुज्यानि, सेवया मद्भक्त्यैव पूर्णाः परिपूर्णकामाः परमानन्दरसभूता वा; सेवां विना नान्यत् किमपि वाञ्छन्तीत्यर्थः, भक्तेरेव स्वतः परमफलत्वात्। सदा भक्त्यैकासक्तत्वात्तेषामहं वश्य एवेति, दुर्व्वाससं प्रति वाक्यतात्पर्य्यम् ॥६०४॥

एवं पापप्रायश्चित्तनिरसनमारभ्य स्वतः परमपुरुषार्थतापर्य्यन्तं श्रीमद्भक्तेर्माहात्म्यं लिखित्वा इदानीं

एकादशस्कन्ध में उद्धव के प्रति श्रीकृष्ण की उक्ति है—हे उद्धव! मैं भक्ति प्रभाव से जिस प्रकार वशीभूत हूँ, सांख्य, योग, अहिंसादि धर्म, वेदपाठ, तपस्या एवं दान, इन सब कार्य्यों से मैं उस प्रकार वशीभूत नहीं हूँ। वस्तुतः अनन्य भक्तिपूर्वक मेरी आराधना करने से आत्मरूपी साधुप्रिय मैं लब्ध होता हूँ ॥६०१-६०२॥

स्वतः परम-पुरुषार्थता

तृतीय स्कन्ध के कपिल वाक्य में प्रकाशित है—जो मेरे प्रति प्रकृत भक्तिपरायण हैं, अर्थात् यथार्थ रूप में मेरी भक्ति करते हैं, यद्यपि मैं उनको सालोक्य, मेरे साथ एक लोक में वास, सार्ष्टि समान ऐश्वर्य्य, सामीप्य–निकट में वास, सारूप्य–समान रूप प्राप्ति, एकत्व–अर्थात् मुझमें लय प्राप्ति, मुक्ति प्रदान करने का उद्योग करता हूँ, किन्तु तथापि वे मेरी सेवा के अतिरिक्त और उनमें किसी वस्तु की इच्छा नहीं करते॥

नवमस्कन्ध के अम्बरीषोपाख्यान्त में भगवदुक्ति यह है—मेरी सेवा से सालोक्यादि चतुष्टय उपस्थित होने पर भी भक्तगण मेरी सेवा में पूर्ण होकर उसके ग्रहणेच्छु नहीं होते हैं। साधुगण मेरी सेवामें परिपूर्ण काम होते हैं। अपर नश्वर पदार्थ की कथा ही क्या है?॥६०३-६०४॥

पूर्व में जो भगवद्भक्त के माहात्म्य की कथा लिखी गई है उसी को भगवद्भक्ति का माहात्म्य समझना चाहिये। कारण, भक्तवृन्द का माहात्म्य एवं भक्ति वस्तुतः एक है, भिन्न वस्तु नहीं है ॥६०५॥

तथा पूजा-तदङ्गानां श्रीमन्नाम्नोऽपरस्य च ।

द्रष्टव्यमिह माहात्म्यं तेषां भक्त्यङ्गता यतः ।।६०६।।

अथ श्रीमद्भगवद्भक्तिनित्यता

यावज्जनो भजति नो भुवि विष्णुभक्ति,-वार्त्तासुधारसविशेषरसैकसारम् ।

तावज्जरामरण-जन्मशताभिघात,-दुःखानि तानि लभते बहुदेहजानि ।।६०७।।

दशमे ब्रह्मस्तुतौ (१४।४)—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।

तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते, नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ।।६०८।।

एकादशे (५।२-३)—

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह । चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ।।६०९।।

पूर्व्वलिखितमखिलं तत्तन्माहात्म्यमपि भक्तिमाहात्म्य एव पर्य्यवसाययति—माहात्म्यमिति द्वाभ्याम् । तत्—माहात्म्यं, यतो यस्मात् तेषां भक्तानां तन्माहात्म्यभक्त्यैव हेतुना भवति ।।६०५।।

तथेति पूर्व्वलिखित-समुच्चये । पूजायास्तस्याः पूजाया अङ्गानाञ्च, श्रीमन्नाम्नश्च, अपरस्य च श्रवण-कीर्त्तनादेः, अग्रे लेख्यस्यैकादश्युपवासादेरपि यन्माहात्म्यं, तत् सर्व्वमिह भक्ति-माहात्म्ये द्रष्टव्यम् । यतो यस्मात्तेषां पूजादीनां भक्तेरङ्गता, तानि सर्व्वाणि भक्तेरेवाङ्गानीत्यर्थः ।।६०६।।

एवमनुष्ठाने गुणसमुदयं लिखित्वा इदानीमकरणे प्रत्यवायं लिखति—यावदित्यादिना, 'पतन्त्यधः' इत्यन्तेन । विष्णुभक्तेर्वार्त्ता अन्योऽन्यकथनमपि सुधारसस्तं यावज्जनो न भजति, भक्त्या नाश्रयति, जरामरणजन्मनां शतं बाहुल्यमभिघातश्च नरकादिषु प्रहारः ; यद्वा, जरादिशतस्य यानि दुःखानि तानि अनिर्व्वचनीयानि । एवं संसारमहादुःखज्वालानिवृत्तिरुक्ता ।।६०७।।

भक्तिं विना तु ज्ञानं नैव सिध्येदथच केवलं दुःखमेव स्यादित्याह—श्रेय इति; श्रेयसाम् अभ्युदयापवर्ग-लक्षणानां सृतिः सरणं यस्याः सरस इव निर्झराणां तां ते तव भक्तिमुदस्य त्यक्त्वा, श्रेयसां मार्गभूतामिति वा, तेषां क्लेशलः क्लेश एव शिष्यते । अयं भावः—यथा स्वल्पप्रमाणधान्यं परित्यज्यान्तःकणहीनान् स्थूल-धान्याभासान् तुषान् येऽवघ्नन्ति, तेषां न किञ्चित् फलम्; एवं भक्तिं तुच्छीकृत्य केवलबोधाय ये प्रयतन्ते, तेषामपीति ।।६०८।।

स्वजनकस्य भगवतोऽभजनाद्गुरुद्रोहेण दुर्गतिं यान्तीति वक्तुं भगवतः सकाशात् वर्णाश्रमाणामुत्पत्तिमाह

तद्रूप, पूजा, तदङ्ग, भगवन्नाम, एवं श्रवण कीर्त्तनादि का जो माहात्म्य लिखा गया है, वह भी भक्ति माहात्म्य में सन्निविष्ट है । कारण, भक्तवृन्द की पूजा प्रभृति भक्त्यङ्ग समूह भक्ति के अङ्ग मात्र हैं ।।६०६

अथ श्रीमद्भगवद्भक्तिनित्यता

यावत्काल पर्य्यन्त विष्णुभक्ति वार्त्तारूप सुधारस सार को भक्ति के सहित सम्मिश्रित करके उसका आश्रय ग्रहण नहीं करता, तावत्काल पर्य्यन्त जीवों को विविध देह जात जरा, जन्म, मृत्यु एवं नरकयातना भोगनी पड़ती है ।।६०७।।

दशमस्कन्ध की ब्रह्मस्तुति में लिखित है—हे विभो ! मङ्गलपथ स्वरूप भक्ति को परित्याग कर केवल बोधलब्धि हेतु जो लोक प्रचेष्टाशील हैं, वे स्थूल तुषावघाती व्यक्ति के समान वृथा क्लेश मात्र ही प्राप्त करते रहते हैं ।।६०८।।

एकादशस्कन्ध में वर्णित है—परमपुरुष के मुख, बाहु, ऊरु, एवं पद से सत्वादि गुण, एवं ब्रह्मचर्य्यादि

य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् । न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ॥६१०

अतएवोक्तं श्रीभगवता (श्रीगी ७।१५)—

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥६११

नित्यत्वं यद्यदङ्गानां भक्तेर्विलिखितं पुरा । तेन तेनैव नित्यत्वमस्याः संसाधितं परम् ॥६१२॥

लक्षणानि च तद्भक्तेः श्रीमद्भागवतादिषु ।

ख्यातानि श्रवणादीनि लिख्यन्तेऽथापि कानिचित् ॥६१३॥

अथ श्रीमद्भक्तिलक्षणानि, तत्र सामान्यलक्षणम्

तृतीयस्कन्धे श्रीकापिलेये (२५।३२)—

देवानां गुणलिङ्गानामानुश्रविककर्म्मणाम् । सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥६१४॥

—मुखेति । गुणैः—सत्त्वेन विप्रः, सत्त्वरजोभ्यां क्षत्रियः, रजस्तमोभ्यां वैश्यः, तमसा शूद्र इति; यद्वा, गुणैर्वृत्तिभिश्च सह । तथा च तृतीयस्कन्धे (६।३०-३३)—'मुखतोऽवर्त्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह । यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥ बाहुभ्योऽवर्त्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः । यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥ विशोऽवर्त्तन्त तस्योर्व्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः । वैश्यस्तदुद्भवो वार्त्तां नृणां यः समवर्त्तयत् ॥ पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषा धर्म्मसिद्धये । तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥' इति । तथा 'आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत् सह वृत्तिभिः' (श्रीभा ३।१२।४१) इति । यद्वा, गुणैः यथासंख्यं शान्ति-वीर्य्य-धनार्ज्जन-परिचर्य्यादिरूपैश्च सह ॥६०९॥

एषां मध्ये ये ज्ञात्वा न भजन्ति, ये च ज्ञात्वाऽप्यवजानन्ति; यद्वा, न भजन्ति अतएवावजानन्ति, अतएव ते स्थानाद्वर्णाश्रमाद्वृत्तेश्च भ्रष्टाः सन्तोऽधो नरकेषु पतन्ति । कुतः आत्मनः प्रभवो जन्म यस्मात्तम् । एवं तदभजने गुरुद्रोहितोक्ता; कृतघ्नतामप्याह—ईश्वरमिति ॥६१०॥

एवं भक्तेः स्वतो नित्यतां लिखित्वा इदानीं पूर्व्वलिखितेन श्रवणादि-नित्यत्वेनापि भक्तेः परमनित्यत्वमवगन्तव्यमिति लिखति—नित्यत्वमिति । भक्तेरङ्गानां श्रवणादीनाम्, अस्याः भक्तेः परं परमं नित्यत्वं सम्यक् साधितम् ॥६१२॥

तस्या निखिल-माहात्म्याया भक्तेः श्रवणादीनि-लक्षणानि श्रीमद्भागवतादिषु ख्यातान्येव; तथापि कानिचित् लक्षणानि लिख्यन्ते ॥६१३॥

देवानां द्योतनात्मकानामिन्द्रियाणां तदधिष्ठातॄणां वा सत्त्वे सत्त्वमूर्त्तौ श्रीभगवत्येव या वृत्तिः सा भक्तिः।

आश्रय चतुष्टय के सहित क्रम पूर्वक ब्राह्मणादि वर्ण चतुष्टय उत्पन्न हुये हैं। इनके मध्य में जो साक्षात् आत्म प्रभव ईश्वर का भजन नहीं करते हैं, किन्तु अश्रद्धा करते हैं, वे सब अधःपतित होकर स्थान भ्रष्ट होते हैं ॥६०९-६१०॥

अतएव श्रीभगवान् ने कहा है—दुष्क्रियान्वित, ज्ञानशून्य, नराधम समूह, प्रपन्न नहीं होते हैं, वे सब माया द्वारा अपहृत ज्ञान होकर असुरभाव को अवलम्बन करते हैं ॥६११॥

पूर्व में जिस जिस अङ्ग के नित्यत्व के सम्बन्ध में लिखा गया है, उसके द्वारा ही इसका परम नित्यत्व साधित हुआ है। यद्यपि श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थ में भक्ति के श्रवणादि लक्षण सुस्पष्ट भाव से वर्णित हैं, तथापि यहाँ पर उसके कतिपय लक्षण प्रदर्शित हो रहे हैं।॥६१२-६१३॥

अथ श्रीमद्भक्तिलक्षणानि, तत्र सामान्यलक्षणम्

तृतीयस्कन्ध में श्रीकपिलदेव ने कहा है—जो इन्द्रियसमूह बाहर प्रकाशित हैं, एवं जिनकी सहायता से

अथ विशेषसाधनभक्ति-लक्षणानि

गौतमीयतन्त्रे—

**देवतायाञ्च मन्त्रे च तथा मन्त्रप्रदे गुरौ । भक्तिरष्टविधा यस्य तस्य कृष्णः प्रसीदति ॥६१५
तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायाञ्चानुमोदनम् । सुमना अर्च्चयेन्नित्यं तदर्थे दम्भवर्ज्जनम् ॥६१६
तत्कथाश्रवणे रागस्तदर्थे चाङ्गविक्रिया । तदनुस्मरणं नित्यं यस्तन्नाम्नोपजीवति ॥६१७॥
भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्त्तते ।
स मुनिः सत्यवादी च कीर्त्तिमान् स भवेन्नरः ॥६१८॥**

सप्तमस्कन्धे प्रह्लादोक्तौ (५।२३-२४)—

**श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥६१९
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा । क्रियेत भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥६२०**

एवं श्रवणादिलक्षणान्येवोद्दिष्टानि इति सामान्यतो लक्षणम् । गुणा विषया लिङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते यैस्तेषामिति सदा विषयनिष्ठता दर्शिता; तेषामेवंविधवृत्तौ हेतुमाह—गुरोरुच्चारणमनुश्रूयते इत्यनुश्रवो वेदस्तद्विहित-मानुश्रविकं, तदेव कर्म्म येषाम् । अतएव एकमेकरूपमविकृतं मनो यस्य पुंसः शुद्धसत्त्वस्य सत इत्यर्थः । यद्वा, एकस्मिन् भगवत्येव मनो यस्य; अस्य पदस्य परेण वा सम्बन्धः । सा च भगवती भगवत्सम्बन्धिनी भक्तिरेक-मनसः पुंसः सती, अतएव अनिमित्ता निष्कामा सती; अतएव स्वाभाविकी अयत्नसिद्धा च सती सिद्धेर्मोक्षादपि गरीयसी भवतीत्यन्वयः । एवमादौ सामान्यलक्षणमुक्त्वा पश्चादुत्तमत्वमुक्तम् । 'काचित्त्वय्युचिता भक्तिः' (श्रीभा ३।२५।२८) इति श्रीदेवहूत्योत्तमभक्तेः पृष्टत्वात् ॥६१४॥

सुमनाः शुद्धचित्तः श्रद्धाभक्तियुक्तश्च सन् नित्यमेकः प्रकारः, तदर्थे भगवदर्थं सुमनस्त्वेनार्च्चनार्थं वा ॥

अङ्गविक्रिया—नृत्यादिः ॥६१६-६१७॥

मुनिः जीवन्मुक्तः सत्यं भगवन्नाम वदितुं शीलमस्य स तथा । स्वत एव कीर्त्तिमान् देवादि-गीयमान-माहात्म्य इत्यर्थः ॥६१८॥

पादसेवनं—परिचर्य्या, अर्च्चनं—पूजा, दास्यं—कर्म्मार्पणं, सख्यं—तद्विश्वासादि, आत्मनिवेदनं—देह-समर्पणं, यथा विक्रीतस्य गवादेर्णरणपालनादिचिन्ता न क्रियते, तथा देहं तस्मै समर्प्य तच्चिन्तावर्ज्जन-मित्यर्थः ॥६१९॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस प्रभृति की उपलब्धि होती है, सत्त्वमूर्त्ति श्रीहरि में उन सबकी जो स्वाभाविक वृत्ति है—वह ही भक्ति है । भागवती भक्ति फलानुसन्धान शून्य है, अतएव वह सिद्धि से भी श्रेष्ठा है ॥६१४॥

अथ विशेषसाधनभक्ति-लक्षणानि

गौतमीय तन्त्र में वर्णित है—जिसकी देवता में, मन्त्र में, मन्त्रदाता गुरुदेव में वक्ष्यमाण अष्टविध भक्ति आविर्भाव है, श्रीकृष्ण, उसके प्रति सन्तुष्ट होते हैं, भगवद्भक्त के प्रति वात्सल्य, स्नेह, उनकी पूजा में अनु-मोदन, दम्भ वर्जित होकर श्रद्धाभक्ति पूर्वक उनकी पूजा करना, उनकी लीलादि श्रवण में अनुराग, उनके आगे नृत्यगीतादि, नित्य उनका चिन्तन करना, एवं उनके नाम पर जीवन यापन, यदि कोई म्लेच्छ मनुष्य में भी यह अष्टविध भक्ति होती है तो, वह व्यक्ति जीवन्मुक्त, सत्यवादी एवं कीर्त्तिमान् होता है ॥६१५॥

सप्तमस्कन्ध में श्रीप्रह्लाद का कथन है—श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन, यह नवलक्षण युक्त भक्ति का अर्पण श्रीभगवान् में जो व्यवधान रहित होकर करते हैं, उन्हीं ने उत्तम अध्ययन किया है, यह मैं मानता हूँ ॥६१९-६२०॥

तत्रैव श्रीनारदयुधिष्ठिर-संवादे (श्रीभा ७।११।११)—

श्रवणं कीर्त्तनञ्चास्य स्मरणं महतां गतेः। सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥६२१॥

पाद्मे कार्त्तिक-माहात्म्ये श्रीयमधूम्रकेतु-संवादे—

श्रवणं कीर्त्तनं पूजा सर्व्वकर्म्मार्पणं स्मृतिः। परिचर्य्या नमस्कारः प्रेम स्वात्मार्पणं हरौ ॥६२२

तत्रैवोत्तरखण्डे श्रीशिवपार्व्वतीसंवादे—

आद्यन्तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कनं हरेः। धारणञ्चोर्द्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः ॥६२३

अर्च्चनञ्च जपो ध्यानं तन्नामस्मरणन्तथा। कीर्त्तनं श्रवणञ्चैव वन्दनं पादसेवनम् ॥६२४॥

तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदितभोजनम्। तदीयानाञ्च संसेवा द्वादशीव्रतनिष्ठता ॥६२५॥

तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः। भक्तिः षोड़शधा प्रोक्ता भवबन्धविमुक्तये ॥६२६॥
इति।

किञ्च—

दर्शनं भगवन्मूर्त्तेः स्पर्शनं क्षेत्रसेवनम्। आघ्राणं धूपशेषादेर्निर्म्माल्यस्य च धारणम् ॥६२७॥

नृत्यं भगवदग्रे च तथा वीणादिवादनम्। कृष्णलीलाद्यभिनयः श्रीभागवतसेवनम् ॥६२८॥

अस्य महतां गतेः श्रीकृष्णस्य; इज्या—पूजा ॥६२१॥

सर्व्वस्य कर्म्मणोऽर्पणम्; एतदेव सप्तमस्कन्धे श्रीप्रह्लादेन दास्यमित्युक्तम्। प्रेम विश्वासः, भावविशेषाभिधेयस्य प्रेम-शब्दस्य परमफलत्वे मुख्यवृत्तेः; अतएवैतत् तेन तत्रैव सख्यमित्युक्तम्; प्रेमरूख्यमेवं स्थानत्रये नवलक्षणा भक्तिरुक्ता, श्रवणादीनामेषामेव नवप्रकाराणां मुख्यत्वात् ॥६२२॥

अथान्यानपि काश्चिन्मुख्यान् दर्शयन् षोड़शप्रकारान् लिखति—आद्यमिति चतुर्भिः। वैष्णवं विष्णुभक्तिलक्षणमित्यर्थः। हरेः शङ्खचक्राभ्यामङ्कनं, तच्च तन्नाम्यामिति ज्ञेयं, तदङ्कनस्यैव मुख्यत्वात्। तस्य हरेर्मन्त्राणां, तस्य हरेर्नाम्नां स्मरणम्; लघु लघु शनैः कीर्त्तनं मनसि वा चिन्तनम्; एवं ध्यानेन कीर्त्तनेन वा गृहीतस्यापि नाम-स्मरणस्य पृथङ्‌निर्द्देशः, तस्य स्वातन्त्र्यविवक्षया। तदीयानां श्रीवैष्णवानां सम्यक् सेवा ॥६२३-६२५॥

एवं तत्र तत्र स्पष्टमेकत्रोक्तानि भक्तेर्लक्षणानि लिखित्वा इदानीमनुक्तान्यपि लक्षणानि पूर्व्वलिखिताद्यनुसारेण लिखन् श्रवणेन्द्रियादीनामिव चक्षुरादीन्द्रियाणामपि भगवन्निवृत्त्या, तथा मस्तकाद्यङ्गानामपि भगवदर्थचेष्टया भक्तित्वेन, तथा पूजाङ्गानामपि भक्तयन्तर्गतत्वेन श्रीमूर्त्तिदर्शनादीन्यपि भक्तिलक्षणान्येवेति

उक्त सप्तमस्कन्ध के श्रीनारद-युधिष्ठिर-सवाद में वर्णित है—श्रीकृष्ण के नामादि श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण सेवा-पूजा, नमस्कार, दास्य, सख्य एवं आत्म निवेदन—भक्ति का उत्तम निदर्शन है ॥६२१॥

पद्मपुराण के कार्त्तिक माहात्म्य में श्रीयम धूम्रकेतु-संवाद में लिखित है—श्रवण, कीर्त्तन, पूजा, सर्वकर्म समर्पण, स्मरण, परिचर्य्या, नमस्कार, प्रेम एवं भगवान् में आत्मसमर्पण-भगवत्-प्रीति का कारण है ॥६२२

उक्त पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में श्रीशिवपार्वती-संवाद में लिखित है—श्रीहरि के शङ्ख-चक्र चिह्न द्वारा शरीराङ्कन, विष्णुभक्त का प्रथम लक्षण अनिहित है, उर्द्ध्वपुण्ड्र धारण, विष्णुमन्त्र ग्रहण, उनकी पूजा, जप, ध्यान, उनका नामस्मरण, एवं कीर्त्तन, वन्दन, पादसेवन, पादोदक धारण, उनको निवेदित द्रव्य ग्रहण, वैष्णववृन्द की सेवा, द्वादशी व्रत का निष्ठा पूर्वक पालन, तुलसी रोपण, देवदेव शार्ङ्गी के प्रति यह षोड़शविध भक्ति, भवबन्धन से मुक्ति का कारण है ॥६२३-६२६॥

और भी वर्णित है—भगवान् की मूर्त्ति का दर्शन, उनका स्पर्श, मथुरा प्रभृति तीर्थ में गमन, भ्रमण, एवं अवस्थिति, धूपशेषादि का आघ्राण अर्थात् सूँघना, निर्म्माल्य ग्रहण, भगवत् समीप में नृत्य, उनके

पद्माक्षमालादिधृतिरेकादश्यादिजागरः। प्रासादरचनाद्यन्यज्ज्ञेयं शास्त्रानुसारतः ॥६२९॥
लिखिता भगवद्धर्म्मा भक्तानां लक्षणानि च। तानि ज्ञेयानि सर्व्वाणि भक्तेर्वै लक्षणानि हि ॥६३०
तेषु ज्ञेयानि गौणानि मुख्यानि च विवेकिभिः। वहिरङ्गान्तरङ्गाणि प्रेमसिद्धौ च तानि यत् ॥६३१

लिखनि—दर्शनमिति त्रिभिः। क्षेत्रस्य श्रीमथुरादेः सेवनं, तत्र गमनं भ्रमणं निवासश्चेत्यर्थः। इति प्रायः पादेन्द्रियवृत्तिर्दर्शिता। धूपशेषस्य, आदि-शब्देन निर्म्माल्यतुलस्यादेश्चाघ्राणम्; एवं चक्षुस्त्ववपादनासेन्द्रिय-वृत्तिरूपलक्षणानि लिखितानि। पूर्व्वं नवलक्षणेषु श्रवणवाक्यमनोहस्तेन्द्रियवृत्ति-लक्षणानि, षोड़श-लक्षणेषु च पादोदकपान-निवेदितभोजनाभ्यां रसनेन्द्रियवृत्तिरूपलक्षणं लिखितं, पायूपस्थयोश्च तत्र साक्षादयोग्यत्वात् तद्वृत्तिरूपलक्षणं न लिखितम्। इदानीं मस्तकाद्यङ्गचेष्टारूपलक्षणानि लिखति—निर्म्माल्यसेवेत्यादिना। तत्र च क्वचिदेकस्याङ्गस्य क्वचित् द्वयोः, क्वचिद्बहूनां तत्रापि क्वचित् संहतानामपीत्येवं विवेचनीयम्। यद्यपि वन्दनेन शिरश्चेष्टारूपलक्षणं, परिचर्य्यया च हस्तादिचेष्टारूपलक्षणानि गृहीतान्येव, तथापि तत्र तत्रैव विशेषान्तरापेक्षया पुनस्तच्चेष्टारूपलक्षणानि निर्म्माल्यधारण-वीणावादनादीनि लिखितानीति दिक्। भगवदग्रत इति अन्यत्र नर्त्तनादेर्भगवद्भक्तिलक्षणत्वाभावात् प्रेमवैवश्य नृत्यादेश्च फलपरिकरान्तर्गतत्वादिति दिक्। अत्र यद्यपि नृत्यं प्रायो हस्तपादयोरेव चेष्टा, तथापि सङ्घातैरेवाङ्गैरन्यैरपि स्यादिति संहतानामेव ज्ञेयम्। एवमग्रेऽप्यूह्यम्। तथेति भगवदग्र एवेत्यर्थः। सिद्धान्तश्चात्र पूर्व्ववदेव; आदि-शब्देन वंश्यादि, कृष्णस्य लीला, आदि-शब्देन रूपादि, तदनुकरणं, श्रीभागवतस्य सेवनं, श्रवणकीर्त्तनादिपरता; पद्माक्ष-मालायाः, आदि-शब्देन तुलसीमालादीनाञ्च धारणम्; एकादश्याम्, आदि-शब्दाज्जन्माष्टम्यादिषु च रात्रौ जागरणं, प्रासादस्य भगवदालयस्य रचनं निर्म्माणं, तदादिकं चान्यद्यात्रोत्सवादि शास्त्रोक्तानुसारेण भक्ति-लक्षणं ज्ञेयम् ॥६२७-६२९॥

तदेव आदि-शब्दसूचितमभिव्यञ्जयति—लिखिता इति। भगवद्धर्म्मा ये पूर्व्वं लिखिताः, यानि च भगवद्भक्तानां लक्षणानि लिखितानि, तानि सर्व्वाण्येव भक्तिलक्षणानि ज्ञेयानि। वै प्रसिद्धौ ॥६३०॥

तेष्वेव किञ्चिद्विशेषं दर्शयति—तेष्विति। श्रवणादिसर्व्वेषु एव लिखितेषु भक्तिलक्षणेषु मध्ये कानिचित् गौणानि अप्रधानानि, कानिचिच्च मुख्यानि प्रधानानि विविच्य ज्ञेयानीत्यर्थः। यत यस्मात तानि लक्षणानि प्रेम्णः सिद्धौ साधने वहिरङ्गानि अन्तरङ्गानि च; यानि वहिरङ्गाणि, तानि गौणानि; यानि चान्तरङ्गाणि, तानि मुख्यानीत्यर्थः। विवेकिभिरित्यनेन श्रवणादीनि नव मुख्यानि, तत्र च श्रवण-कीर्त्तन-स्मरणानि, 'श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्त्तव्यो भगवान् नृणाम्' (श्रीभा २।२।३६) इति सारोपदेशात्। तत्रापि कीर्त्तन-स्मरणे—'भक्तिर्भवति गोविन्दे स्मरणं कीर्त्तनं तथा' इति स्कान्दे भक्तिविशेषणतया तयोरुक्तेः। तत्रापि श्रीभगवन्नामसंकीर्त्तनम्—'अघच्छित्स्मरणम्' इत्यादि वचनात्, तच्च सर्व्वं पूर्व्वं लिखितम्। श्रीभागवतामृतो-त्तरखण्डे च विवृतमस्ति। सख्यात्मनिवेदने च फलपरिकरान्तर्गतत्वेन मुख्यतमे इत्येवं विवेचनमभिप्रेतम्। एतच्चाखिलं श्रीवोपदेवाचार्य्यादिभिर्मुक्ताफलादिग्रन्थेषु, श्रीमन्महानुभावैश्च भक्तिरसार्णवे विशेषेण विविच्य दर्शितमेवास्तीति विस्तरतो न लिखितम् ॥६३१॥

समीप में वीणादि वादन, कृष्णलीला प्रभृति का अभिनय, श्रीमद्भागवत की सेवा, पद्म एवं अक्षमालादि धारण, एकादशी प्रभृति में रात्रि जागरण, भगवदुद्देश में गृह निर्माण, एवं यात्रा महोत्सव प्रभृति शास्त्रीय अनुष्ठान को भक्ति का लक्षण जानना चाहिये ॥६२७-६२९॥

जो सब भगवद्धर्म एवं भक्त के लक्षणसमूह लिखित हुये हैं, तत्समुदाय को भक्ति का लक्षण जानना होगा। श्रवणादि विषयक जो सब भक्तिलक्षण वर्णित हुये हैं, अभिज्ञ भक्तवृन्द उसके मध्य में कतिपय को अन्तरङ्ग कतिपय को अप्रधान एवं कतिपय को अन्तरङ्ग एवं कतिपय को अन्तरङ्ग जानें ॥६३०-६३१॥

भेदास्तु विविधा भक्तेर्भक्तभावादिभेदतः । मुक्ताफलादिग्रन्थेभ्यो ज्ञेयास्तल्लिखनैरलम् ॥६३२॥

प्रेमभक्तौ च सिद्धायां सर्व्वेऽर्थाः सेवकाः स्वयम् ।
भगवांश्चातिवश्यः स्याल्लिख्यतेऽस्याः सुलक्षणम् ॥६३३॥

अथ प्रेमभक्ति-लक्षणम्

नारदपञ्चरात्रे—

अनन्यममता विष्णौ ममता प्रेमसंप्लुता । भक्तिरित्युच्यते भीष्म-प्रह्लादोद्धव-नारदैः ॥६३४॥
इति ।

किञ्च, भक्तानां भगवत्सेवकानां, भावः—तामसो राजसः सात्त्विकश्च, तथा कर्म्म-ज्ञान-वैराग्य मिश्रः शुद्धश्चेत्येवं भेदेन, आदि-शब्दात् साधन-साध्यादिभेदेन च भक्तेर्बहुविधा भेदा भवन्ति । ते चोक्ताः कतिचित् स्पष्टं श्रीकपिलदेवेन तृतीयस्कन्धे (२९।८-१०)— 'अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्य्यमेव वा । संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्य्यात् स तामसः ॥ विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्य्यमेव वा । अर्च्चादावर्च्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥ कर्म्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् । यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥' इत्यादिभिः । एषु च प्रत्येकमपि त्रिधावान्तरभेदो द्रष्टव्यः । एवमेकाशीतिर्भेदाः प्रसिद्धाः । अन्ये च बहवो लिखितानुसारेण भवन्त्येव । तत्र च कर्म्म-ज्ञानमिश्रादयः पूर्व्वं भक्तलक्षणेषु संक्षेपेण लिखिता एव, विशेषतश्च सर्व्वेऽप्येते भेदाः श्रीवोपदेवाचार्य्यादिभिर्निरूपिता एव सन्ति । अतस्ते मुक्ताफलादि-ग्रन्थेभ्योऽवगन्तव्याः । आदि-शब्देन विष्णुभक्तिचन्द्रोदयभक्तिरसार्णवादयः । अतोऽत्र तेषां भेदानां लिखनैरलं, प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः, वैष्णवानामवश्यकृत्यलिखनग्रन्थेऽस्मिन् तदपेक्षाविशेषाभावात् ॥६३२॥

इत्थं श्रवणादिलक्षणायाः साधनभक्तेर्माहात्म्यं लक्षणञ्च लिखित्वा इदानीं प्रेमलक्षणाया एव रूपाया भक्ते-स्तत्तल्लिखिष्यन् आदौ संक्षेपेण माहात्म्यं दर्शयन् लक्षणविशेषलिखनं प्रतिजानीते—प्रेमेति; प्रेमलक्षणभक्तौ सिद्धायाञ्च सर्व्वे अर्था धर्म्मादयः पुरुषार्थाः स्वयमेव सेवकाः प्रेमभक्तिमतो जनस्याधीना भवन्ति । अप्यर्थे चकारः । भगवान् परमेश्वरः श्रीकृष्णोऽपि अतिवश्यः परमायत्तः स्यादिति संक्षेपतो माहात्म्यम् । यद्यपि श्रवणादिसाधनभक्त्या तद्वशीकरणं पूर्व्वं लिखितमस्ति, तथापि भक्तमनोरथपूरणार्थं प्रेमप्रदानार्थं वा तद्विज्ञेयम् । प्रेम्णा च वशीकरणं, प्रेमवतो मनोरथे सम्पादितेऽपि सत्सङ्गं कदापि न परित्यक्तुं शक्नोतीत्येवं विवेचनीयम् । अतएवात्रापि-शब्दप्रयोगः । अस्याः प्रेमभक्तेः सुशोभनं लक्षणं, सु-शब्दो मुक्ताफलादिः ग्रन्थकारलिखितापेक्षया ॥६३३॥

विष्णौ भगवति प्रेमसंप्लुता प्रेमरसव्याप्ता या ममता ममायमिति भावः, सा भक्तिः प्रेमलक्षणेति भीष्मा-दिभिस्तत्त्वविद्भिरुच्यते । कथम्भूता ममता ? न विद्यते अन्यस्मिन् देहगेहादौ ममता यस्यां सा प्रेमलक्षणैव प्रसिद्धा ॥६३४॥

कर्मिमिश्रा, ज्ञानमिश्रा, एवं वैराग्यमिश्रा भक्ति का तथा शुद्धाभक्ति का अधिकारी भेद से भक्तवृन्द में भाव की भिन्नता होती है, उससे भक्ति अनुष्ठान में भी भिन्नता होती है, यहाँ उस विषय का वर्णन अनावश्यक है । कारण, मुक्ताफलादि ग्रन्थ में उस विषय का विस्तृत वर्णन है । अतः विशेष अध्ययन हेतु उक्त ग्रन्थ अवलोकनीय है ॥६३२॥

प्रेमभक्ति की सिद्धि होने पर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप सर्वविध पुरुषार्थ, सेवक के समान कार्य्य करते हैं । अपर कथा क्या है ? भगवान् भी अतिशय वशीभूत होकर रहते हैं, सुतरां प्रेमभक्ति का सुन्दर लक्षण लिखित हो रहा है ॥६३३॥

अथ प्रेमभक्ति-लक्षणम्

नारदपञ्चरात्र में लिखित है—एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमरसमयी अनन्य ममता को ही भीष्म,

प्रेमभक्तेश्च माहात्म्यं भक्तेर्माहात्म्यतः परम् । सिद्धमेव यतो भक्तेः फलं प्रेमैव निश्चितम् । ६३५
चिह्नानि प्रेमसम्पत्तेर्बाह्यान्याभ्यन्तराणि च । कियन्त्युल्लिखिता तस्या महिमैव विलिख्यते ।।६३६

अथ प्रेमसम्पत्ति-चिह्नानि

सप्तमस्कन्धे श्रीप्रह्लादस्य बालानुशासने (७।३४-३६)—

निशम्य कर्म्माणि गुणानतुल्यान्, वीर्य्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं, प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ।।६३७।।
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस,-त्याक्रन्दति ध्यायति वन्दते जनम् ।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते, नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ।।६३८।।

ननु ईदृश्या भक्तेर्माहात्म्यं विस्तरतोऽपेक्ष्यते, तत्र लिखति—प्रेमभक्तेश्चेति । परमन्यच्च उत्कृष्टं वा माहात्म्यं सिद्धमेव, साधनभक्तेरपि दौर्लभ्यादिना साध्यभक्तेः स्वत एव परमदौर्लभ्यादिसिद्धेः । तत्र यद्यपि पापोन्मूलनादिकमत्यन्ततुच्छत्वात्तन्माहात्म्येनातीव सङ्गच्छते, तथापि प्रेमभक्तिगतः कथञ्चित्-सम्बन्धिनामपि विदूरतः सद्योऽशेषसमूलपापोन्मूलनादिकं भवतीत्येवमूह्यम् । यतः प्रेमैव फलं निश्चितं, न तु वैकुण्ठवासादिकमपीत्यर्थः । यद्यपि वैकुण्ठलोकोऽप्यसौ प्रेमभक्तिमय एव, तथापि प्रेमवतां तत्र नातीवापेक्षेति श्रीभागवतामृतोत्तरखण्डे विवृतमेवास्ति । किञ्च, यद्यपि प्रेमस्वभावेन कदापि श्रवणादिभक्तेः परित्यागो न स्यात्, अथवा विवृद्धा एव, तद्वृद्धया च पुनः प्रेमविशेषः सम्पद्यते इति परस्परं कार्य्यकारणता प्रकटैव, अतएव 'दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम्' (श्रीभा १०।५९।४५) इत्यादिना श्रीमहिषीणां विविधसेवात्मिका, श्रीनारदादीनाञ्च कीर्त्तनादिरूपा भक्तिः श्रूयते । तथाप्यत्र श्रवणादिभक्त्यनन्तरं प्रेमलक्षणभक्तेः सिद्धत्वात् 'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या' (श्रीभा ११।३।३१) इत्याद्यनुसारेण फलं प्रेमैवेति लिखितमिति दिक् ।।६३५।।

एवं प्रेमभक्तेः परमं माहात्म्यं दर्शितमेव, परमपि तत्सम्पत्तिलक्षणानुषङ्गेन परममधुरमाहात्म्यविशेषं दर्शयन् प्रेमभक्ति-सम्पत्त्या जायमान-बाह्यान्तरविकाराणां संक्षेपतो लिखनं ततश्च तस्या माहात्म्यलिखनमपि प्रतिजानीते—चिह्नानीति । उल्लिखिता—उत् उद्देशेन संक्षेपेण लिखता; तस्याः प्रेमभक्तेर्माहात्म्यमेव विशेषतो लिख्यते, प्रेमभक्तिसिद्धस्य स्वाभाविकलक्षणानामपि साधकेषु परमसाध्यत्वात् ।।६३६।।

गुणान् भक्तवात्सल्यादीन्, वीर्य्याणि दैत्यमारणादीनि पराक्रमांश्च । अतिहर्षेणोद्गताः पुलका अश्रूणि च तैर्गद्गदं यथा भवति, एवं प्रोत्कण्ठ उच्चैर्गायति । आत्मनि भगवति मतिर्यस्य तथाभूतः सन् अतएव गतत्रपः निर्लज्जः सन् ।।६३७-६३८।।

प्रह्लाद, उद्धव, नारद प्रभृति महात्मागण प्रेमलक्षणा भक्ति कहते हैं। अर्थात् भगवान् के निमित्त कार्य्य में प्रवृत्त होकर भगवत् सम्पर्क व्यतीत वस्तु में 'मैं मेरा' ऐसा भाव नहीं रहता है, और जिसमें भगवत् प्रेमरस मत्तता ही है, अर्थात् यह भगवान् ही मेरे हैं, ऐसे ज्ञान का परिचय है, उसको प्रेमलक्षणा भक्ति, भीष्म, प्रह्लाद, उद्धव एवं नारद प्रभृति महात्मावृन्द कहते हैं ।।६३४।।

प्रेम भक्ति का माहात्म्य—जो भक्ति, माहात्म्य से श्रेष्ठ है, यह प्रमाणित हुआ। कारण, भक्ति का अवधारित फल ही प्रेमभक्ति है। कियत् परिमाण में प्रेमभक्ति का बाह्य एवं आभ्यन्तरीण लक्षण उल्लिखित हुआ, सम्प्रति उसका माहात्म्य लिखित हो रहा है ।।६३५-६३६।।

अथ प्रेमसम्पत्ति-चिह्नानि

सप्तमस्कन्ध में श्रीप्रह्लाद कर्त्तृक बालकों के प्रति अनुशासन प्रदान विषय में लिखित है—भगवान् के अतुलनीय गुण, कर्म, पराक्रम एवं लीलासमूह की वर्णना को सुनकर जब आनन्दातिशय्य निबन्धन पुलक एवं प्रेमाश्रु प्रकाशित होते हैं, जब लोक, गद्गद स्वर से ऊर्द्ध्व कण्ठ से कभी आनन्द ध्वनि, गीत, क्रन्दन

यदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धन,-स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा, भक्तिप्रयोगेन समेत्यधोक्षजम् । ६३९॥

एकादशे च श्रीकवियोगेश्वरोत्तरे (२।३९-४०)—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे,-र्जन्मानि कर्म्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि, गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥६४०॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्त्या, जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय,-त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥६४१॥

तस्य हरेर्भावश्चेष्टादिस्तस्य भावो भावना, तेनानुकृते; यद्वा, तस्मिन् हरौ भावः प्रेमा येषां जानानां तेषां भावो वाह्यान्तरचेष्टा, तस्य अनुकृतमनुकारो ययोस्तथाभूते आशयाकृती मनःशरीरे यस्य । निर्दग्धं बीजमज्ञानमनुशयो वासना च यस्य सः, सम्यगेति, प्राप्नोति, नित्यसङ्गी भवतीत्यर्थः । इति वाह्यान्तरविक्रियारूपलक्षणं माहात्म्यं चोक्तम्; एवमग्रेऽप्यूह्यम् ॥६३९॥

तदर्थकानि तानि जन्मानि कर्म्माणि च अर्थो येषां नाम्नाम्; अनेन च नामगानेनैव जन्मकर्म्मगानसिद्धेर्नामगानस्य प्राधान्यमभिप्रेतम्; यद्वा, तदर्थकानि रथाङ्गपाण्यर्थमेव, तत्प्राप्तये इत्यर्थः । एतान्यपि साकल्येन ज्ञातुमशक्यानीत्याशङ्क्याह—यानि लोके गीतानि प्रसिद्धानि; यद्वा, लौकिकगाथाः; यद्यपि तासां जन्माद्यन्तर्गतत्वेन पृथगुक्तिर्न घटते, तथापि शास्त्रोक्त-व्यतिरिक्तलोकप्रसिद्धकर्म्माद्यपेक्षया राग-तालादिरसाद्यपेक्षया वा ज्ञेयाः । तानि शृण्वन् गायंश्च विचरेत् । असङ्गो निस्पृहस्त्यक्तपरिग्रहो वा इति साधनमुद्दिष्टम् ।६४०॥

एवं भजतः संप्राप्तप्रेमलक्षणभक्तियोगस्य संसारधर्म्मातीतां गतिमाह—एवमिति । एवं व्रतं वृत्तं नियमो वा यस्य सः, स्वप्रियस्य हरेर्नामकीर्त्त्या; यद्वा, स्वप्रिय यत् कृष्णनाम, तस्य कीर्त्तनेन जातोऽनुरागः प्रेमा यस्य सः । नामकीर्त्तनस्य पुनरुक्तिः प्रेमसम्पत्तौ प्रियनामकीर्त्तनस्यात्यन्तान्तरङ्गत्वविवक्षया; किंवा, प्रेमसम्पत्ते-

---

एवं नृत्य करते रहते हैं । जब भगवान् में मतिस्थिरता हेतु निर्लज्ज होकर ग्रह ग्रस्त के समान कभी हास्य, रोदन, ध्यान एवं वन्दना करते हैं, कभी मुहुर्मुहुः दीर्घ निःश्वास के सहित 'हे हरे ! हे जगत्पते ! हे नारायण! यह सब नामोच्चारण करते हैं, जब अखिल बन्धन से मुक्त होकर भगवद्भाव से उनके अन्तःकरण एवं बाह्यदेह प्रभावित होते हैं, उस समय अतिशय भक्तिवशतः उनके वासनाविशेष के सहित अज्ञानभाव दग्ध होकर भक्तिपथ में गमन पूर्वक भगवान् को प्राप्त करते हैं । अभिप्राय यह है कि—उच्चश्रेणी के सत्य भक्त के अतिरिक्त नट, एवं भुक्तिमुक्ति वासना विशिष्ट दूसरे को उक्त यथार्थभाव उपलब्ध होने की सम्भावना नहीं है । जो यथार्थ भक्त हैं, और जिनका हृदय अटूट विश्वास से जकड़ा हुआ है, वे विधिनिषेध के बाध्य नहीं होते हैं, स्वतः ही श्रीकृष्ण रुचिकर कार्य्य अर्थात् शास्त्रोक्ति का पालन करते हैं । अतएव वे तद्गत भाव से श्रीहरि की शरणागत होते हैं । वास्तविक रूप से उन सर्वशरण्य भगवान् की शरण ग्रहण करने पर काम्य कर्म त्याग करने से विधि अनादर जनित प्रत्यवाय का भय नहीं रहता है ॥६३७-६३९॥

एकादशस्कन्ध के श्रीकवियोगेश्वर के उत्तर में वर्णित है—चक्रपाणि श्रीकृष्ण के त्रिलोक कीर्त्तित सुमङ्गल जन्म, कर्म एवं तद्विषयक नामसमूह श्रवण पूर्वक उनको प्राप्त करने की कामना से, उक्त विषयों का गान विलज्जभाव से करते करते सङ्गहीन होकर भक्त विचरण करें ॥६४०॥

इस प्रकार व्रतशील होकर निज प्रिय नाम कीर्त्तन करते करते अनुरक्त एवं विगलित चित्त मानव, लोक के हास्य प्रशंसादि के प्रति अवधान रहित होकर उन्माद तुल्य उच्च हास्य, क्रन्दन, चीत्कार, गीत एवं नृत्य परायण होते हैं ॥६४१॥

तत्रैव श्रीप्रबुद्धयोगेश्वरोत्तरे (श्रीभा ११।३।३१-३२)—

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।
भक्त्या सञ्जातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ।६४२॥

क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि,-द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं, भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥६४३॥

श्रीभगवदुद्धव-संवादे च (श्रीभा ११।१४।२३-२४)—

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाशयः ।६४४

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं, रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च, मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥६४५॥

लक्षणविशेषविज्ञापनाय तेन तस्य फले पर्य्यवसानार्थम् । ततश्च कीर्त्या विशिष्ट इत्यर्थः । अतएव द्रुतचित्तः श्लथहृदयः, कदाचिद्भगवन्तं भक्तपराजितमाकलय्य बाल्यादि-विनोदानुसन्धाय वा उच्चैर्हसति; एतावन्तं कालमुपेक्षितोऽस्मीति, यद्वा, प्रेमभावस्वाभाविक-विरहिभावेन रोदिति, अत्यौत्सुक्यात् तेनैव वा रौति आक्रोशति, अतिहर्षेण आर्त्तिविशेषेण वा गायति, सुस्वरेण करुणस्वरेण वा गुणादिकं कीर्त्तयति । जितं जितमिति नृत्यति; यद्वा, साक्षाद्भूतमिव दृष्ट्वा नृत्यति । किं दाम्भिकवत् परान् प्रति प्रकाशयितुम् ? न, उन्मादवत् ग्रहगृहीतवत्, लोकवाह्यः विवशः । यद्वा, उन्मादवदित्यनेन हासादेरनियतत्वं, लोकवाह्य इत्यनेन चालौकिकत्वं दर्शितम् ॥६४१॥

अघौघहरं—संसारदुःखपरम्पराविनाशकम् । भक्त्या साधन-भक्त्या, सञ्जातया प्रेमलक्षणया भक्त्या ॥ अजं हरिमनुशीलयन्ति, तल्लीला अभिनयन्ति । एवं परं परमेश्वरमेत्य प्राप्य निर्वृताः सन्तस्तूष्णीं भवन्ति । यद्वा, परमेश्वरार्थमत्यनिर्वृताः परमार्त्ताः सन्तः तूष्णीं भवन्ति, निश्चेष्टाः स्युरित्यर्थः ॥६४२-६४३॥

रोमहर्षादिकं विना कथं भक्तिः प्रेमलक्षणा गम्यते ? भक्त्या च विना कथमाशयः शुध्येत् ? भक्त्येकपरः सदा सर्व्वत्र साक्षादिव श्रीकृष्णपरिस्फूर्त्तिमयो वा स्यादित्यर्थः ॥६४४॥

किञ्च, भक्तिः स्वाश्रयं शोधयतीति किं वक्तव्यं, यतो गद्गदवागादिलक्षणमत्प्रेमभक्तियुक्तो लोकं सर्व्वं पुनातीत्याह—वागिति । गद्गदा गद्गदस्वरयुक्ता, अभीक्ष्णं रुदतीति प्रेमपरिपाकस्वभावेन निरन्तरविरहाद्युत्पत्तेः; क्वचित् कदाचित्, अस्य परेणात्यन्वयः । पुनाति संसारमलात् अद्वैतदुर्व्वासनमलाद्वा शोधयति, भगवद्भक्ति-प्रवर्त्तनात्, 'भगवन्मयता सम्पादनाद्वा, इति लक्षणं माहात्म्यं चोक्तम् ॥५४५॥

उक्त ग्रन्थ के श्रीप्रबुद्धयोगेश्वर के उत्तर में लिखित है—भक्तवृन्द,-साधनभक्ति जात प्रेमभक्ति से सर्व पातकहर श्रीहरि का स्मरण परस्पर करते करते एवं अपर को स्मरण कराकर रोमाञ्चित गात्र होते हैं। एकनिष्ठ भक्तवृन्द,-श्रीहरि-चिन्तारत होकर क्रन्दन, हास्य, आनन्द, कभी तत्सम्बन्ध में अलौकिक वाक्य कहते कहते तल्लीला अभिनय पूर्वक नृत्य करते रहते हैं। इस रीति से परमेश्वर को प्राप्तकर, परम सुख भोगकर तूष्णीम्भाव से अवस्थान करते हैं ।६४२-६४३॥

श्रीभगवदुद्धव-संवाद में लिखित है—रोमाञ्च व्यतीत चित्त का आर्द्रीभाव, आनन्दाश्रु व्यतीत भक्ति का आविर्भाव, एवं भक्ति व्यतीत चित्तशुद्धि का आविर्भाव होना कैसे सम्भव हो? मेरे नामादि श्रवण से जिसका वाक्य गद्गद एवं चित्त में द्रवीभाव होता है। निरन्तर जो विरह कातर होकर रोदन करता है, कभी हँसता है, कभी लज्जाहीन भाव से गान करता है, कभी नर्त्तन करता है, उस प्रकार भक्ति परायण व्यक्ति के द्वारा भुवन पवित्र होता है ॥६४४-६४५॥

यथोक्तभक्त्यशक्तौ तु भगवच्चरणाम्बुजम् । शरणागतभावेन कृत्स्नभीतिघ्नमाश्रयेत् ।।६४६।।

अथ शरणापत्तिः

श्रीभगवद्गीतासु (१८।६६)—

सर्व्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्व्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।६४७।।

एकादशस्कन्धे च श्रीभगवदुद्धव-संवादे (१२।१४-१५)—

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् । प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ।।६४८
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्व्वदेहिनाम् । याहि सर्व्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ।।६४९

एवं साधन-साध्यरूपां भक्तिं लिखित्वाधुना श्रवणाद्यसमर्थस्य शरणागतत्वमात्रेणापि कृतार्थता स्यादिति शरणापत्तिं लिखति—यथोक्तेति । यद्यपि सख्यात्मनिवेदनयोर्भक्तिप्रकारयोरन्तरेव शरणागतत्वं पर्य्यवस्यति, तथापि तयोर्मनोवृत्तिविशेषोऽपेक्ष्यते । शरणागतत्वे च केवलं 'भगवदीयोऽहम्' इत्येतावन्मात्रमिति, अतः पृथगस्य लिखनं, तच्चाग्रे व्यक्तं भावि ।।६४६।।

सर्व्वान्ते सर्व्वतः परमगुह्यतममुपदिशति—सर्व्वेति । मद्भक्त्यैव, मत्प्रपत्त्यैव वा सर्व्वं भविष्यतीति—दृढ़विश्वासेन विधिकैङ्कर्य्यं हित्वा मदेकशरणो भव, एवं वर्त्तमानं कर्म्मत्यागनिमित्तं पापं स्यादिति मा शुचः, शोकं मा कार्षीः । यद्वा, शरणागतत्वमात्रेण परमफलविशेषरूपा भक्तिर्मे न सिद्धेति मा शुचः; शरणागतत्वस्यैव परमविश्वासात्मक-भक्तिविशेषरूपत्वादिति दिक् । इदञ्चान्यलोकशिक्षार्थमेवार्ज्जुनमधिकृत्योक्तं, न तु तं प्रति तथोपदेशः, तस्य नरावतारत्वेन परमसख्यादिना च स्वत एव परमभागवतत्वात् ।।६४७।।

यस्मादेवम्भूतो मदीयजनप्रभावस्तस्मात्, चोदनां श्रुतिं, प्रतिचोदनां स्मृतिञ्च; यद्वा, विधिं निषेधं चोत्सृज्य सर्व्वमेव परित्यज्येत्यर्थः । मामेवैकं शरणं याहि, मयैवाकुतोभयः स्या भव । सर्व्वदेहिनामात्मानमन्तर्यामित्वेन हृदि निवसन्तमित्यर्थः । अनेन त्वदीयक्षेत्रविशेषाश्रयणनियमो निरस्तः । सर्व्वणात्मनो भावेन भावनया इति तदेकनिष्ठतोक्त्यान्याखिलपरित्यागेन सुकरत्वमपि दर्शितमिति दिक् । केचिच्च भगवतः सर्व्वान्तर्यामित्वदृष्ट्या सर्व्वेषु जीवेषु योऽपृथग्भावो भगवद्दृष्टिर्वा, तदेव शरणागतत्वं मन्यन्ते । तच्च ज्ञानभक्त्यन्तर्गतमेवेति ज्ञानभक्तिलक्षणे 'सर्व्वभूतेषु यः पश्येत्' (श्रीभा ११।२।४५) इत्यत्र विवृतमेवास्ति; एवं साक्षात्-श्रीभगवद्वाक्येन शरणागतत्वस्य विधेयत्वं लिखितम् ।।६४८-६४९।।

जो इस प्रकार शास्त्रविहित भक्ति के अनुष्ठान करने में असमर्थ हैं, उनके पक्ष में सर्व भयनाशन श्रीहरि के पादपद्माश्रय करना एकान्त कर्त्तव्य है ।।६०६।।

अथ शरणापत्तिः

श्रीमद्भगवद्गीता में उक्त है—हे अर्जुन ! तुम सब धम परित्यागकर मेरी शरण ग्रहण करो, मैं तुमको सर्वविध पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो । ६४७।।

एकादशस्कन्ध के श्रीभगवदुद्धव-संवाद में वर्णित है—अतएव हे उद्धव ! तुम श्रुति एवं स्मृति विहित समस्त कार्य्य, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, श्रोतव्य एवं श्रुत विषयक, यह सब छोड़कर सब प्राणियों के अन्तरस्थित परमात्मस्वरूप मेरी सर्व प्रयत्न से शरण ग्रहण करो । कारण, वैसा करने पर तुमको भीत होना नहीं पड़ेगा अर्थात् अकुतोभय हो जाओगे ।।६४८-६४९।।

तन्नित्यता च

ब्रह्मवैवर्त्ते—

प्राप्यापि दुर्लभतरं मानुषं विबुधेप्सितम् । यैवाश्रितो न गोविन्दस्तैरात्मा वञ्चितश्चिरम् ॥६५०

अशीतिञ्चतुरश्चैव लक्षांस्तान् जीवजातिषु ।

भ्राम्यद्भिः पुरुषैः प्राप्य मानुष्यं जन्मपर्य्ययात् ॥६५१॥

तदप्यफलतां यातं तेषामात्माभिमानिनाम् । वराकाणामनाश्रित्य गोविन्दचरणद्वयम् ॥६५२॥

अथ शरणापत्ति-माहात्म्यम्

उक्तञ्च रामायणे श्रीरघुनाथेन विभीषणगमनप्रसङ्गे—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते । अभयं सर्व्वदा तस्मै ददाम्येतद्व्रतं मम ॥६५३॥

नारसिंहे वैकुण्ठनाथेन)—

त्वां प्रपन्नोऽस्मि शरणं देवदेवं जनार्द्दनम् । इति यः शरणं प्राप्तस्तं क्लेशादुद्धराम्यहम् ॥६५४॥

नामापराधप्रसङ्गे पाद्मे श्रीनारदं प्रति श्रीसनत्कुमारेण—

सर्व्वाचारविवर्जिताः शठधियो व्रात्या जगद्वञ्चका,

दम्भाहङ्कृतिपानपैशुनपराः पापान्त्यजा निष्ठुराः ।

तच्चावश्यमेव कार्य्यम्, अन्यथा परमदोषापत्तेरिति तस्य नित्यतां लिखति—प्राप्येति त्रिभिः। आत्मैव चिरं वञ्चितः, विविधदुःखसागरे सदा निपातित इत्यर्थः। लक्षानित्यादि पुंस्त्वादिकमार्षम्। चतुरशीतिलक्षसंख्यकास्वित्यर्थः। जन्मपर्य्ययात् तत्र तत्र पर्य्यायेण जन्म प्राप्तेरनन्तरं प्राप्यं भवति। आत्माभिमानिनां देहाभिमानवतां, वराकाणां तुच्छबुद्धीनां शरणागतत्वेनाप्यप्रपन्नानामसतामित्यर्थः। एवं भक्तचशक्तेनावश्यं शरणागतेनापि भाव्यम्; अन्यथा मनुष्यजन्मवैफल्येन तदशेषकर्म्मवैफल्यापत्तेः,इति नित्यत्वं सिद्धम् ॥६५०-५२

अप्यर्थे एव-शब्दः; यः प्रपन्नः शरणागतः सन् तवास्मि भवामीति सकृदपि याचते; यद्वा, कथं प्रपन्नस्तदाह—तवेत्यादिना। एवं शरणागतत्वलक्षणं चेदं ज्ञेयम्; एवमग्रेऽप्यूह्यम् ॥६५३॥

तन्नित्यता च

ब्रह्मवैवर्त्त में लिखित है—जो देव वाञ्छित अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य देह धारणकर श्रीगोविन्द के चरणों की शरणागत नहीं होते हैं, वे सतत आत्मा को वञ्चित करते हैं, अर्थात् वे अत्यन्त दुःख दुर्दशा भोगते हैं, मनुष्य चौरासी लक्ष योनि में क्रमशः जन्म लेकर अन्त में मनुष्य देह प्राप्त करते हैं, इस प्रकार मनुष्य देह धारण पूर्वक श्रीगोविन्द के चरणों का आश्रय ग्रहण नहीं करते हैं तो, जानना चाहिये कि इस आत्माभिमानी क्षुद्र पुरुष का मनुष्य देह धारण अत्यन्त निष्फल है ॥६५०-६५२॥

अथ शरणपत्ति-माहात्म्यम्

रामायण में विभीषण के गमन प्रसङ्ग में श्रीरामचन्द्र की उक्ति है—जो व्यक्ति "मैं शरणापन्न हूँ" यह कहकर एक वार भी प्रार्थना करता है, मैं सदा उसको अभय प्रदान करता हूँ। कारण, शरणागत का पालन करना ही मेरा व्रत है ॥६५३॥

नृसिंहपुराण में वैकुण्ठनाथ का कथन है—'हे देवदेव ! हे जनार्दन ! मैं तुम्हारी शरणागत हुआ,' यह कहकर जो मानव शरण ग्रहण करता है, मैं उसको क्लेश से उद्धार करता हूँ ॥६५४॥

ये चान्ये धनदारपुत्त्रनिरताः सर्व्वाधमास्तेऽपि हि,
श्रीगोविन्द-पदारविन्द-शरणा मुक्ता भवन्ति द्विज ।।६५५।।

ब्रह्मवैवर्त्ते—
न हि नारायणं नाम नराः संश्रित्य शौनक । प्राप्नुवन्त्यशुभं सत्यमिदमुक्तं पुनः पुनः ।।६५६।।

बृहन्नारदीये कलिप्रसङ्गे—
परमार्थमशेषस्य जगतामादिकारणम् । शरण्यं शरणं यातो गोविन्दं नावसीदति ।।६५७।।

शान्तिपर्व्वणि राजधर्म्मे भीष्मयुधिष्ठिर-संवादे—
स्थितः प्रियहिते नित्यं य एव पुरुषर्षभः । राजंस्तव यदुश्रेष्ठो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः ।।६५८।।
य एनं संश्रयन्तीह भक्त्या नारायणं हरिम् ।
ते तरन्तीह दुर्गाणि न मेऽत्रास्ति विचारणा ।।६५९।।

व्रात्याः संस्कारहीना द्विजाधमाः । पानमपेयस्य, पापा अधार्म्मिकाः शूद्राः अन्त्यजाश्च ये; यद्वा, अन्त्यजेष्वपि पापा ये इत्यर्थः । सर्व्वेभ्यः सर्व्वथा वाऽधमाः ।।६५५।।

हि-शब्दोऽवधारणे, अशुभममङ्गलमनिष्टं वा, किञ्चिन्नैव प्राप्नुवन्ति, किन्तु सर्व्वश्रेय एव लभन्त इत्यर्थः । नाम प्राकाश्ये, यद्वा, नारायणमिति नामाश्रित्य, ततश्च नाममाहात्म्ये श्लोकोऽयं द्रष्टव्यः । यद्वा, नामाश्रयणमपि भगवदाश्रयणमेवेति तयोरभेदाभिप्रायेण ।।६५६।।

परमार्थं परमफलरूपं परमतत्त्वं वा नावसीदति, किञ्चिद्दुःखं नाप्नोति ।।६५७।।

तव प्रिये हिते च नित्यं स्थितः अवस्थितः, पुरुषेषु ब्रह्मादिषु त्रिषु मध्ये तेभ्यो वा ऋषभः श्रेष्ठः, अवतारित्वात् । अतो वैकुण्ठः अकुण्ठप्रभावः । किञ्च, पुरुषोत्तमः 'यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः' (श्रीगी १५।१८) इत्याद्युक्तलक्षणः । अतएव नारायणं सर्व्वजीवैकाश्रयं हरिञ्च आश्रयणमात्रेण सर्व्वदोषदुःख-हरं मनोहरञ्च; दुर्गाणि दुस्तरसंसारदुःखानि ।।६५८-६५९।।

नामापराध प्रसङ्ग में पद्मपुराण में श्रीनारद के प्रति श्रीसनत्कुमार की उक्ति है—हे द्विज ! जो व्यक्ति सर्वविध आचार रहित, शठबुद्धि, संस्कारहीन एवं विश्व वञ्चक है, जो दम्भपरायण, अपेय पान एवं खलता में रत हैं, जो लोक, घोर पापासक्त, अन्त्यज एवं निष्ठुर है, एवं जो वित्त, कलत्र एवं पुत्र में अनुरक्त हैं, वे सब अधम जनगण यदि श्रीगोविन्द के चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं, तो वे सब मुक्त होजाते हैं ।।६५५।।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखित है—हे शौनक ! मनुष्यगण 'नारायण' नाम का आश्रय ग्रहण करने पर अशुभ प्राप्त नहीं होते हैं, मैं वारंवार सत्यकर यह बात कह रहा हूँ ।।६५६।।

बृहन्नारदीय पुराण के कलि प्रसङ्ग में उक्त है—अखिल जगत् के परमतत्त्व स्वरूप, आदिकारण, रक्षा-कर्त्ता गोविन्द की शरणागत होने पर, फिर किसी को दुःख पाना नहीं पड़ता है ।।६५७।।

महाभारत के शान्तिपर्व में राजधर्म में भीष्म एवं युधिष्ठिर के कथोपकथन में प्रकाशित है—हे राजन् ! जो पुरुषोत्तम यदुश्रेष्ठ अकुण्ठ प्रभाव श्रीकृष्ण, तुम्हारे हित एवं प्रिय कार्य्य में सतत् चेष्ट हैं, उन नारायण श्रीहरि का भक्तिपूर्वक समाश्रय ग्रहण करते हैं, वे जो दुस्तर संसार समुद्र पार हो जाते हैं इस विषय में विचार करने का प्रयोजन नहीं है ।।६५८-६५९।।

तृतीयस्कन्धे विदुरमैत्रेय-संवादे (२२।३७)—

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥६६०॥

वामने श्रीप्रह्लादबलि-संवादे—

ये संश्रिता हरिमनन्तमनादिमध्यं, नारायणं सुरगुरुं शुभदं वरेण्यम् ।
शुद्धं खगेन्द्रगमनं कमलालयेशं, ते धर्म्मराजकरणं न विशन्ति धीराः ॥६६१॥

ये शङ्खचक्राब्जकरं सशार्ङ्गिणं, खगेन्द्रकेतुं वरदं श्रियः पतिम् ।
समाश्रयन्ते भवभीतिनाशं, तेषां भयं नास्ति विमुक्तिभाजाम् ॥६६२॥

बृहन्नारदीये प्रायश्चित्तप्रकरणान्ते—

संसारेऽस्मिन् महाघोरे मोहनिद्रासमाकुले । ये हरिं शरणं यान्ति ते कृतार्था न संशयः ॥६६३

ब्रह्मपुराणे—

कर्म्मणा मनसा वाचा येऽच्युतं शरणं गताः । न समर्थो यमस्तेषां ते मुक्तिफलभागिनः ॥६६४

दिव्या आन्तरीक्षाः, मानुषाः शत्रुप्रभवाः, भौतिकाः शीतोष्णादि-प्रभवाः, यद्वा, शारीरा मानसाश्चेत्याध्यात्मिकाः, दिव्या आधिदैविकाः, मानुषा अन्यभौतिकाश्चेत्याधिभौतिकाः, इति त्रिविधा अपि तापाः। वैयासे हे विदुर ॥६६०॥

संश्रिताः शरणं याताः; धर्म्मराजस्य करणं कायस्थं तल्लिखनाधिकारमित्यर्थः । सर्व्वपापक्षयात् तद्धेतुत्वेनानन्तादिविशेषणैर्माहात्म्यमुक्तम् । एषां यथासम्भवं हेतुहेतुमत्तोह्या, एवमग्रेऽपि ॥६६१॥

न केवलमेवं नरकभयं क्षीणं, किन्तु संसारभयञ्च विनष्टं, परमपदप्राप्तिरपि जातेत्याह—ये शङ्खेति। सम्यगाश्रयन्ते शरणं यान्ति; विशिष्टा मुक्तिर्वैकुण्ठवासस्तद्भाजामिति मुख्यं फलम् ॥६६२॥

कृतार्थाः—सिद्धसर्व्वार्थाः ॥६६३॥

तेषां न समर्थः, जातेऽपि पापे किञ्चित् कर्त्तुं न शक्नुयादित्यर्थः । यतो मुक्तेः फलं भक्तिः श्रीवैकुण्ठ-लोकप्राप्तिर्वा, तद्भागिनः ॥६६४॥

तृतीयस्कन्ध में विदुर-मैत्रेय-संवाद में लिखित है— हे विदुर ! शारीरिक, मानसिक, दैव, शत्रुप्रभव एवं भौतिक क्लेशसमूह हरिसंश्रय व्यक्ति को बाधा प्रदान करने में क्या सक्षम हैं ? अर्थात् बाधा प्रदान में अक्षम हैं ॥६६०॥

वामनपुराण के श्रीप्रह्लाद-बलि-संवाद में लिखित है—जो आदि, मध्य, अन्तरहित, देवगुरु, शुभदाता, शुद्ध, वरेण्य, गरुड़ वाहन, कमलापति श्रीनारायण की शरणापन्न होते हैं, उनको धर्मराज के करण की लिपि के अधीन नहीं होना पड़ता । अर्थात् उन पर यमराज, निज प्रभाव प्रकाश करने में असमर्थ होते हैं॥

जो मानव, शङ्ख चक्र पद्मकर, शार्ङ्गपाणि, गरुड़वाहन, वरदाता, लक्ष्मीकान्त, भवभयभञ्जन नारायण का आश्रय ग्रहण करते हैं, उनके भय की बात तो अलग रही, मुक्ति, उनके करतल गत हो जाती है ॥६६१-६६२॥

बृहन्नारदीय पुराण के प्रायश्चित्त प्रकरण के शेष भाग में लिखित है—इस मोहनिद्रा समाकुल महाघोर संसार में जो लोक श्रीहरि की शरणागत होते हैं, वे सब कृतार्थ होते हैं । इसमें सन्देह नहीं है ॥६६३॥

ब्रह्मपुराण में वर्णित है—जो वाक्य, मन, एवं कर्म संयोग से अच्युत की शरणागत होते हैं, कृतान्त उनके प्रति प्रकोप प्रकाश करने में सक्षम नहीं हैं, कारण, वे सब मुक्ति का फल भक्ति, अथवा वैकुण्ठ लाभ करते हैं ॥६६४॥

दशमस्कन्धे (१४।५८)—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं, महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं, पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ।।६६५।।

प्रथमे (१।१५)—

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः । सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ।।६६६।।

द्वितीये श्रीशुकोक्तौ (४।१८)—

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द-पुक्कसा, आभीरशुह्मा यवनाः खशादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः, शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।।६६७।।

एवं श्रीकृष्णस्यैव परमार्थत्वात् परममाहात्म्याच्च तदेकशरणानामयत्नसिद्धमेव परमपदमिति प्रकरणार्थ-मुपसंहरन्नाह— समाश्रिता इति । पुण्यं यशो यस्य स पुण्ययशाः, स चासौ मुरारिश्च, तस्य पदपल्लव एव प्लवः, तं सम्यगाश्रिताः । महत्पदं महतां पदमाश्रयम्; यद्वा, महच्च सर्व्वोत्कृष्टञ्च तत्पदञ्चेति तथा, तेषां भवाम्बुधिर्वत्सपदमात्रं भवति, अनायासेन मोक्षः स्यादित्यर्थः । तस्यानुषङ्गिकत्वेन स्वतः सिद्धेः । किञ्च, परं पदं श्रीवैकुण्ठाख्यं पदं स्थानं भवति, विपदां यत् पदं विषयस्तत् पुनः कदाचिदपि तेषां न भवति, न ततः पुनरावर्त्तन्त इत्यर्थः ।।६६५।।

एवं श्रीभगवच्छरणापन्नानां क्रमेण भवदुःखाद्यभावं परमपदप्राप्तिञ्च लिखित्वाधुना तेऽन्यानपि निस्तार-यन्तीति लिखति—यत्पादेति । हे सूत ! यस्य भगवतः पादावेव संश्रयो येषां ते शरणागता इत्यर्थः, अतएव प्रशमः प्रकृष्टशान्तिरूपमयनं वर्त्म शरणापत्तिलक्षणं येषाम् । यद्वा, प्रशमोऽयनं शरणापत्तिसाधनं येषाम्; यद्वा, प्रकृष्टः शमः सुखं यस्मात् स प्रशमः प्रेमा, तमयन्ते प्राप्नुवन्तीति तथाभूता मुनयः उपस्पृष्टाः सन्निधिमात्रेण सेविताः सन्तः पुनन्ति । यद्वा, मुनयः पूर्व्वमात्मारामा अपि मुनित्वं विहाय यत्पादसंश्रयाः सन्त एव । अन्यत् समानम् । स्वर्धुनी गङ्गा, तस्या आपस्तु तत्पादनिःसृता एव, न तु तत्रैव तिष्ठन्ति, विशेषतश्च विषमपथ-वर्त्तिन्यः सागरगामिन्य एव वा । अतस्तत्पादसम्बन्धेन पुनन्त्योऽपि अनुसेवयैव पुनन्ति, तदपि न सद्य इति शरणागतानामुत्कर्षः ।।६६६।।

किञ्च, किरातेति ; किरातादयो ये पापजातयः, अन्ये च ये कर्म्मतः पापरूपा यदुपाश्रयाः शरणागतास्तदाश्रयाः सन्तः शुध्यन्ति, असम्भावनाशङ्कां परिहरति; प्रभविष्णवे—प्रभवणशीलायेति ।।६६७।।

दशमस्कन्ध में वर्णित है—जिन्होंने मुरारि के महत् पदपल्लव रूप प्लव (नौका) का सम्यक् आश्रय किया है, उनके पक्ष में संसार-सागर वत्सपद सदृश होता है, अर्थात् अति नगण्य होता है। वे परमपदस्थ वैकुण्ठ के अधिकारी होते हैं, एवं उन सबको विपदापन्न नहीं होना पड़ता है। अर्थात् वे सब वैकुण्ठलोक से च्युत न होकर अच्युत के सन्निधान में सुखपूर्वक वास करते हैं ।।६६५।।

प्रथमस्कन्ध में श्रीसूत ने कहा है—जिनके चरणकमलों का आश्रय करके शान्तिरूपास्पद ऋषिगण, सान्निध्यमात्र से लोक को सद्य पवित्र करते हैं, उक्त ऋषिगण के समान जगत् पवित्र कर्म्मरत शक्ति गङ्गा की कहाँ है ? यद्यपि, गङ्गा, श्रीहरिपद विनिःसृता है, किन्तु उसमें अवगाहन करने पर मानव पवित्र होते हैं ।।६६६।।

द्वितीयस्कन्ध में श्रीशुकदेव ने कहा है—किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश, आभीर, शुह्म, यवन एवं खश प्रभृति,—जो सब कर्म्मनिबन्धन पापी हैं, वे सब भी भगवत् शरणागत को आश्रयकर शुद्ध होते हैं, उन प्रभावान्वित विष्णु को नमस्कार करता हूँ ।।६६७।।

तृतीये मैत्रेयोक्तौ (२३।४२)—

किं दुरापादनन्तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् । यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ।।६६८।।

दशमे नागपत्नीस्तुतौ (१६।३७)—

न नाकपृष्ठं न च सार्व्वभौमं, न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा, वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्ना ।।६६९।।

एकादशे च श्रीकरभाजनयोगेश्वरोत्तरे (५।४१)—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां, न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्व्वात्मना यः शरणं शरण्यं, गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्त्तम् ।।६७०।।

यतस्तेषां किञ्चिदप्यसाध्यं नास्तीति लिखति—किमिति । दुरापादनं दुष्करं किम् ? अपि तु सर्व्वमेव सुकरम् । उद्दामचेतसां धीराणाम्; उद्दामचेतस्त्वमेव दर्शयति—यैरिति । यद्वा, उद्दामचेतसां विविध-मनोरथेनासङ्कोचत इतस्ततो गच्छमानसानामपीत्यशेषमनोरथसिद्धिरभिप्रेता । तत्र हेतुमाह—यैरिति । तीर्थपदो भगवतः, एकतीर्थाश्रयणादपि सर्व्वं सुसिध्यति, किं पुनः सर्व्वतीर्थमय्या गङ्गायाः प्रभवाश्रयादि त भावः । व्यसनं संसारस्तस्यात्ययो नाशो यस्मात्; यद्वा, अकार-प्रश्लेषेण अव्यसनो मोक्षस्तस्याप्यत्ययो-ऽतिक्रमो यस्मात् सः, भक्तिरसविस्तारणात् ।।६६८।।

एवं शरणापत्तेः साधनत्वं विलिख्य साध्यत्वञ्च दर्शयन् तद्वतां परिपूर्णतां लिखति—न नाकेति । रसाधि-पत्यं पातालादि-स्वाम्यं, योगसिद्धीः त्रिकालज्ञत्वाद्याः, क्षुद्राः महतीश्चाणिमाद्याः; यद्वा, रसाधिपत्यं विचित्र-रससिद्धाद्यैश्वर्य्यं, योगसिद्धीरणिमाद्या एवेति यथोत्तरमेषां श्रैष्ठ्यम्; तत्र नाकपृष्ठतः सार्व्वभौमस्य श्रैष्ठ्यं, भूमौ कर्म्मक्षेत्रे वैराग्यादिविशेषसम्भवेन ज्ञान-भक्त्यादि-सुसिद्धेः,कदाचित् ककुत्स्थादिचक्रवर्त्ति साहाय्येनेन्द्रस्य स्वाराज्यप्राप्तेश्च । अन्यत् स्पष्टमेव । पादरजः प्रपन्नाः, शरणागतत्वेन कञ्चिदेकं सम्बन्धमाश्रिता इत्यर्थः ।। ।।६६९।।

एवं विधिनिषेधनिवृत्तेः कृतकृत्यतां लिखति—देवर्षीति । आप्ता पोष्याः कुटुम्बानि, देवादयः पञ्चयज्ञ-देवताः, एतेषां यथाभक्त ऋणी, अतएव तेषां किङ्करः, तदर्थं नित्यं पञ्चयज्ञादिकर्त्ता । तथा च स्मृतिः— 'हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्म्म कारयेत्' इति । अयन्तु न तथा; कोऽसौ ? यः सर्व्वभावेन मुकुन्दं सर्व्वतो मोक्षदं परमानन्दप्रदञ्च भगवन्तं शरणं गतः । कर्त्तं कृत्यं परिहृत्य, यद्वा, कर्त्तं 'भेदं कृती च्छेदने' इत्यस्मात्; 'वासुदेवः सर्व्वम्' (श्रीगी ७।१९) इति बुद्ध्वेत्यर्थः । यद्वा, अद्वैतनिष्ठोऽपि भूत्वेत्यर्थः ।।६७०।।

तृतीयस्कन्ध में श्रीमैत्रेय की उक्ति से प्रकाशित है—श्रीहरि के श्रीचरणद्वय का स्मरण करने पर जब संसार क्लेश विनष्ट होता है, तब एकनिष्ठ चित्त से श्रीहरिचरणानुरक्त व्यक्ति, उक्त चरण कमलाश्रय करके अति दुर्लभ फल लाभ करेंगे, इसमें वक्तव्य क्या है ?।।६६८।।

दशमस्कन्ध में नागपत्नी-स्तुति में लिखित है—जो मानव, आपकी पदरजः को प्राप्त हुए हैं, वे स्वर्गपृष्ठ सार्वभौमपद, पारमेष्ठ्यपद, पातालादि का आधिपत्य, योगसिद्धि एवं जन्मराहित्य,-इन सबकी कुछ भी कामना नहीं करते ।।६६९।।

एकादशस्कन्ध में श्रीकरभाजन योगेश्वर की उक्ति में प्रकाशित है—हे राजन् ! जो मानव, सांसारिक कृत्यसमूह को परित्याग कर सर्वप्रयत्न से सर्वशरण्य मुकुन्द की शरणापन्न होते हैं, वे देवता, ऋषि, भूत, आप्तवर्ग, मनुष्य, एवं पितृवर्ग के निकट कैङ्कर्य्य में अथवा ऋण में आबद्ध नहीं होते । अर्थात् एकाग्र चित्त से श्रीहरि की शरणागत होने पर पूर्वकालीन कर्त्तव्यादि के निकट भक्त दायी न होकर किङ्कर स्वरूप से केवल जगत्पति श्रीहरि का ही कार्य्य करते हैं ।।६७०।।

अतएवोक्तं श्रीभगवन्तं प्रति उद्धवेन (श्रीभा ११।१९।९)—

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे, सन्तप्यमानस्य भवाध्वनीश ।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवदङ्घ्रि,-द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥६७१॥
इत्थञ्च बोध्यं विद्वद्भिः शरणापत्तिलक्षणम् ।
वाचा हृदा च तन्वापि कृष्णैकाश्रयणं हि यत् ॥६७२॥

अथ शरणापत्तिलक्षणम्

स्कान्दे—

गोविन्दं परमानन्दं मुकुन्दं मधुसूदनम् । त्यक्त्वान्यं वै न जानामि न भजामि स्मरामि न ॥६७३
न नमामि न च स्तौमि न पश्यामि स्वचक्षुषा ।
न स्पृहामि न गायामि न वा यामि हरिं विना ॥६७४॥ इति ।
केचिदाहुश्च शरणागतत्वं षट्प्रकारकम् । प्रायः सख्यप्रकारे तत् पर्य्यवस्येद्विचारतः ॥६७५॥

तापत्रयेणाभिहतस्य, अतः सन्तप्यमानस्य, अङ्घ्रिद्वन्द्वमेवातपत्रं, तस्मात्; न केवलमातपत्रात्, किन्तु अमृतं परमानन्दरसमप्यभितो वर्षति यत्तस्मात् । एवं शरणागतानां सर्व्वदुःखहानिः, सुखप्राप्तिश्चोक्ता ॥६७१

एवं माहात्म्यलिखनद्वारा लिखितमपि शरणागतलक्षणं पृथक् स्पष्टयन् लिखति—इत्थञ्चेति । अनेन लिखितप्रकारेण 'सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते' इत्यादिना व्यासादिभिः कृष्णदेवस्याश्रयणमेव यत्, तदेव शरणागतलक्षणं बोद्धव्यम् । तत्र वाचाश्रयणं—'तवास्मि' इत्यादिवचनं, मनसाश्रयणं—'तस्यैवाहम्' इत्यादि-चिन्तनम्; कायेनाश्रयणं—तत्क्षेत्रसेवनादि; एतच्च सर्व्वमग्रे व्यक्तं भावि ॥६७२॥

अन्यं देवतान्तरं, तत्र भगवतः पृथक्त्वेनेति सत्सम्प्रदायः । गोविन्दमित्यादिविशेषणैर्माहात्म्यविशेषेण तदेकनिष्ठता युक्तेति दर्शितम्, एवं सर्व्वथा तदेकाश्रयणं शरणागतलक्षणमित्यभिव्यञ्जितं, तत्प्रकारश्च दर्शितः ॥६७३-६७४॥

तत्र मतान्तरं लिखति—केचिदिति । सख्यरूपो य एको भक्तेः प्रकारस्तस्मिन्, तत् षट्प्रकारक-शरणागतत्वं विचारतः पर्य्यवस्येत्; तच्चाग्रेऽभिव्यञ्जयितव्यम् ॥६७५॥

अतएव श्रीभगवान् के प्रति श्रीउद्धव ने कहा है—हे ईश ! मैं घोर संसार सरणि के ताप भय से संतप्त होकर आपके सुधावर्षी चरणकमलद्वय स्वरूप आतपत्र व्यतीत दूसरी आश्रय सामग्री नहीं देखता ॥६७१॥

इस प्रकार, वाक्य, हृदय एवं देह द्वारा श्रीकृष्ण का जो एकमात्र आश्रय ग्रहण है, विज्ञव्यक्तिवृन्द उसको शरणागत का लक्षण कहते हैं ॥६७२॥

अथ शरणापत्तिलक्षणम्

स्कन्दपुराण में लिखित है—मैं, गोविन्द परमानन्द, मुकुन्द, मधुसूदन को छोड़कर अन्य किसी को भी नहीं जानता, भजन नहीं करता हूँ अथवा स्मरण भी नहीं करता हूँ। मैं श्रीहरि को छोड़कर अपर किसी को नमस्कार नहीं करता हूँ, स्तव नहीं करता हूँ, अथवा नेत्रों से देखता भी नहीं । मैं उनको छोड़कर अन्य किसी की स्पृहा नहीं करता हूँ, उनका प्रसङ्ग को छोड़कर और कोई गान भी नहीं गाता हूँ। एवं अपर किसी के निकट नहीं जाता हूँ ॥६७३-६७४॥

कतिपय व्यक्ति के मत में शरणागति का लक्षण षड्विध हैं। किन्तु विचार करने पर वह सख्यरूप भक्ति का जो एक रूप है, उसमें पर्य्यवसित होता है ॥६७५॥

तच्चोक्तं श्रीवैष्णवतन्त्रे—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्ज्जनम् । रक्षिष्यतीति-विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः ॥६७६॥इति ।

तवास्मीति वदन वाचा तथैव मनसा विदन् । तत्स्थानमाश्रितस्तन्वा मोदते शरणागतः ॥६७७

अतएवोक्तं दशमे श्रीभगवन्तं प्रति अक्रूरेण (४८।२६)—

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीया,-द्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्व्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा,-नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥६७८॥

आनुकूल्यस्य भगवद्भजनानुकूलतायाः सङ्कल्पः कर्त्तव्यत्वेन नियमः, प्रातिकूल्यस्य तद्वैपरीत्यस्य वर्ज्जनं, गोप्तृत्वेन पतित्वेन वरणं स्वीकरणं प्रार्थनं वा, आत्मनो निःक्षेपः समर्पणं, कार्पण्यञ्च 'भगवन् रक्ष रक्ष' इत्यादिप्रकारेणार्त्तत्वम् । ततश्च विश्वासरूपे प्रीतिरूपे च सख्ये रक्षिष्यतीति विश्वासः, तत एव गोप्तृत्ववरणं चेति द्वयं, तथा प्रीतिस्वभावेन आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यवर्ज्जनं चेति द्वयं पर्य्यवस्यत्येव । तथा मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुमिति, 'आर्त्तानां शरणं त्वहम्' इति भगवद्वचनविश्वासेनात्मनिक्षेप-कार्पण्ये अपि तत्रैव पर्य्यवस्यतः । तत्र सूक्ष्मविचारापेक्षया ग्रःशब्दः । तेनात्मनिवेदने आत्मनिक्षेपः, कार्पण्यञ्च प्रीतिविशेषस्वाभाविकतया प्रीत्यात्मके सख्य एव द्रष्टव्यमित्येषा दिक् ॥६७६॥

एवं फलितं संक्षेपेणाभिव्यञ्जयन् शरणागतकृत्यञ्च दर्शयन् तन्माहात्म्यमेव लिखति—तवेति । तन्वा देहेन तस्य भगवतः स्थानं श्रीमथुरादिकमाश्रितः सन् मोदते, आनन्दमनुभवति, सर्व्वथा सरुयसिद्धेः ॥६७७॥

त्वत् त्वत्तोऽपरं कः समीयात् ? दीर्घत्वं परस्मैपदं वा आर्षम् । सम्यक् इयाद्गच्छेत् । तत्र हेतुत्वेन विशेषणचतुष्टयम्—भक्त एव प्रियो यस्य, ऋता सत्या गीर्वाग् यस्य, सुहृदः निरुपाधिकृपाकारिणः । कृतमात्मनो भक्तस्य च जानातीति तथा तस्मात् । अतएव भवान् भजतो जनस्य, अतएव सुहृदः सच्चित्तस्य; यद्वा, प्रियत्वेन स्वीकृतस्य जनस्य सर्व्वान् अभितः कामान् अभि अभयं यथा स्यादिति वा, आत्मानमपि ददाति । भजनेन यस्य भवतः स्वत उपचयो लाभो नास्ति, नित्यपरिपूर्णत्वात्, अभजने चापचयो नास्ति, नित्यं स्वतः परिपूर्णत्वेनानन्यापेक्षत्वात् । सोऽपि भवान् भक्तिपरवशः सन् आत्मानं ददाति । यद्वा, तेन निजोपचयापचयौ परमकारुण्यादिना मन्यमानमपि भगवन्तं प्रति निजभक्तत्वदृष्ट्या परमविनयेन श्रीमद्-अक्रूरस्य तादृश्युक्तिर्ज्ञेया । यद्वा, उपचयापचयौ नेति वृद्धि-ह्रासहीनतया परममहत्तमतायाः पराकाष्ठा दर्शिता, भक्तवश्यं करोतीत्यर्थः । अयमपि शरणगमने हेतुर्ज्ञेयः ॥६७८॥

श्रीवैष्णवतन्त्र में उक्त है—(१) आनुकूल्य का सङ्कल्प, अर्थात् भगवद्भजनानुकूल नियम ग्रहण, अर्थात् कर्त्तव्य रूप में नियम ग्रहण (२) प्रातिकूल्य का वर्जन, अर्थात् भगवद्भजन का विपरीत आचरण का परित्याग । (३) 'भगवान् अवश्य ही मेरी रक्षा करेंगे' इस प्रकार दृढ़ विश्वास । (४) भगवान् को पालनकारी रूप में स्वीकार करना । (५) आत्मसमर्पण, एवं (६) कार्पण्य-दैन्य प्रकाश-अर्थात् 'हे भगवन् ! मेरी रक्षा कीजिये, इस प्रकार कहना यह छः प्रकार शरणागत के लक्षण हैं ॥६७६॥

'हे भगवन् ! मैं आपका हुआ' इस प्रकार वाक्य को जो कहते हैं, मन मन में भी इस प्रकार जानते हैं, और शरीर के द्वारा मथुरादि स्थान का आश्रय ग्रहण कर आनन्दित होते हैं, वे ही शरणागत हैं ॥६७७॥

अतएव दशमस्कन्ध में श्रीभगवान् के प्रति अक्रूर की उक्ति है—हे प्रभो ! आप, भक्तप्रिय, सत्यवाक्, सुहृद एवं कृतज्ञ हैं, आपको छोड़कर कौन बुद्धिमान् व्यक्ति अपर की शरणागत होगा? जीव आपका भजन करने पर भी आपका लाभ, एवं भजन न करने पर आपकी क्षति नहीं है । कारण, आप नित्य पूर्ण हैं ।

तृतीये श्रीउद्धवेन (२।२३)—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं, जिघांसयापाययदप्यसाध्वी ।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं, कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ।।६७६।। इति ।

अथाचारा बहुविधाः शिष्टाचारानुसारतः । श्रीवैष्णवानां कर्त्तव्या लिख्यन्तेऽत्र समासतः ।।६८०

अथाचाराः

श्रीविष्णुपुराणे और्व्वसगर-संवादे गृहस्याचार-कथनारम्भे—

देव-गो-ब्राह्मणान् सिद्धान् वृद्धाचार्य्यांस्तथार्च्चयेत् ।

द्विकालञ्च नमेत् सन्ध्यामग्नीनुपचरेत्तथा ।।६८१।।

इदानीं परमदुष्टेष्वपि परमकृपां दर्शयन् तस्यैवैकस्य शरण्यतां निद्धारयन् निजबन्धुवर्गेण सह स्वयमपि तं शरणं गच्छन्नुपसंहरति—अहो इति आश्चर्य्यं, हन्तुमिच्छयापि स्तनयोः सम्भृतं कालकूटं महादुर्व्विषं यमपाययत्, बकी पूतना असाध्वी दुष्टापि धात्र्याः श्रीयशोदायाः श्रीयशं दाधात्रीत्वेन प्रसिद्धायाः श्रीमुखराया वा देवकीधात्र्या वा कस्याश्चित् उचितां गतिं तस्मादेव लेभे, भक्तवेशमात्रेण यः सद्गतिं ददावित्यर्थः । यद्वा, मरणसमये तस्या आर्त्तनादमाकर्ण्य गात्रास्फालनादिदुःखमवलोक्य च केवलं परदुःखासहिष्णुतया यस्तादृशीं गतिमदादित्यर्थः । तत्र च धात्रीगतिदाने स्तन्यदानं कपटेनापि मातृभावानुकरणञ्च कारणमूह्यम्, तच्च तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितामिति श्लोकोक्त्या मातृवल्लालनादिपरमरम्यचेष्टया व्यञ्जितमेवास्ति, व्याख्यातञ्च श्रीस्वामिपादैः । अहमस्य जननी इयं वेति मोहिते सत्याविति । तस्मात् श्रीकृष्णादन्यं कं दयालुं शरणं व्रजेम ? सम्भावनायां सप्तमी । वा-शब्दः कटाक्षे । अतोऽन्यं कोऽपि दयालुर्नास्ति, अतस्तमेव वयं दीनाः शरणं गच्छाम इत्यर्थः । यद्यपि शरणापत्तिलिखनं कादाचित्क-कृत्यलिखनानन्तरमेवोपपद्यते 'सकृदेव प्रपन्नो यः' इत्यादिवचनतः सकृत्प्रवृत्त्यैव शरणागतत्वसिद्धेः, तथापि शरणागतत्वस्य नित्यभगवत्स्थानाश्रयणादि-लक्षणत्वेन नित्यमानुकूल-सङ्कल्पादिलक्षणत्वेन च नित्यकृत्यान्तरेव पर्य्यवसानादत्रैव लिखितमिति दिक् ।।

समुद्रं दुस्तरं यस्य दयया सुखमुत्तरेत् । भाराक्रान्तः खरोऽप्येष तं श्रीचैतन्यमाश्रये ।।

एवं नित्यकृत्यानि क्रमेण विविच्य लिखित्वा इदानीमेकत्रैव नानाविधानि कृत्यानि वर्ज्ज्यानि च लिखितुं प्रतिजानीते—अथेति । श्रीवैष्णवानां कर्त्तव्याः कार्य्या इत्यत्र हेतुः—शिष्टानां साधूनामाचारस्यानुसारत इति । प्राक् लिखितेन सदाचारस्य नित्यत्वेनावश्यं वैष्णवैः सदाचारोऽनुसर्त्तव्य इत्यतो हेतोरित्यर्थः । अत्र ग्रन्थे समासतः संक्षेपेण, यद्यपि कर्त्तव्या इत्येनेन विधेयानामेव लिखनमायाति, न तु वर्ज्ज्यानां, तथापि वर्ज्ज्येष्वपि निवृत्तिरूपा क्रियाऽस्त्येवेति, तेऽपि कर्त्तव्येषु प्रविशन्त्येवेति । यद्वा, कृत्यलिखनेऽकृत्यलिखनमप्य-पेक्षितेति साहचर्य्याद्वर्ज्ज्या अपि लेख्याः स्युरेव । तत्र 'देवादीनर्च्चयेत्' इत्येवमादयः कर्त्तव्याः, 'परस्वं न हरेत्' इत्येवमादयो वर्ज्ज्या ऊह्याः ।।६७६-६८०।। वृद्धान् वयोजातिविद्यादिना वृहत्तरानाचार्य्यांश्च गुरून् ।।६८१।।

अतएव जो आपका भजनशील हैं, एवं आपके प्रति सद्भाव सम्पन्न हैं, उनको आप सब कुछ प्रदान करते हैं, अधिक क्या ? सब प्रकार से आप उस भक्त के बाध्य होते हैं ।।६७८।।

तृतीयस्कन्ध में श्रीउद्धव की उक्ति है- अहो ! दुष्ट स्वभावा पूतना ने कृष्ण को बध करने की वासना से स्तनकालकूट पान कराकर धात्री प्राप्य गति को प्राप्त किया । सुतरां दयालु कृष्ण को छोड़कर अन्य किसकी शरण ग्रहण करूँ ? ।।६७६।।

शिष्ट जनगण के आचारानुसार आचार में विविधता दिखाई देती है, सम्प्रति इस ग्रन्थ में संक्षेप में वैष्णवों के सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्म लिखे जाते हैं ।।६८०।।

अथाचाराः

श्रीविष्णुपुराण के और्व-सगर-संवाद में गृहस्थाचार कथन प्रसङ्ग में वर्णित है—देवता, गो, ब्राह्मण,

सदानुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च तथौषधीः। गारुडानि च रत्नानि विभृयात् प्रयतो नरः ॥६८२॥
प्रसिद्धामलकेशश्च सुगन्धिश्चारुवेशधृक्। किञ्चित् परस्वं न हरेत् नाल्पमप्यप्रियं वदेत्। ६८३
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत्। नान्याश्रयं तथा वैरं रोचयेत् पुरुषेश्वर ॥६८४॥
न दुष्टयानमारोहेत् कुलच्छायां न संश्रयेत् ॥६८५॥
विद्विष्टपतितोन्मत्त-बहुवैरातिकीटकैः। बन्धकीबन्धकीभर्त्तृक्षुद्रानृतकथैः सह ॥६८६॥
तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैः शठैः। बुधो मैत्रीं न कुर्व्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् ॥६८७॥
नावगाहेज्जलौघस्य वेगमग्रे जनेश्वर। प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः ॥६८८॥
न कुर्य्याद्दन्तसंघर्षं न कृष्णीयाच्च नासिकाम्। नासंवृतमुखो जृम्भेत् श्वासकासौ विवर्ज्जयेत्॥६८९
नोच्चैर्हसेत् सशब्दञ्च न मुञ्चेत् पवनं त्वधः।
नखान्न वादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत् ॥६९०॥
न श्मश्रु भक्षयेल्लोष्ट्रान्न गृह्णीयाद्विचक्षणः ॥६९१॥

ओषधीः—विष्णुक्रान्ता दूर्व्वाद्याः ॥६८२॥
प्रसिद्धा अलङ्कृता अमलाश्च केशा यस्य सः। प्रसिनग्धेति पाठः क्वचित् ॥६८३॥
न रोचयेत् नेच्छेत् ॥६८४॥
बहुभिर्वैरं यस्य; अतिकीटकः अत्यन्तकीटवत्पीड़कः, कण्टकैरिति पाठे स एवार्थः। बन्धकी असती ॥६८६
न कृष्णीयात् सततमलाद्यपसरणार्थं न निष्कर्षेत्। न महीं लिखेन्नखैरिति ज्ञेयं, 'न नखैर्विलिखेद् भूमिम्' इति कौर्म्मोक्तेः ॥६८९-६९०।
श्मश्रु न भक्षयेद्दन्तैर्न च्छेदयेदित्यर्थः। तथा च कौर्म्मे– 'न दन्तैर्नखलोमानि छिन्द्यात्' इति ॥६९१॥

सिद्ध, वयोजाति विद्यादि में वृद्ध, एव आचार्य्यवृन्द की पूजा और उनको त्रिसन्ध्या नमस्कार करना चाहिये, इस प्रकार दो बार सन्ध्या एवं अग्नि की उपासना करें। मनुष्य पवित्र होकर विशुद्ध वस्त्रद्वय, प्रशस्त औषधि, एवं सुवर्णादि रत्नसमूह धारण करें। सुसज्जित अमल केश, सुन्दर गन्ध द्रव्य एवं चारुवेश धारण करना चाहिये। किञ्चिन्मात्र भी परस्वापहरण एवं अल्प परिमाण में अप्रिय वाक्य कहना नहीं चाहिये ॥
हे पुरुषवर! प्रिय होने पर भी मिथ्या भाषण न करे। अपर का दोषोल्लेख न करे, दूसरे का आश्रय ग्रहण एवं दूसरे के सहित शत्रुता करने की इच्छा न करे। भग्नयान में आरोहण न करे, कुलपादपच्छाया में उपवेशन न करे। जो मानव विद्विष्ट, पतित, उन्माद, अनेक के सहित शत्रुभावापन्न, एवं कीटतुल्य अत्यन्त पीड़ाप्रद उसके सहित संस्रव न करे। असती, असती का स्वामी, क्षुद्र एवं मिथ्यावादी के सहित संस्रव करना नहीं चाहिये। अमितव्ययी, परनिन्दारत एवं शठ के सहित भी विज्ञ व्यक्ति मित्रता न करें, एवं पथ में एकाकी गमन न करें। ६८१-६८७॥
हे जनेश्वर! जल के वेग के अग्र भाग में स्नान, जलते हुए घर में प्रवेश और वृक्ष की शाखा पर आरोहण न करे। दाँत से दाँत घिसना, मलादि निष्काशन के निमित्त नासिका निष्कर्षण एवं मुखाच्छादन व्यतीत जृम्भण न करे अर्थात् जँभाई न लेवे। श्वास कास वर्जन करना चाहिये। उच्च हास्य, शब्द सहित अधोवायु वर्जन, नाखून से नाखून घिसना, दाँतों से नाखून और तृण काटना और नख से भूमि न कुरेदे ॥
॥६८८-६९०॥
दन्त के साहाय्य से श्मश्रु मूँछ काटना और लोष्ट्र ग्रहण करना बुद्धिमान् पुरुषों को उचित नहीं है।

ज्योतींष्यमेध्याशस्तानि नाभिवीक्षेत च प्रभो ।।६६२।।

न हुङ्कुर्य्याच्छवं चैव शवगन्धो हि सोमजः ।।६६३।।

चतुष्पथं चैत्यतरु-श्मशानोपवनानि च । दुष्टस्त्रीसन्निकर्षञ्च वर्ज्जयेन्निशि सर्व्वदा ।

पूज्यदेवद्विजज्योतिश्छायां नातिक्रमेद्बुधः ।।६६४।।

नैकः शून्याटवीं गच्छेन्न च शून्यं गृहं व्रजेत् ।।६६५।।

केशास्थिकण्टकामेध्यवलिभस्मतुषांस्तथा । स्नानार्द्रां धरणीं चैव दूरतः परिवर्ज्जयेत् ।।६६६

नानार्य्यानाश्रयेत् कांश्चिन्न जिह्मं रोचयेद्बुधः ।।६६७।।

उपसर्पेन्न च व्यालांश्चिरं तिष्ठेन्न चोत्थितः यथेष्टभोजकांश्चैव तथा देवपराङ्मुखान् ।

वर्णाश्रमक्रियातीतान् दूरतः परिवर्ज्जयेत् ।।६६८।।

अतीवजागरस्वप्नौ तद्वत् स्थानासने बुधः । न सेवेत तथा शय्यां व्यायामञ्च नरेश्वर ।।६६९

दंष्ट्रिणः शृङ्गिणश्चैव प्राज्ञो दूरेण वर्ज्जयेत् ।।७००।।

अवश्यायञ्च राजेन्द्र पुरो वातातपौ तथा । न स्नायान्न स्वपेन्नग्नो न चैवोपस्पृशेद्बुधः ।।७०१

मुक्तकच्छश्च नाचामेद्देवार्च्चाञ्च वर्ज्जयेत् । नैकवस्त्रं प्रवर्त्तेत द्विजवाचनके जपे ।।७०२।।

ज्योतींषि नाशुचिरभिवीक्षेत, अमेध्यानि अप्रशस्तानि चामङ्गलानि सदा नाभिवीक्षेत । अमेध्य इति पाठः कस्यचिन्मते ।।६६२।। न हुं कुर्य्यात्, शवं तद्गन्धञ्च न जुगुप्सेत इत्यर्थः ।।६६३।।

चैत्यतरुम्—बद्धवेदिकपूज्यवृक्षं, ज्योतिः—प्रदीपः ।।६६४।।

नैको गच्छेत् । जिह्मं कौटिल्यं न रोचयेत्, न ग्राहयेत् । स्थानम् ऊर्द्ध्वावस्थितिम्; तथेत्यनेन अतीवेति परामृश्यते, शय्यां नातीव सेवेत, तदुपरि चिरं निपत्य न तिष्ठेत् । अवश्यायं हिमं नोपस्पृशेत्, आचमनं न कुर्य्यात् ।।६९५-७०१।।

अपवित्र अवस्था में चन्द्र सूर्य्यादि के प्रति दृष्टि डालना, तथा अमेध्य और अमङ्गल पदार्थ के प्रति दृष्टिपात न करे। शवगन्ध, सोमज है, अतः उसको निन्दा न करे। रात्रि में सर्वथा चतुष्पथ, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन, एवं दुश्चरित्रा स्त्री को वर्जन करे। पूज्य, देव, द्विज एवं प्रदीप की छाया को अतिक्रम करना नहीं चाहिये ।।६६१-६६४।।

एकाकी निर्जन वन में गमन न करे, एवं शून्य गृह में असहाय अवस्था में प्रवेश न करे। केश, अस्थि, कण्टक, अमेध्य द्रव्य, पूजा द्रव्य, भस्म, तुष एवं स्नानार्द्र भूमि को परित्याग दूर से करना चाहिये। अशिष्ट व्यक्ति का आश्रय ग्रहण करना अथवा किसी को कुटिलता की शिक्षा देना, पण्डित व्यक्ति का कर्त्तव्य नहीं है। सर्प के आगे उपस्थित न होवे, उठकर दीर्घकाल तक अवस्थान न करे। अपरिमित भोजी, देवपूजा विमुख एवं वर्णाश्रम क्रियारहित व्यक्ति को दूर से परित्याग करे ।।६६५-६६८।।

हे नरनाथ! अतीव जागरण, अतिशय निद्रा, उच्च स्थान में अवस्थिति, उच्चासन में उपवेशन, एवं उच्च शय्या में दीर्घकाल शयन, एवं अतिशय अङ्गचालन करना विज्ञ व्यक्ति के पक्ष निषिद्ध है। शृङ्गी एवं द्रंष्ट्री पशुसमूह को दूर से वर्जन करना प्राज्ञजन का कर्त्तव्य है ।।६६९-७००।।

हे राजेन्द्र! हिम एवं पुरोवर्त्ती वायु एवं आतप (धूप) की सेवा न करे। अर्थात् हिमकण से आचमन न करे। नग्नावस्था में स्नान, शयन एवं किसी वस्तु को स्पर्श करना बुद्धिमान् का कर्त्तव्य नहीं है। मुक्तकच्छ (लाँग खोले हुए) से आचमन एवं देवपूजादि कार्य्य न करे ।।७०१-७०२।।

किञ्च—

न च निर्धुनयेत् केशानाचामेन्नैव चोत्थितः ।
पादेन नाक्रमेत् पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ॥७०३॥

अपसव्यं नैव गच्छेद्देवागारचतुष्पथान् । मङ्गल्यपूज्यांश्च तथा विपरीतान्न दक्षिणाम् ॥७०४
सोमार्काग्न्यम्बुवायूनां पूज्यानाञ्च न सम्मुखम् । कुर्य्यात् ष्ठीवनविन्मूत्रसमुत्सर्गञ्च पण्डितः॥७०५
तिष्ठन्न मूत्रयेत्तद्वत् पन्थानं नावमूत्रयेत् । श्लेष्मविन्मूत्ररक्तानि सर्व्वदैव न लङ्घयेत ॥७०६॥
श्लेष्मष्ठीवनकोत्सर्गो नान्नकाले प्रशस्यते । बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने ॥७०७॥
योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद्बुधः । न चैवेर्षुर्भवेत्तासु नाधिकुर्य्यात् कदाचन ॥७०८
मङ्गल्यपुष्परत्नाज्यपूज्याननभिवाद्य च । न निष्क्रामेद्गृहात् प्राज्ञः सदाचारपरो नरः ॥७०९
अकालगर्ज्जितादौ तु पर्व्वस्वशौचकादिषु । अनध्यायं बुधः कुर्य्यादुपरागादिके तथा ॥७१०॥

केशान् स्नानानन्तरमार्द्रान् सतः ; पाद न नयेत् ॥७०३॥

अपसव्यमप्रदक्षिणं न गच्छेत्, प्रदक्षिणं कृत्वैव गच्छेदित्यर्थः । मङ्गल्यान् मधुघृतदधिसिद्धार्थजलपूर्ण-घटादीन् पूज्यांश्च गुरुविप्रधेनुवृद्धादीन् । तथा च काशीखण्डे—'देवतायतनं विप्रं धेनुं मधु मृदं घृतम् । जाति-वृद्धं वयोवृद्धं तपस्विनम् ॥ अश्वत्थं चैत्यवृक्षञ्च गुरुं जलभृतं घटम् । सिद्धान्नं दधिसिद्धार्थं गच्छन् कुर्य्यात् प्रदक्षिणम् ॥' इति । विपरीतान् अमङ्गल्यादीन् । नाधिकुर्य्यात्, अधिकारं न कुर्य्यात् । यद्वा, स्त्रीभ्योऽधिकारं न दद्यादित्यर्थः । सदाचारपर इति सर्व्वत्रैवान्वेति, तच्चोक्तानां सर्व्वेषामेव नित्यत्वमभिप्रैति ।७०४-७०९॥

पर्व्वसु अष्टम्यादिषु आदिशब्दत्रयगृहीतो विशेषः काशीखण्डे—'अकालविद्युत्स्तनिते वर्षतो पांशुवर्षणे । महावातध्वनौ रात्रावनध्यायाः प्रकीर्त्तिताः ॥ उल्कापाते च भूकम्पे दिग्दाहे मध्यरात्रिषु । सन्ध्ययोर्वृष-लोपान्ते राज चन्द्रस्य सूतके ॥ दर्शेऽष्टकासु भूतायां श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च । प्रतिपद्यपि पूर्णायां मार्ज्जारेण कृतान्तरे ॥ खरोष्ट्रक्रोष्टुविरुते समवाये रुदत्यपि । उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे पथि मार्गतगे जले ॥ आवश्यक-मधीत्यापि वाणसाम्नोरपि ध्वनौ । अनध्यायेषु चैतेषु नाधीयीत द्विजः क्वचित् ॥ कृतान्तरायो न पठेत् भेकाखुश्वाहिबभ्रुभिः' इति । एते अनध्यायाः प्रायो वेदपाठविषया एव ज्ञेयाः ॥७१०॥

और भी वर्णित है—स्नान के पश्चात् आर्द्रकेश को कम्पित न करे, उठकर आचमन न करे, पैर से पैर आक्रमण न करे । एवं पूज्य व्यक्तिगण के समक्ष में पाद सञ्चारण (बेकार टहलते फिरना) न करे । देवालय एवं चतुष्पथ की प्रदक्षिण न करके गमन न करे । मधु, घृत, दधि, सिद्धार्थ एवं जलपूर्ण घटादि माङ्गलिक एवं पूज्य, गुरु, ब्राह्मण, धेनु एवं वृद्धवृन्द की प्रदक्षिण न करके गमन न करे । इसी प्रकार अमङ्गल्य पदार्थ की प्रदक्षिण न करके गमन करना चाहिये । चन्द्र, सूर्य्य, वह्नि, जल, वायु, एवं पूज्यगण के समक्ष में निष्ठीवन अथवा मलमूत्र परित्याग करना बुद्धिमान् मानव के पक्ष में उचित नहीं है ॥७०३-७०५॥

दण्डायमान अवस्था में मूत्रत्याग एवं मार्ग में मूत्रोत्सर्ग न करे । श्लेष्मा, मूत्र, विष्ठा एवं रक्त उल्लङ्घन न करे । भोजन के समय श्लेष्मा एवं निष्ठीवन प्रशस्त नहीं है । अर्थात् खकार थूकना उचित नहीं है । पूजा मङ्गल जपादि, होम समय में अथवा महाजन के सन्निधान में श्लेष्मा एवं निष्ठीवन त्याग करना उचित नहीं है । बुद्धिमान् व्यक्ति के पक्ष में स्त्री लोकवृन्द का अवमानन करना अथवा उनको विश्वास करना अनुचित है । उनके प्रति ईर्षा प्रकाश न करे, एवं उनको अधिकार प्रदान भी न करे । सदाचाररत प्राज्ञ मनुष्यवृन्द, पुष्प, रत्न, घृत एवं पूज्य व्यक्तिवृन्द को अभिवादन न करके गृह से न निकलें ॥७०६-७०९॥

अकाल गर्जनादि समय में, अष्टमी प्रभृति पर्वसमूह, अशौचकाल, एवं ग्रहणादि काल,—पण्डितवर्ग का

वर्षातपादिके छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च । शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत् ।।७११।।

नोर्द्ध्वं न तिर्य्यग्दूरं वा निरीक्षन् पर्य्यटेद्बुधः ।
युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ।।७१२।।

किञ्च—

प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् । श्रेयस्तद्रहितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तविप्रियम् ।।७१३।।

प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च । कर्म्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत् ।।७१४।।

बृहन्नारदीये सदाचारप्रसङ्गे—

असावहमिति ब्रूयाद्द्विजो वै ह्यभिवादने । श्राद्धं व्रतं जपं दानं देवताभ्यर्च्चनं तथा ।
यज्ञञ्च तर्पणञ्चैव कुर्व्वन्तं नाभिवादयेत् ।।७१५।।

तथा स्नानं प्रकुर्व्वन्तं धावन्तमशुचिं तथा । भुञ्जानञ्च शयानञ्च अभ्यक्तशिरसं तथा ।।७१६।।

भिक्षान्नधारिणं चैव रमन्तं जलमध्यगम् । कृताभिवादनो यस्तु न कुर्य्यात् प्रतिवादनम् ।
नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव सः ।।७१७।।

छत्री सन्, दण्डी च सन् व्रजेदित्यन्वयः ।।७११।।

तत्प्रियं न वदेत्; तत्र हेतुमाह—श्रेय इति। अत्र श्रीविष्णुपुराणे क्रमेण वर्त्तमानानामपि केषाञ्चित् वचनानां परित्यागपूर्व्वं कस्मिंश्चिद्योग्यप्रकरणे लिखितत्वात् केषाञ्चिदत्रानुपयोगात् । एवमग्रेऽप्यूह्यम् ।।७१३

अभिवादने वर्ज्ज्यानाह—श्राद्धमिति त्रिभिः । श्राद्धादि कुर्व्वन्तम् ।।७१५।।

प्रतिवादनं प्रत्यभिवादनम्; अभिवादन-प्रत्यभिवादनयोः प्रकारः प्रसिद्ध एव ।।७१७।।

अनध्याय काल है । वृष्टि एवं आतपादि में छत्र व्यवहार एवं रात्रि में अरण्य में दण्ड धारण करना उचित है । शरीर रक्षा की इच्छा हो तो पर्य्यटन के समय सर्वदा पादुका व्यवहार करे । विद्वज्जन, ऊर्द्ध्व, वक्र, एवं दूर अवलोकन करते करते पर्य्यटन न करें किन्तु युगमात्र (चार हस्त) परिमित भूमिपृष्ठ के प्रति दृष्टिपान करते करते गमन करें ।।७१०-७१२।।

और भी वर्णित है—इस प्रकार प्रिय वाक्य न बोले, जिससे अहित हो सकता है, अत्यन्त अप्रिय होने पर भी ऐसे मङ्गलजनक वाक्य प्रयोग करे। इस जगत् एवं परजगत् में प्राणिसमूह के उपकार के निमित्त जो हो सकता है, बुद्धिमान् मानव,-कर्म, मन, एवं वाक्य के द्वारा उसका आचरण करे ।।७१३-७१४।।

बृहन्नारदीय पुराण के सदाचार प्रसङ्ग में लिखित है—अभिवादन के समय में "मैं अभिवादन कर रहा हूँ" यह उच्चारण करना द्विज का कर्त्तव्य है । श्राद्ध, व्रत, जप, दान, देवता पूजा, यज्ञ, एवं तर्पणकारी को अभिवादन न करे ।।७१५।।

इसी प्रकार स्नायी, अशुचि, धावमान, भोजनरत, शयान, अभ्यक्त मस्तक अर्थात् आवृत आपादमस्तक भिक्षान्नजीवी, रममाण, एवं जलमध्य स्थित व्यक्ति, अभिवादन करने पर भी प्रत्यभिवादन न करे । ऐसे व्यक्ति को अभिवादन के योग्य नहीं जानना, कारण, वह शूद्रवत् होता है । अतः प्रत्यभिवादन का योग्य वह नहीं है ।।७१६-७१७।।

मार्कण्डेयपुराणे मदालसालर्क-संवादे—

असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यञ्च वर्ज्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवाञ्च पुत्रक ॥७१८॥
केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दन्तधावनम् । पूर्व्वाह्ण एव कार्य्याणि देवतानाञ्च तर्पणम् ॥७१९॥
उदक्या दर्शनं स्पर्शं वर्ज्जेत् सम्भाषणं तथा ॥७२०॥
न चाभीक्ष्णं शिरःस्नानं कुर्य्यान्निष्कारणं नरः ।
शिरःस्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ॥७२१॥
पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च ।
विद्याधिकस्य गुर्व्विण्या भारार्त्तस्य महीयसः ॥७२२॥
मूकान्धबधिराणाञ्च मत्तस्योन्मत्तकस्य च । पुंश्चल्याः कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च ॥७२३॥
उपानद्वस्त्रमाल्यानि धृतान्यन्यैर्न धारयेत् । उपवीतमलङ्कारं करकं चैव वर्ज्जयेत् ॥७२४॥
न क्षिप्तबाहुजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन । न चापि विक्षिपेत् पादौ वाससा न च धूनयेत् ॥७२५
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान् मायिनस्तथा । न्यूनाङ्गानधमांश्चैव नोपहासेन्न दूषयेत् ॥७२६॥

असन्तं असाधुम्, असद्भिर्वा सह वादं गोष्ठीमुद्ग्राहं वा । आदर्शो दर्पणस्तस्य दर्शनम् ॥७१८-७१९॥
वर्ज्जेत् वर्ज्जयेत् ॥७२०॥
शिरःस्नातः कृतशिरःस्नानः सन् अङ्गं तैलेन न स्पृशेत्, न लेपयेत् ॥७२१॥
दुःखिनः क्षुधादिपीड़ितस्य आतुरस्य च रुग्णस्य । पाठान्तरे रोगादिदुःखेन विवशस्य, महीयसः वैष्णवस्य॥७२२
उपवीतादिकमन्यैर्धृतं वर्ज्जयेत् ; वाससी परिधानोत्तरीये स्नातः सन् न धूनयेत्, न नर्त्तयेत् ; 'न चापि धूनयेत् केशान्' इत्येतदनन्तरोक्तेः । एवमन्यश्लोकवर्त्यप्ययं श्लोकपादः पुनर्लिखनपरिहारार्थमत्र संयोज्य लिखितः । अन्यथा तन्मध्यवर्त्तिनां श्रीविष्णुपुराणादावप्युक्तानां पुनर्लिखनेन वैयर्थ्यापत्तेः । एवमन्यदप्यूह्यम् । तच्च स्वयमग्रे मूले परिहार्य्यमेव ॥७२४-७२५॥
उपहासेत् उपहसेत् ॥७२६॥

मार्कण्डेय पुराण के मदालस-अलर्क संवाद में वर्णित है— हे पुत्र ! तुम, असत्पुरुष के सहित आलाप, असत्य अथवा कर्कश वाक्य प्रयोग, असत्-शास्त्रानुशीलन, असत् के सहित वादानुवाद, एवं असद् व्यक्ति की सेवा परित्याग करो । केशसंस्कार, दर्पण में मुखावलोकन, दन्तधावन, एवं देवतर्पण, पूर्वाह्णकाल में करे । अकारण, पुनः पुनः शिरःस्नान न करे । शिरःस्नान करके अङ्ग में तैल लेपन न करे । ब्राह्मण, राजा, क्षुधादि पीड़ित, रुग्न, विद्याधिक, गुर्विणी, भारवाहक एवं वैष्णव को मार्ग छोड़ देना चाहिये । मूक, अन्ध, बधिर, मत्त, उन्माद, पुंश्चली, कृतवैर, बालक एवं पतित व्यक्ति को पथ छोड़ देना चाहिये । अपर के द्वारा व्यवहृत पादुका, वसन, माल्य, यज्ञोपवीत, अलङ्कार एवं भोजन ग्रास परित्याग करे । विज्ञ व्यक्ति, कदाच बाहु एवं जङ्घा विस्तार कर अवस्थान न करे । पादद्वय विक्षेप करना अर्थात् बैठे बैठे पैर का चलाना, अथवा स्नान के पश्चात् परिधेय एवं उत्तरीय वस्त्र झाड़ना नहीं चाहिये ॥७१८-७२५॥
मूर्ख, उन्माद, विपन्न, विरूप, मायावी, हीनाङ्ग एवं अधम व्यक्ति को देखकर उपहास एवं निन्दा न करे ॥७२६॥

परस्य दण्डं नोद्यच्छेन् शिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ।
नानुलेपनमादद्यादस्नातः स्नातकी क्वचित् ॥७२७॥
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रवासधरोऽपि वा । क्षुरकर्म्मणि चान्ते च स्त्रीसम्भोगे च पुत्रक ।
स्नायीत चेलवान् प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च ॥७२८॥
युगपज्जलमग्निञ्च बिभृयान्न विचक्षणः । नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत् ॥७२९॥
शौचकालेषु सर्व्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः । न विलम्बेत शौचार्थं न मुखेनानलं धमेत् ॥७३०॥
विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च हस्तसङ्गाददोषिणः । अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् ॥७३१
मातुः प्रस्नवने मेध्यं शकुनिः फलपातने । उदक्याशौचिनग्नांश्च सूतिकान्त्यावसायिनः ।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥७३२॥
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नातः शुध्यति मानवः ।
आचम्यैव तु निस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥७३३॥

स्नातकी स्नानार्थोद्यतः ।।७२७॥

चेलवान् सचेल एव स्नायात्; कटभूमिं श्मशानम् ॥७२८॥

धयन्तीं जलं पिबन्तिं नाचक्षीत, कस्मैचिन्न कथयेत्, नाह्वयेदिति वार्थः; यद्वा, वत्सं पाययन्तीमित्यर्थः । न मुखेनानलं धमेदित्येतत् पाकादिविषयं, यच्च धौर्म्मे—'मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत' इति । तत्तु अग्निहोत्रादिविषयम् ॥७२९-७३०॥

आननं न मेध्यं मातुर्धेनोः मेध्यं वत्सस्याननं, शकुनिर्मेध्यः ॥७३१-७३२॥

ईक्ष्य निरीक्ष्य ॥७३३॥

अपर के प्रति दण्ड उत्तोलन न करे । किन्तु, पुत्र एवं शिष्य को शिक्षा प्रदान हेतु दण्ड दे सकता है । जिसने स्नान नहीं किया है, अथवा जो स्नान करने को उद्यत हुआ है, इस प्रकार व्यक्ति के शरीर में अनुलेपन प्रदान न करे । हे पुत्र ! रक्तवस्त्र एवं चित्र विचित्र वसन परिधान न करे । क्षौर कर्म के पश्चात्, स्त्री सम्भोग के बाद, एवं श्मशान भूमि में गमन करने के पश्चात् सवस्त्र स्नान करना, प्राज्ञ व्यक्ति का कर्त्तव्य है ॥७२७-७२८॥

बुद्धिमान् मानव, एक समय में जल एवं अग्नि ग्रहण न करे, अथवा, गोवत्स जब दुग्ध पान करे तब उसको दूसरे के दृष्टिगोचर न करावे, एवं अञ्जलि के द्वारा जलपान न करे ॥७२९॥

थोड़ा हो अथवा बहुत हो—शौचकाल में शौच के निमित्त विलम्ब करना नहीं चाहिये । पाकादि कार्य्य के समय अग्नि में मुख द्वारा फुत्कार देना निषिद्ध है, अर्थात् अग्नि में फूँक नहीं मारना चाहिये ॥७३०॥

मुख से निःसृत जलबिन्दु एवं मक्षिका प्रभृति हाथ से छुने से दूषित नहीं होती । अज (बकरे) एवं अश्व का मुख शुद्ध है, गाय एवं वत्स का मुख शुद्ध नहीं है । किन्तु दुधारी गाय के दूध निकालने के समय बछड़े का मुख शुद्ध होता है । फल गिराने के समय पक्षी शुद्ध होता है । रजस्वला, सूचिकर्मोपजीवी, नग्न, नवप्रसूता, यवन, एवं शव-वहनकारी को स्पर्श करने पर शौचार्थ स्नान करना कर्त्तव्य है ॥७३१-७३२॥

सरस नरास्थि अर्थात् मांस से सनी हड्डी का स्पर्श करने पर स्नान करके शुद्ध होवे, एवं नीरस हड्डी को स्पर्श करने पर आचमन, गोस्पर्श अथवा सूर्य्य-दर्शन से शुद्धि होगी ॥७३३॥

न चालपेज्जनं द्विष्टं वीरहीनां तथा स्त्रियम् । देवतातिथिसच्छास्त्रयज्ञसिद्धादि-निन्दकैः ॥७३४

कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्येदर्कावलोकनात् । अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजान् पतितं शठम् ।
विधर्म्मिसूतिकाषण्ढविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥७३५॥

मृतनिर्य्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये । एतदेव हि कर्त्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ॥७३६॥

किञ्च —

यच्चापि कुर्व्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पुत्रक । तत् कर्त्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने ॥७३७॥

भविष्योत्तरे श्रीकृष्णयुधिष्ठिर-संवादे—

उपासते न ये पूर्व्वां द्विजाः सन्ध्यां न पश्चिमाम् ।
सर्व्वांस्तान् धार्म्मिको राजा शूद्रकर्म्मणि योजयेत् ॥७३८॥

दूरादावसथान्मूत्रं दूरात् पादावसेचनम् । उच्छिष्टोत्सर्ज्जनं भूप सदा कार्य्यं हितैषिणा ॥७३९

उच्छिष्टो न स्पृशेच्छीर्षं सर्व्वे प्राणास्तदाश्रयाः । केशग्राहान् प्रहारांश्च शिरस्येतानि वर्ज्जयेत् ।
न पाणिभ्यामुभाभ्यान्तु कण्डूयाज्जातु वै शिरः ॥७४०॥

किञ्च —

सुवासिनीर्गुर्व्विणीश्च वृद्धं बालातुरौ तथा । भोजयेत् संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ॥७४१॥

नालपेत् न संभाषेत्, लोकद्विष्टं जनम्, अन्त्यजान् चण्डालादीन्, विवस्त्रान् नग्नान्, अन्त्यावसायिनश्च यवनादीन् ॥७३४-७३५॥

एतदेव अवलोकनमित्यर्थः ॥७३६॥

किं बहुनोक्तेन, संक्षेपतः कृत्यं वर्ज्ज्यञ्च सर्व्वं शृणुवित्याह — यच्चेति । आत्मा मनः, वर्ज्ज्यञ्च तद्विपरीतमेवेत्यर्थः ॥७३७॥

शिरः आत्मन एव, न परस्येति बोद्धव्यं, 'न संहताभ्यां कण्डूयादात्मनः शिरः' इति कौर्म्मोक्तेः ॥७४०॥

सुवासिनीः स्वगृहवर्त्तिविवाहितकन्याः; चरमं पश्चात् गृही भुञ्जीत । वाहनमश्वः, आदि-शब्दात् वत्स-

---

लोकों से वैर करने वाले मनुष्य के सहित अथवा पति-पुत्रहीन स्त्री के सहित सम्भाषण न करे । देवता, अतिथि, सत्शास्त्र, यज्ञ एवं सिद्धादि निन्दक का संसर्ग एवं उसके सहित वाक्यालाप करना उचित नहीं है । आलाप करने पर सूर्य्य-दर्शन से शुद्ध होती है । रजस्वला, अन्त्यज, पतित, धूर्त्त, विधर्मी, नव प्रसूता, नपुंसक, विवसन एवं यवन का सन्दर्शन होने पर सूर्य्य-दर्शन से शुद्धि होती है । मृत निर्य्यातक एवं परदाररत व्यक्ति को देखकर प्राज्ञ व्यक्ति को उक्त रूप से आत्मशोधन करना चाहिये ।७३४-७३६॥

और भी कथित है—हे पुत्र ! जो कार्य्य करने पर आत्म-शान्ति नहीं होती है, जो कार्य्य करके महाजन समक्ष में गोपन करने की आवश्यकता नहीं होती है, निःशङ्क चित्त से वह सब कार्य्य करने चाहिये ॥७३७

भविष्योत्तर के श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवाद में लिखित है—जो सब ब्राह्मण प्रातः अथवा सायंकाल में सन्ध्योपासना नहीं करते हैं, उन सब द्विजगण को शूद्र कार्य्य में नियोग करना राजा का कर्त्तव्य है । हे भूप ! हितैषी व्यक्ति, गृह से दूर में मूत्रत्याग; पाद प्रक्षालन एवं उच्छिष्ट करे । उच्छिष्टावस्था में मस्तक स्पर्श करना नहीं चाहिये । कारण, समस्त प्राण ही मस्तक को आश्रय कर अवस्थित हैं । शिरस्थ केशग्रहण अथवा मस्तक में प्रहार करना निषिद्ध है । हस्तद्वय के द्वारा कभी शिरः कण्डूयन न करे ॥७३८-७४०॥

और भी लिखित है—गृही व्यक्ति, निज गृहस्थित विवाहिता कन्या, गर्भवती, वृद्ध, बालक, एवं पीड़ित

अघं स केवलं भुङ्क्ते बद्धे गोवाहनादिके । यो भुङ्क्ते पाण्डवश्रेष्ठ प्रेक्षतामप्रदाय च ।।७४२।।
वर्ज्जयेद्दधिशक्तूंश्च रात्रौ धानाश्च वासरे ।।७४३।।

किञ्च—
स्रजश्च नावकर्षेत न वहिर्धारयेत च । गृहे पारावता धन्याः शुकाश्च सहसारिकाः ।।७४४।।

कौर्म्मे व्यासगीतायाम्—
तृणं वा यदि वा शाकं मूलं वा जलमेव वा । परस्यापहरन् जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते । ७४५।।
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात् पतितादपि । नान्यस्माद्याचकश्चश्च निन्दिताद्वर्ज्जयेद्बुधः ।।७४६
नित्यं याचनको न स्यात् पुनस्तत्रैव याचयेत् । प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्म्मतिः ।।७४७।।
न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमाः । ब्रह्मस्वं च नापहरेदापद्यपि कदाचन ।।७४८।।
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं वापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः ।।७४९।।
न धर्म्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत् । व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्व्वन् स्त्री-शूद्रदम्भनम् ।
प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः ।।७५०।।

वृषादिः, तान् प्रति जलादिकमदत्त्वेत्यर्थः ।।७४१-७४२।।

धाना भृष्टयवांश्च दिवसे वर्ज्जयेत, न खादेत्, तत् कारणं चोक्तं तत्रैव—'दिवा धानासु वसति रात्रौ च दधिशक्तुषु । अलक्ष्मीः कोविदारेषु नित्यमेव कृतालया ।।' इति । नावकर्षेत् स्वयमाकृष्य न छिन्द्यादित्यर्थः । स्वयं नोत्तारयेदिति केचिदाहुः । धन्याः ते तत्र रक्ष्या इत्यर्थः । अतस्तत्रैवार्द्धपद्यम्—'भवन्त्येते न पापाय यथा वै तैलपायिकाः' इति । तृणादिकमपहरन् नरकं याति । यच्चोक्तमत्रैव—'पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले फले तृणे । अदत्त्वा दानमस्तेयं मनुराह' इति, तच्च धर्म्मार्थमेवेत्यविरुद्धम् । यतस्तत्रैवाग्रे—'तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाश्यं वै हरेद्बुधः । धर्म्मार्थं केवलं विप्र ह्यन्यथा पतितो भवेत् ।।' इति । स्त्रीशूद्रयोर्दम्भनं वञ्चनं कुर्व्वन्, तयोरज्ञत्वेन वञ्चनसम्भवात् । यद्वा, स्त्री-शूद्रवत् कपटं कुर्व्वन् ।।७४३-७५०।।

व्यक्ति के पहले संस्कृत अन्न भोजन कराकर अवशेष में स्वयं भोजन करे । हे पाण्डवश्रेष्ठ ! बद्ध गो, एवं अश्व प्रभृति को प्रथम जलादि प्रदान न करके जो लक्ष्यकर अर्थात् ताककर हैं, उनको भोजन प्रदान न करके जो व्यक्ति भोजन करता है, वह उसके पाप भोजन करता है । रात्रि-काल में दधि-शक्तु भोजन, एवं दिवस में यव भोजन वर्जन करना कर्त्तव्य है ।।७४१-७४३।।

और भी लिखित है—पुष्पमाल्य स्वयं खेंच कर न फेंके । अथवा गलदेश के वहिर्देश में धारण न करे । गृह में पारावत एवं सारिका के सहित शुक पक्षी का पालन करे । कारण, वे सब गृहस्थ की सहायता करने वाले हैं ।।७४४।।

कूर्मपुराण की व्यास गीता में वर्णित है—यदि मानव, अपर व्यक्ति के तृण, शाक, मूल, अथवा जल अपहरण करे तो उसका नरक में निवास होता है । विचक्षण व्यक्ति, राजा, शूद्र, अथवा पतितजन के निकट प्रतिग्रह न करे एवं अपर निन्दित मानव के निकट प्रार्थना भी न करे ।।७४५-७४६।।

सदा याचना न करे, एक वार जिसके निकट याचना की गई है, पुनर्वार उसके निकट याचना न करे । उससे दुराचार याचक दाता का प्राणहारक होता है । हे द्विजोत्तमगण ! विशेषतः देवता का द्रव्य हरण करना निषिद्ध है । नितान्त आपद ग्रस्त होने पर भी ब्रह्मस्वापहरण न करे । पण्डितगण, विष को विष नहीं कहते हैं, ब्रह्मस्व को ही विष कहते हैं, एवं देवस्व भी तद्रूप है । सुतरां सर्वदा यत्नपूर्वक ब्रह्मस्व देवस्व का

देवद्रोहाद्‌गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः ।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात् कोटिगुणाधिकम् ।७५१।।

किञ्च—

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्व्वपश्चिमयोः शुभम् । मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद्‌द्विजः ।।७५२
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः । पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद्‌द्विजः ।
अर्द्धक्रोशान्नदीकूलं वर्ज्जयित्वा द्विजोत्तमाः ।।७५३।।

किञ्च—

अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विशेषतः । द्वारेण स्तम्भमार्गेण पद्भिः पङ्क्तिर्विभिद्यते ।।
परक्षेत्रे चरन्तीं गां न चाचक्षीत कस्यचित् ।।७५४।।
न सूर्य्यपरिवेशं वा नेन्द्रचापं न चाग्निकम् । परस्मै कथयेद्विद्वान् शशिनं वा कथञ्चन ।
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्नक्षत्राणि विनिर्द्दिशेत् ।।७५५।।
न देवगुरुविप्राणां दीयमानन्तु वारयेत् । निन्दयेद्यो गुरून् देवान् वेदं वा सोपबृंहणम् ।
कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः ।।७५६।।
तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात् किञ्चिदुत्तरम् । कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैनमवलोकयेत् ।।७५७

ज्ञानं शास्त्रं, तस्य अपवादः खण्डनं निन्दा वा ।।७५१।।
कथं निवसेत् ? तत्राह— अर्द्धेति ।।७५३।।
पतितादिभिः सह एकशय्यासनभोजनादिना सङ्करदोषापत्तेः, सहभोजनादिकं पूर्व्वं निषिद्धं, तत्र कदाचित् सहभोजने भस्मादिना पङ्क्तिभेदात् सङ्करदोषापलापः स्यादित्याह— अग्निनेति । पद्भिः त्रि-चतुरैः पदैः । षड्भिरिति पाठे अग्न्यादिभिः षड्भिः ।।७५४।।
तिथिं परस्मै यं कश्चित् न ब्रूयात्, अन्यथा गणकवृत्त्यापत्तेः । एवमग्रेऽपि ।।७५५।।
देवादिभ्यो दीयमानं यत्किञ्चिद्देयम्, उपबृंहणानि पुराणागमस्मृत्यादिशास्त्राणि, तत्सहितम् ।।७५६।।
एतान् निन्दकान्, एनमिति वा पाठः ।।७५७।।

अपहरण वर्जन करे । धर्माचरण के छल से पापाचरण कर व्रतानुष्ठान न करे । व्रताचरण के द्वारा पाप को प्रच्छन्न रखकर स्त्री शूद्र को वञ्चित न करे । ब्रह्मवादी ऋषिगण—ऐसे ब्राह्मण की मृत्यु होने पर भी उसकी इस लोक एवं परलोक में निन्दा करते हैं । देवद्रोह की अपेक्षा गुरुद्रोह कोटि-कोटि गुण अधिक है । इसी प्रकार गुरुद्रोह से ज्ञानापवाद शास्त्र निन्दा एवं नास्तिकता कोटि गुण अधिक होती है ।।७४७-७५१।।

और भी लिखित है—हिमाचल एवं विन्ध्याचल के मध्य में पूर्व पश्चिम समुद्र के मध्यगत पवित्र स्थान को छोड़कर अन्यत्र अवस्थिति करना ब्राह्मण का कर्त्तव्य नहीं है । हे द्विजोत्तमवृन्द ! जिस स्थान में स्वभावतः कृष्णसार मृग विचरण करते रहते हैं, जहाँ विश्रुत पुण्या नदी समूह हैं, अर्द्धक्रोश परिमाण नदी कूल को परित्याग कर वहाँ ब्राह्मण को बास करना चाहिये ।।७५२-७५३।।

और भी वर्णित है—पतित प्रभृति मनुष्यों के सहित भोजन प्रसङ्ग उपस्थित होने पर अग्नि, भस्म, जल, द्वार, स्तम्भ, एवं पथ,- इन छः को विशेषरूप से मध्यस्थ रखने पर पङ्क्ति दोष नहीं होता है । परक्षेत्र में गाय को चरता देखकर किसी से कहना उचित नहीं है । पण्डित व्यक्ति सूर्य्य की परिधि, इन्द्र-धनु, रक्तकीट एवं चन्द्र,-इन सबको देखकर किसी से भी न कहें । दूसरे को किसी पक्ष, तिथि अथवा नक्षत्र

वर्ज्जयेद्वै रहस्यञ्च परेषां गूहयेद्बुधः । विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्य्याद्वै कदाचन ॥७५८॥
न पापं पापिनं ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमाः ॥७५९॥
नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनं वा निमित्ततः ॥७६०॥
जास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम् ।
तिरोहितं वाससा वा न दर्शान्तरगामिनम् ॥७६१॥
नग्नां स्त्रियं पुमांसं वा पुरीषं मूत्रमेव वा । पतित-व्यङ्ग-चाण्डालानुच्छिष्टान्नावलोकयेत् ॥७६२
न मुक्तबन्धनां गां वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा । स्पृशेन्न भोजने पत्नीं नैनामीक्षेत मेहतीम् ॥७६३
क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथा सुखम् । नोदके चात्मनो रूपं नकुलं श्वभ्रमेव बा ॥७६४
न शूद्राय मतिं दद्यात् कृषरं पायसं दधि । नोच्छिष्टं वा घृतमधु न च कृष्णाजिनं हविः ॥७६५

रहस्यं रहःकृत्यं परानिष्टादि ॥७५८॥
पापमत्यन्तपापकर्त्तारमपि जनं पापिनमिति न ब्रूयात् ॥७५९॥
निमित्ततः केनापि हेतुनेति, अतोऽकस्माद्दर्शने न दोष इति भावः ॥७६०॥
उपसृष्टं राहुग्रस्तं मण्डलादिव्याप्तं वा ॥
पुमांसं वा नग्नं, पुरीषं मूत्रमन्यदीयं स्वकीयञ्च, तथा च कौर्म्मे—'न पश्येदात्मनः शकृत्' इति ॥७६२॥
भोजने तत्समये आत्मनः पत्न्या वा ॥७६३॥
रूपादिकञ्च नेक्षेतेति पूर्व्वेणान्वयः ॥७६४॥
हविः—यज्ञीयद्रव्यम् ॥७६५॥

का निर्णय करके न कहें । देव, गुरु, एवं विप्रवृन्द को कोई व्यक्ति किसी वस्तु प्रदान करने में उद्यत हो, तो उसको उस विषय में निषेध न करे । जो पुरुष, गुरु, देवता, तथा पुराण, आगम और स्मृति के सहित वेद की निन्दा करता रहता है—वह कल्पकोटि शत कल्प से भी अधिक काल तक 'रौरव' नामक नरक में यन्त्रणा भोगता है । उनकी निन्दावाद श्रवणकर तूष्णीम्भाव अवलम्बन करना चाहिये, उत्तर देना ठीक नहीं है । कर्णद्वय में हस्त प्रदान कर तत्स्थान त्याग करना उचित है । एवं निन्दाकारी का मुखावलोकन न करे ॥७५०-७५७॥

अन्य का रहस्य वर्जन अर्थात् दूसरे के गुप्त भेद को छिपाना, और अनिष्ट गुप्त रक्खे, एवं कभी स्वजनों से विवाद न करे । हे द्विजोत्तमगण ! अत्यन्त पापकारी को भी पापी मनुष्य अथवा निष्पापी न कहें ॥

सूर्य्य एवं चन्द्र के उदयकाल में किसी कारण से उनके प्रति दृष्टिपात न करे । अस्तगमनोन्मुख, जल में प्रतिविम्बित, राहुग्रस्त, मध्यगामी, बस्त्रावृत एवं दर्पण के मध्य में प्रतिविम्बित सूर्य्य अथवा चन्द्र द्रष्टव्य नहीं हैं ॥७५८-७६१॥

नग्न पुरुष, नग्ना स्त्री, विष्ठा, मूत्र, पतित, विकलाङ्ग, चाण्डाल, एवं उच्छिष्ट के प्रति दृष्टिपात करना उचित नहीं है । बन्धनमुक्त धेनु को एवं उत्तम अथवा मत्त मानव को स्पर्श करना निषिद्ध है । भोजन समय में स्वीय पत्नी को स्पर्श न करे, एवं मल-मूत्र त्यागकारिणी भार्य्या के प्रति दृष्टिपात न करे । अपनी पत्नी की जँभाई एवं हुचकी के समय एवं अपने सुख से बैठी हुई अवस्था में दृष्टिपात न करे । जल में निज देह की परछांई, नकुल नौला और गर्त्त के प्रति दृष्टिपात न करे । शूद्र को बुद्धि, कृषर-तिलान्न, पायस, दधि, उच्छिष्ट, घृत, मधु, कृष्णसार मृगचर्म एवं यज्ञीय द्रव्य प्रदान न करे ॥७६२-७६५॥

न कुर्य्यात् कस्यचित् पीड़ां सुतं शिष्यञ्च ताड़येत् । नात्मानवमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्ज्जयेत् ।
न च शिष्यान्नं सत्कुर्य्यान्नात्मानं शंसयेद्बुधः ॥७६६॥
न नदीञ्च नदीं ब्रूयात् पर्व्वतेषु न पर्व्वतम् । आवसेत्तेन नैवापि यस्त्यजेत् सहवासिनम् ॥७६७
शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत् ।
रोमाणि च रहस्यानि स्वानि खानि न च स्पृशेत् ॥७६८॥
न पाणिपादवाङ्नेत्रचापलानि समाश्रयेत् । नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना न कदाचन ॥७६९
न घातयेदिष्टकाभिः फलानि न फलेन च । न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्न कर्षेच्च पदासनम् ॥७७०
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् गाञ्च संवेशयेन्न हि । नाक्षैः क्रीड़ेन्न धावेत स्त्रीभिर्वादं न चाचरेत् ७७१
न दन्तैर्नखलोमानि छिन्द्यात् सुप्तं न बोधयेत् । न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्ज्जयेत् ॥७७२
नैकः सुप्यात् शून्यगृहे स्वयं नोपानहौ हरेत् । नाकारणाद्वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत् ॥७७३
न पादक्षालनं कुर्य्यात् पादेनैव कदाचन । नाग्नौ प्रतापयेत् पादौ न कांस्ये धारयेद्बुधः ॥७७४

शंसयेत् प्रशंसयेदित्यर्थः, स्तावयेदिति वा ॥७६६॥
नदीं न ब्रूयात्, किन्तु गङ्गामिति कालिन्दीमिति चेत्येवं ब्रूयादित्यर्थः । एवमग्रेऽपि । ७६७॥
खानि इन्द्रियच्छिद्राणि न स्पृशेत्, आचमनव्यतिरिक्तकाल इति ज्ञेयम् ॥७६८।
बालातपमुद्यद्रविरश्मितापम् । यद्वा, बाला कन्या, तद्राशिगतसूर्य्यतापमित्यर्थः ७७२॥
हरेत् वहेत्, वहेदित्येव वा पाठः ॥७७३॥

पण्डित व्यक्ति, किसी को भी पीड़ा प्रदान न करे । किन्तु प्रयोजन होने पर पुत्र-शिष्य को ताड़ना करे । आत्मावमानन किसी प्रकार से न करे । यत्नपूर्वक दैन्य वर्जन करे । शिष्यान्न की प्रशंसा एवं आत्म प्रशंसा न करे ॥७६६॥

नदी एवं पर्वत को नदी एवं पर्वत शब्द से नहीं कहना चाहिये । किन्तु गङ्गा, कालिन्दी, गोवर्द्धन शब्द से कहे । जिसने निज सहवासी को परित्याग किया है, उसके सहित अवस्थिति न करे ॥७६७॥

मस्तक में मर्दित अवशिष्ट तैल के द्वारा अङ्ग लेपन न करे । गुह्य, रोमराजि, एवं इन्द्रियछिद्रादि का स्पर्श न करे । हस्त, पद, वाक्य एवं नेत्र चञ्चल न करे । पदद्वय एवं हस्तद्वय के द्वारा जल में आघात करना उचित नहीं है । इष्टक अथवा फल के द्वारा फल में आघात न करे । म्लेच्छ भाषा शिक्षा न करे । म्लेच्छ भाषा लिखने से म्लेच्छभावापन्न होने की सम्भावना है । पद द्वारा आसनाकर्षण न करे । अङ्क मध्य में भक्ष्य द्रव्य स्थापन पूर्वक भोजन करना निषिद्ध है । धेनु के सहित सुरत कार्य्य न करे । अक्ष क्रीड़ा न करे । दौड़ नहीं लगावे । स्त्री के सहित विवाद न करे ॥७६८-७७१॥

दन्त के द्वारा नखच्छेदन न करे । निद्रित व्यक्ति को जगाना नहीं चाहिये । प्रातःकालीन बालसूर्य्यातप, अथवा कन्याराशिस्थ रवि किरण सेवन न करे । चिता का धूम ग्रहण न करे ॥७७२॥

बुद्धिमान् व्यक्ति एकाकी शून्य गृह में शयन न करे, स्वयं पादुका बहन न करे । अकारण निष्ठीवन त्याग न करे । बाहुद्वय के द्वारा नदी पार न होवे । कभी भी पद द्वारा पदक्षालन न करे । अर्थात् पैर से पैर न धोवे । अग्नि में पैर न सेके, एवं कांस्य पात्र में पद स्थापन न करे ॥७७३-७७४॥

नाभिप्रतारयेद्देवान् ब्राह्मणान् गामथापि वा । न स्पृशेत् पाणिनोच्छिष्टो विप्रा गोब्राह्मणानलान् ।
न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत् ॥७७५॥
नोत्तरेदनुपस्पृश्य स्रवन्तीं नो व्यतिक्रमेत् । चैत्यं वृक्षं नैव च्छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत् ।
न चाग्नि लङ्घयेद्धीमान् नोपदध्यादधः क्वचित् ॥७७६॥
न चैनं पादतः कुर्य्यात् तिलबद्धं निशि त्यजेत् । न कूपमवरोहेत नाचक्षीताशुचिः क्वचित् ॥७७७
अग्नौ न प्रक्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशमयेत्तथा । सुहृन्मरणमार्त्तिं वा न स्वयं श्रावयेत् परान् ।
अपण्यमथ पण्यं वा विक्रयं न प्रयोजयेत् ॥७७८॥
पुण्यस्थानोदकस्थाने सीमान्तं वा कृषेन्न तु । भिन्द्यात् पूर्व्वसमयं सत्योपेतं कदाचन ॥७७९॥
परस्परं पशून् व्यालान् पक्षिणो न च योधयेत् ।
कारयित्वा स्वकर्म्माणि कारून् विद्वान् न वञ्चयेत् ॥७८०॥
बहिर्गन्धञ्च कुद्वारप्रवेशञ्च विवर्ज्जयेत् । नैकश्चरेत् सभां विप्रः समवायञ्च वर्ज्जयेत् ॥७८१॥
न वीजयेद्वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत् । नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत् क्वचित् ॥७८२

पाणिना न स्पृशेत्, हे विप्राः, उच्छिष्टः सन् देवप्रतिमाञ्च न स्पृशेत् ॥७७५॥
अनुपस्पृश्य अनाचम्य; स्रवन्तीं नदीं क्षुद्रामपि न लङ्घयेत् ॥७७६॥
तिलैर्बद्धं द्रव्यं मोदकादि त्यजेत्, न भक्षयेत्, नाचक्षीत किञ्चिदपि न वदेत् ॥७७७॥
अपण्यमविक्रेयं विक्रयं न प्रयोजयेत्, न विक्रीणीयादित्यर्थः ॥७७८॥
कारून् शिल्पिनः कर्म्मकरानित्यर्थः ॥७८०॥
समवायं बहुभिः सह सदैकत्रासम् ॥७८१॥

हे विप्रवृन्द ! देवता, ब्राह्मण, एवं गो इनको प्रतारित न करे, अर्थात् धोखा न देवे । उच्छिष्ट अवस्था में गो, ब्राह्मण एवं अग्नि को स्पर्श न करे । पद द्वारा अन्न एवं देवप्रतिमा का स्पर्श न करे ॥७७५॥

क्षुद्र नदी होने पर भी आचमन न करके पार न उतरे । चैत्यवृक्ष को लङ्घन न करे, छेदन भी न करे । जल में निष्ठीवन (खखार) त्याग न करे । बुद्धिमान् व्यक्ति के पक्ष में अग्नि को लङ्घन करना अथवा अधोदेश में स्थापन करना कदापि कर्त्तव्य नहीं है ॥७७६॥

अनल में पदक्षेप न करे । रात्रि में तिल मिश्रित भक्ष्य भोजन न करे । कूप के मध्य में प्रवेश न करे । अशुचि अवस्था में वाक्योच्चारण न करे । अग्नि में अग्नि प्रक्षेपण, अथवा जल द्वारा अग्नि प्रशमन न करे । सुहृद की मृत्यु संवाद, अथवा अन्य किसी प्रकार की मनःपीड़ा का संवाद दूसरे के निकट न कहे । अविक्रेय अथवा विक्रेय वस्तु का विक्रय न करे ॥७७८॥

पुण्य स्थान, जल स्थान, एवं सीमान्त स्थान का कर्षण न करे । सत्यबद्ध पूर्व प्रतिज्ञा भङ्ग करना कदाच उचित नहीं है । पशु, सर्प, एवं पक्षिसमूह को परस्पर युद्ध में प्रवृत्त न करावे । निज कार्य्य सम्पन्न कराकर कारुगण को शिल्पीवृन्द को वञ्चित करना विद्वानों का कर्त्तव्य नहीं है । बाहर की दुर्गन्ध एवं कुत्सित द्वार में प्रवेश करना परित्याग करे । अकेले सभा में जाना, ब्राह्मण के पक्ष में निषिद्ध है, एवं बहुत मनुष्यों के सहित वास नहीं करना चाहिये ॥७७९ ७८१॥

वसन के द्वारा वीजन न करे, देव निकेतन में शयन न करे । कभी भी अग्नि, गो, ब्राह्मणादि के मध्य

नाक्रामेत् कामतश्छायां ब्राह्मणानां गवामपि । स्वान्तु नाक्रामयेच्छायं पतिताद्यैर्न रोगिभिः ।
वर्ज्जयेन्मार्ज्जनीरेणुं वस्त्रस्नान-घटोदकम् ॥७८३॥

नाश्नीयात् पयसा तक्रं न वीजान्युपवीजयेत् । विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्रं वा निर्दशस्य च ।
आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत् ॥७८४॥

हन्तकारमथाग्र्यं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विजः । दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम् ॥७८५
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमग्र्यं तस्माच्चतुर्गुणम् । पुष्कलं हन्तकारन्तु तच्चतुर्गुणमिष्यते ॥७८६॥

मार्कण्डेये—

भोजनं हन्तकारं वा अग्र्यं भिक्षामथापि वा । अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः ॥७८७

काशीखण्डे —

नैवोत्कटासनेऽश्नीयान्नाग्नौ वस्त्वशुचि क्षिपेत् । श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे योऽश्नीयाज्ज्ञानवर्ज्जितः ।
दातुः श्राद्धफलं नास्ति भोक्ता किल्विषभुग्भवेत् ॥७८८॥

नोत्पाटयेल्लोमनखं दशनेन कदाचन । करजैः करजच्छेदं करेणैव विवर्ज्जयेत् ॥७८९॥
अपद्वारे न गन्तव्यं स्ववेश्मपरवेश्मनोः । उत्कोचद्युतदौत्यार्थद्रव्यं दूरात् परित्यजेत् ॥७९०॥
निष्ठीवनञ्च श्लेष्माणं गृहाद्दूरे विनिक्षिपेत् । उद्धृत्य पञ्च मृत्पिण्डान् स्नायात् परजलाशये ।
अनुद्धृत्य च तत्कर्त्तुरेनसः स्यात्तुरीयभाक् ॥७९१॥

वस्त्रोदकं स्नानघटोदकञ्च ॥७८३॥

अनिर्दशस्य अनिष्क्रान्तदशदिनस्य वत्सस्य भक्ष्यं यत् क्षीरं तदित्यर्थः, दशदिनमध्येऽपेयत्वात्; सन्धिनी वृषभाक्रान्ता गौस्तस्याः क्षीरम् ॥७८४॥

दातुः अन्नदातुः; करजैः नखैः ७८८-७८९॥

होकर गमन न करे। ब्राह्मण, गो,—इनकी छाया को अतिक्रम न करे। पतितादि अथवा रोगग्रस्त व्यक्ति-वृन्द के द्वारा निज छाया अतिक्रम न करावे। मार्जनी धूली (बुहारी की धूरि), वस्त्रोदक, एवं स्नानघटस्थ जल वर्जन करे ॥७८२-७८३॥

दुग्ध के सहित तक्र मिश्रित कर पान न करे। वीज को उपवीजन न करे। अर्थात् वीज को इस दशा में उपनीत न करे, जिससे वह निष्क्रिय हो जाय। वत्सहीन धेनु एवं ऊँटनी का दूध अथवा जिसके प्रसव-काल के दश दिन नहीं बीते हैं, वैसी गाय का दूध, एवं उष्ट्री का दुग्ध, गो दुग्ध, मेष दुग्ध एवं वृषभाक्रान्त धेनु का दुग्ध मनु महाराज के मत में पान योग्य नहीं है ॥७८४॥

द्विज, नित्य यथाशक्ति हन्तका, अग्र्य, अथवा भिक्ष द्रव्य अतिथि को प्रदान करे, एवं उनको परमेश्वर-वत् सम्मान करे। बुधगण, ग्रास मात्र वस्तु को भिक्षा, उसके चतुर्गुण को अग्र्य एवं अग्र्य के चतुर्गुण को हन्तकार कहते हैं ॥७८५-७८६॥

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है—अतिथि को निज विभवानुसार हन्तकार, अग्र्य, अथवा भिक्षा प्रदान न करके भोजन ग्रहण करना निषिद्ध है ॥७८७॥

काशीखण्ड में वर्णित है—विषम आसन में उपवेशन कर भोजन करना निषिद्ध है, अग्नि में अशुचि द्रव्य निक्षेप करना नहीं चाहिये। जो ज्ञानहीन व्यक्ति, श्राद्ध करके अपर के श्राद्ध में भोजन करता है, वह

ब्राह्मे —

यस्तु पाणितले भुङ्क्ते यस्तु फुत्कारसंयुतम् । प्रसृताङ्गुलिभिर्यस्तु तस्य गोमांसवच्च तत् ॥७९२

अत्रिस्मृतौ—

न्यूनाधिकस्तनी या गौर्याथवाऽभक्ष्यचारिणी । तयोर्दुग्धं न होतव्यं न पातव्यं कदाचन ॥७९३

अजा गावो महिष्यश्च याऽमेध्यमपि भक्षयेत् । हव्ये कव्ये च तद्दुग्धं गोमयञ्च विवर्ज्जयेत् ॥७९४

अङ्गुल्या दन्तकाष्ठञ्च प्रत्यक्षलवणं तथा । मृत्तिका-प्राशनं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥७९५॥

अत्रापवादो मनुस्मृतौ—

सामुद्रं सैन्धवं चैव लवणे परमाद्भुते । प्रत्यक्षे अपि ते ग्राह्ये निषेधस्त्वन्यगोचरः ॥७९६॥

अत्रिस्मृतौ—

दिवा कपित्थच्छाया च निशायां दधिभोजनम् ।
कार्पासं दन्तकाष्ठञ्च शक्रादपि हरेत् श्रियम् ॥७९७॥

विष्णुस्मृतौ च —

कपिलायाः पयः पीत्वा शूद्रस्तु नरकं व्रजेत् । होमशेषं पिवेद्विप्रो विप्रः स्यादन्यथा पशुः ॥७९८

अभक्ष्यं विष्ठादि, तच्चारिणी; अजादयस्तासां मध्ये या अमेध्यं भक्षयेत्, तस्या दुग्धं गोमयञ्च; दन्तकाष्ठं दन्तशोधनं, होमशेषं होमावशिष्टमेव पयः ॥७९३-७९८॥

भोक्ता का पाप भोजन करता है, एवं अन्नदाता श्राद्धफल लाभ नहीं करता है। दन्त द्वारा लोम, एवं नख उत्पाटन करना कभी भी उचित नहीं है। हस्त के नख के द्वारा नखच्छेदन करना परित्याग करे। स्वगृह में परगृह में गुप्तद्वार द्वारा प्रवेश न करे। उत्कोच, द्युत एवं दौत्य विषयक द्रव्य दूर से परित्याग करे। गृह से दूर में निष्ठीवन एवं श्लेष्मा निक्षेप करे। अपर के जलाशय में स्नान करना हो पञ्च मृत्पिण्ड जल से उठाकर ही स्नान करे। यदि ऐसा न करके स्नान करे तो जलाशय प्रतिष्ठाता के पाप के चतुर्थांश भागी होना पड़ेगा ॥७८८-७९१॥

ब्रह्मपुराण में लिखित है—जो व्यक्ति, करतल में खाद्य द्रव्य रखकर भोजन करता है, जो व्यक्ति, फुत्कार संयोग से अर्थात् फूँक मारते मारते, अथवा प्रसारित (फैली हुई) अङ्गुलियों की सहायता से भोजन करता है, उसका भोजन, गोमांस भोजन सदृश होता है ॥७९२॥

अत्रि स्मृति में लिखित है— जिस गाय के स्तन न्यून अथवा अधिक (छोटे और बड़े) हैं, अथवा जो गाय विष्ठा आदि अभक्ष्य द्रव्य भोजन करती है, कभी उसका दूध पान अथवा उससे होम-कार्य्य न करे। बकरी (अजा), गो, महिषी (भैंस) प्रभृति एवं जो गाय घृणित पदार्थ भोजन करती है, हव्य कव्य में उसके दुग्ध एवं गोमय वर्जनीय हैं। अङ्गुलि द्वारा दन्तशोधन करना, प्रत्यक्ष लवण (व्यञ्जनादि के सहित मिश्रित व्यतीत लवण) एवं मृद्भक्षण, यह सब गो-मांस के समान हैं ॥७९३-७९५॥

मनुस्मृति में इस विषय में विशेष व्यवस्था है—समुद्रजात एवं सैन्धव,-यह दो प्रकार परमाद्भुत लवण प्रत्यक्ष व्यवहार कर सकता है, किन्तु अन्य लवण प्रत्यक्ष व्यवहार के अयोग्य है ॥७९६॥

अत्रिस्मृति में उक्त है— दिन के समय कपित्थ (कैथ) के वृक्ष की छाया, रात्रि में दधि भोजन, एवं कार्पास काष्ठ से दन्त-शोधन (दतौन) करने पर इन्द्र भी भ्रष्ट होते हैं ॥७९७॥

विष्णुस्मृति में लिखित है—कपिलाधेनु का दुग्ध पान करने पर शूद्र का नरक गमन होता है। विप्र,-होमावशिष्ट पयः पान करें, अन्यथा वे पशु योनि को प्राप्त करेंगे ॥७९८॥

परिहर्त्तुं पुनर्लेखं तत्तत्शास्त्रोक्तमन्यथा । यदत्र लिखितं किञ्चित् तत् क्षन्तव्यं महात्मभिः ॥७९९

आचाराश्चेदृशाः सन्ति परेऽपि बहुलाः सताम् ।
तेलोकशास्त्रनो ज्ञेया अपेक्ष्या यदि वैष्णवैः ॥८००॥

नित्यत्वमेषां माहात्म्यमप्यत्र लिखितात् पुरा ।
सदाचारस्य नित्यत्वान्माहात्म्याच्च सुसिध्यति ॥८०१॥

इति श्रीगोपालभट्ट-विलिखिते श्रीभगवद्भक्तिविलासे नित्यकृत्यसमापनो नाम
एकादशो विलासः ।

अथोपसंहरन् श्रीविष्णुपुराणादिवर्त्ति-पाठपरित्यागादिनोच्चावचोपचाराणामेषामन्यथा लिखनतो निजापराधं मत्वा साधून् क्षमापयति—परिहर्त्तुमिति । अन्यथेति कुत्रापि श्लोकादि परित्यागेन, क्वचिदन्यत्रस्थित-श्लोकपादादेरन्यत्र योजनेन, क्वचिच्चान्याक्षरैस्तदर्थलिखनेनेत्यर्थः । तच्च पुनर्लिखनं परिहर्त्तुमेव अन्यथा प्रकरणान्तरेऽत्रैव लिखितस्य पुनर्लिखनेन वैयर्थ्यापत्तेर्ग्रन्थबाहुल्यापत्तेश्च । अतो महात्मभिर्विवेकिभिः क्षन्तव्यम् ॥७९९॥

ईदृशाः उच्चावचाः सतामाचाराः; अश्वत्थच्छायायां गोष्ठे च रात्रौ न स्वपेत् । प्रातरेकेन हस्तेनैकमक्षि न संमर्द्दयेदित्यादयः । वैष्णवैर्यद्यपेक्ष्या इति तेषु केषाञ्चिदाचाराणामलक्ष्मीपरिहारपरत्वेन केषाञ्चिच्च रोगादि-परिहारपरत्वेन निजधर्म्मातिक्रमणशङ्कया वैष्णवानामनपेक्ष्यत्वात् ॥८००॥

ननु तर्हि ते किं न परिपाल्यास्तैः ? तत्र लिखति— नित्यत्वमिति । पुरा सदाचारलिखनारम्भे लिखितात्, अतो नित्यत्वात् माहात्म्याच्च वैष्णवैस्ते ते परिपाल्या एवेत्यर्थः । अलक्ष्म्या रोगादिना च कदाचिद्भक्ति-विघ्नापत्तेः । अन्यथा प्रथमप्रतिज्ञातवैष्णवावश्यककृत्यालिखनग्रन्थेऽस्मिन्नेते लेख्या एव न स्युरिति भावः ॥८०१

इत्येकादशो विलासः ।

पुनरुक्ति दोषपरिहार के निमित्त शास्त्रोक्त श्लोकसमूह के अंश विशेष को परित्याग कर एवं एक स्थान स्थित श्लोक का प्रयोग स्थानान्तर में करके जो कुछ लिखा गया है, तज्जन्य महात्मागण अपराध क्षमा करेंगे ॥७९९॥

सज्जनवृन्द के इस प्रकार उच्चावच (उत्तम मध्यम) और भी अनेक प्रकार के विद्यमान हैं, यदि वैष्णव वृन्द को उनका प्रयोजन हो तो शास्त्रानुसार से एवं लोकाचार से वह सब भी जान सकते हैं ॥८००॥

प्रातःकाल में एक हस्त के द्वारा अक्षिमार्जन न करे, अश्वत्थ छाया में एवं गोष्ठ में रात में शयन न करे यह सब अलक्ष्मी परिहार एवं रोगनिवारण निबन्धन निषिद्ध हुआ है । वैष्णवों के पक्ष में वह सब आचार पालनीय है अथवा नहीं है ? समाधान हेतु कहते हैं—प्रथम सदाचार लिखनारम्भ में सदाचार की नित्यता एवं महिमा का वर्णन हुआ है । अतः इस स्थान में इन सब सदाचारों की नित्यता प्रमाणित हुई है । अतएव वैष्णवों के पक्ष में वह सब पालनीय हैं । कारण, उक्त आचार को लङ्घन करने से अलक्ष्मी एवं रोगादि होने के कारण वे सब कदाचित् भक्तिमार्ग में विघ्नकारक होते हैं ॥८०१॥

इति श्रीगोपालभट्ट विलिखिते श्रीभगवद्भक्तिविलासे
नित्यकृत्य समापनो नामक एकादशो विलासः ।
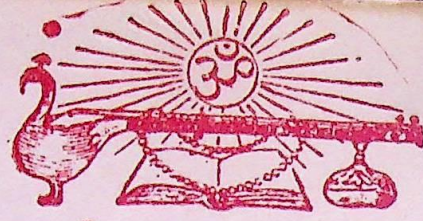
श्रीहरिदासशास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

१। वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्"
२। श्रीनृसिंह चतुर्दशी, ३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका
४। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति
५। श्रीराधाकृष्णार्चन द्वीपिका
६-७-८। श्रीगोविन्दलीलामृतम्
९। ऐश्वर्यकादम्विनी, १०। संकल्पकल्पद्रुम
११। चतुःश्लोकी भाष्यम् १२। श्रीकृष्णभजनामृत
१३। श्रीप्रेमसम्पुट, १४। भगवद्भक्तिसार समुच्चय
१५। व्रजरीतिचिन्तामणि,
१६। श्रीगोविन्दवृन्दावनम्
१७-१८। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, सानुवाद)
१९। श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश,
२०। हरिभक्तिसारसंग्रह
२१। श्रुतिस्तुति व्याख्या, २२। श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र
२३। धर्मसंग्रह, २४। श्रीचैतन्य सूक्तिसुधाकर
२५। सनत्कुमार संहिता, २६। श्रीनामामृतसमुद्र
२७। रासप्रबन्ध, २८। दिनचन्द्रिका
२९। श्रीसाधनदीपिका, ३०। चैतन्यचन्द्रामृतम्
३१। स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन,
३२। श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः, ३३। श्रीब्रह्मसंहिता
३४। प्रमेयरत्नावली, ३५। नवरत्न
३६। भक्तिचन्द्रिका, ३७। वेदान्तस्यमन्तक
३८। श्रीभक्तिरसामृतशेषः, ३९। दशश्लोकी भाष्यम्
४०। गायत्री व्याख्याविवृतिः, ४१। श्रीचैतन्यभागवत
४२। श्रीचैतन्य मङ्गल
४३। श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्
४४। तत्त्वसन्दर्भः, ४५। भगवत्सन्दर्भः
४६। परमात्मसन्दर्भः, ४७। कृष्णसन्दर्भः
४८। श्रीगौराङ्गविरुदावली। ४९। सत्सङ्गमः।
५०। श्रीचैतन्यचरितामृतम्।
५१। नित्यकृत्यप्रकरणम्

वङ्गाक्षरे मुद्रित

५२। श्रीबलभद्र-सहस्रनामस्तोत्रम् ५३। दुर्लभसार
५४। साधकोल्लासः ५५। भक्तिचन्द्रिका
५६-५७। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, सानुवाद)
५८। भगवद्भक्तिसार समुच्चय ५९। भक्तिसर्वस्व
६०। मनःशिक्षा ६१। पदावली
६२। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

प्रकाशनरत ग्रन्थरत्न—

१। श्रीहरिभक्तिविलासः।
२। श्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्, ३। भक्तिसन्दर्भः,
४। प्रीतिसन्दर्भः ५। श्रीचैतन्यचरितामृत
(श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत)
६। अलङ्कार-कौस्तुभ (प्रभृति)